ॐ श्रीललितायै नमः । श्रीगणेशाय नमः

श्रीसंजय शर्मा-संग्रहालय एवं शोध-संस्थान (प्रन्यास)

(प्रथम-पुष्प)

श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रम्

(श्रीशम्भुनाथ नागर कृत बालातपभाष्य तथा हिन्दीव्याख्यायुक्त)

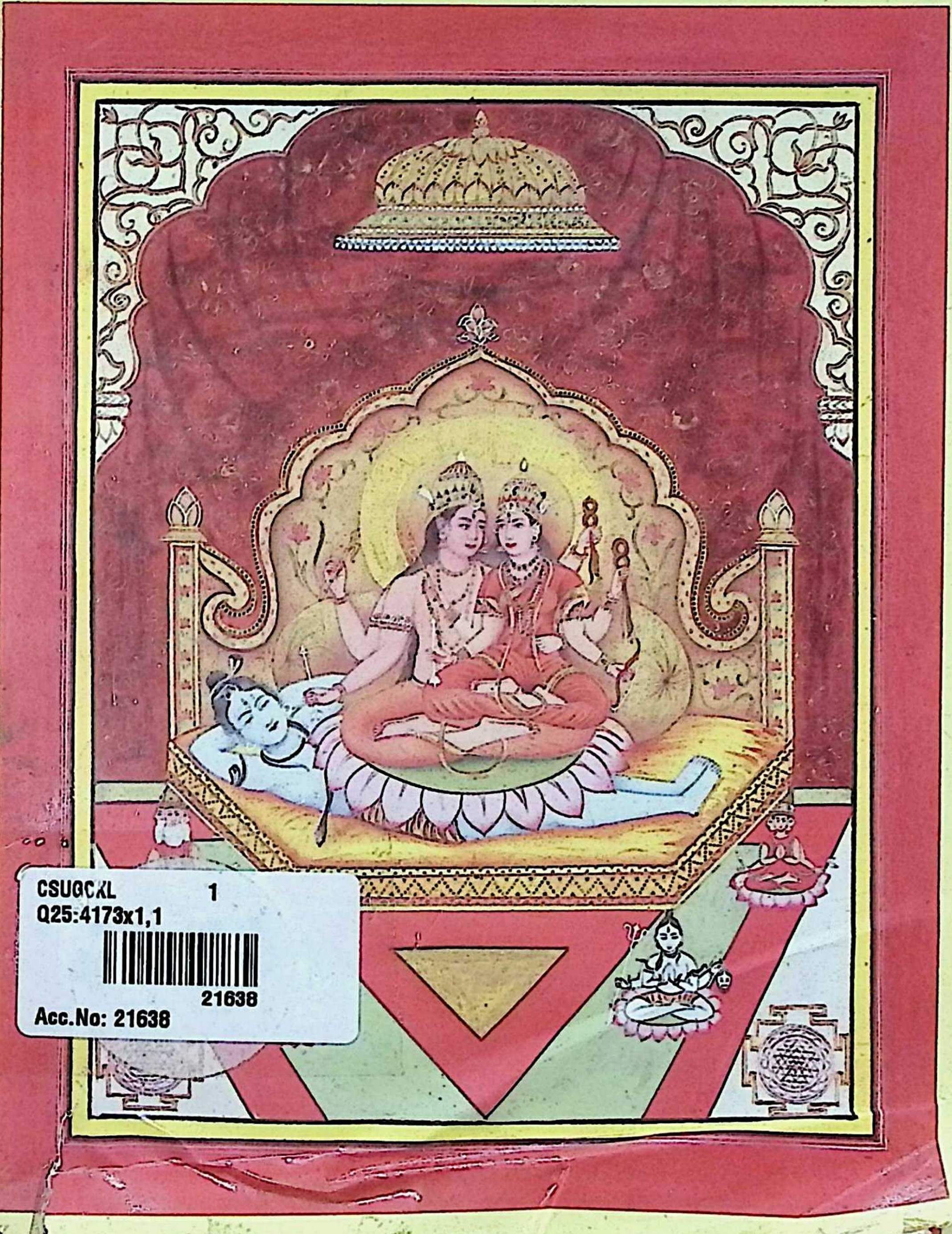

CSUGCKL 1
Q25:4173x1,1
21638
Acc.No: 21638

श्री ललितासहस्रनाम स्तोत्र
का महत्व

अनादिकाल से ही देव मानव आदि परमशक्ति की उपासना करते रहे हैं। उपासना एवं आराधना के पाँच अंगों में सहस्रनाम का महत्त्व भी विदित ही है। शक्ति के उपासकों ने परमसिद्धि के साधनभूत जगज्जननी त्रिपुरसुन्दरी परमशिव की अर्धाङ्गिनी श्री ललिताजी की आराधना हेतु मंत्रशास्त्रों का सर्वस्व "श्री ललितासहस्रनाम स्तोत्र" हृदयङ्गम किया। शंकर पीठों में एवं दक्षिण भारत के घर-घर में इस सहस्रनाम का पाठ व पूजन शताब्दियों से चलता रहा है।

ललिता सहस्रनाम जहाँ पाठमात्र से पुण्य एवं सिद्धि प्राप्त करने वालों के लिए सरल है, वहीं तंत्र, मंत्र एवं शक्ति से सम्बद्ध दर्शनज्ञानार्थियों के लिए अनेकार्थक शब्दों के प्रयोग के कारण अत्यन्त क्लिष्ट भी है।

भास्कर राय ने अपनी विस्तृत व्याख्या में इस ग्रन्थ के सभी पक्षों को यद्यपि अनावृत किया है, तथापि उनकी भाषा पण्डिततोषिणी ही है।

साधारण जिज्ञासुओं को इसका सरलार्थ प्रस्तुत करते हुए पण्डित प्रवर शम्भुनाथ नागर ने 'बालातप भाष्य रचा, जिसका अब तक प्रकाशन नहीं हुआ था।

श्री संजय शर्मा संग्रहालय एवं शोध संस्थान ने इस बहुमूल्य एवं अत्यन्त उपयोगी संस्कृत भाष्य के साथ एवं हिन्दी अनुवाद तथा विद्वत्तापूर्ण भूमिका एवं प्रस्तावना के साथ ललितासहस्रनाम स्तोत्र का प्रकाशन कर बड़ा श्रेयस्कर कार्य किया है।

विश्वास है कि यह प्रकाशन विद्वज्ज[illegible] लिए आत्मसन्तोषदायक होगा।

FORWARDED FREE OF COST WITH
THE COMPLIMENTS OF RASTRIYA
SANSKRIT SANSTHAN, NEW DELHI.

CAT NO. 2999.
HOLD ID. 5036.
Book No. 1.
Location. 22B-1

ॐ श्रीललितायै नमः । श्रीगणेशाय नमः

श्रीसंजय शर्मा-संग्रहालय एवं शोध-संस्थान (प्रन्यास)

(प्रथम-पुष्प)

61

श्रीललितासहस्त्रनामस्तोत्रम्

(श्रीशम्भुनाथ नागर कृत बालातपभाष्य तथा हिन्दीव्याख्यायुक्त)

सम्पादकः
गोस्वामि श्रीलक्ष्मीनारायण दीक्षित

Rashtriya Sanskrit Sansthan Deemed University
GURUVAYOOR CAMPUS
KERALA 680 551
LIBRARY

प्रस्तावना
श्रीगोपालनारायण बहुरा

हिन्दी व्याख्याकार, भूमिका लेखक
डॉ. अर्कनाथ चौधरी
वरिष्ठ प्राध्यापक
व्याकरणाचार्य, एम.ए. (दर्शन) शिक्षाशास्त्री, पी-एच.डी.
केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जयपुर

रामकृपालु शर्मा,
संस्थापक
श्रीसंजय शर्मा-संग्रहालय एवं शोध-संस्थान
ठठेरों का रास्ता, चौड़ा रास्ता,
जयपुर ।

1997

मुखपृष्ठ पर श्री ललितादेवी का चित्र और
अन्तिम पृष्ठ पर रंगोली का चित्र
श्री संजयशर्मा संग्रहालय एवं शोध संस्थान के हैं।

प्रकाशक
श्रीरामकृपालु शर्मा,
"संस्थापक-अध्यक्ष"
श्रीसंजय शर्मा संग्रहालय एवं शोध-संस्थान
1670, ठठेरों का रास्ता, चौड़ा रास्ता, जयपुर।
दूरभाष : 312813, 323436

प्राप्ति स्थान
श्रीसंजय शर्मा संग्रहालय एवं शोध-संस्थान
1670, ठठेरों का रास्ता, चौड़ा रास्ता, जयपुर।

2 25:417 3ट्ट
RASHTRIYA SANSKRIT SANSTHAN DEEMED UNIVERSITY (UNDER MINISTRY OF H.R.D. GOVT. OF INDIA)
ACCESSION NO 21638
DATE 21/4/04

© *प्रकाशकाधीन*
प्रथम संस्करण - 1997

मूल्य : 250/-

लेजर टाइप सैटिंग :-
श्रीनाथ कम्प्यूटर्स, जयपुर ।

मुद्रक
जयपुर प्रिन्टर्स,
मिर्जा इस्माइल रोड, जयपुर।

SHREESANJAY SHARMA MUSEUM AND RESEARCH INSTITUTE

(FIRST PUBLICATION)

SHREELALITASAHASRANAMSTOTRAM WITH COMMENTARY OF BALATAPABHASHYA

Edited By

GOSWAMI SHREELAXMI NARAYAN DIXIT

Introduction

By

SHREEGOPALNARAYAN BAHURA

Preface and Hindi Commentary

By

DR. ARK NATH CHOUDHARY

VYAKARAN ACHARYA

M.A. (DARSHAN) Ph.D.

RAMKRIPALU SHARMA

"FOUNDER CHAIRMAN"

SHREESANJAY SHARMA MUSEUM AND RESEARCH INSTITUTE

JAIPUR

1997

Publisher
SHRI RAM KRIPALU SHARMA
FOUNDER CHAIRMAN
SHREE SANJAY SHARMA MUSEUM
AND RESEARCH INSTITUTE
1670/ THETERON KA RASTA,
S.M.S. HIGHWAY,
JAIPUR-302 003

Available At-
SHREE SANJAY SHARMA MUSEUM
AND RESEARCH INSTITUTE
1670/ THETERON KA RASTA,
S.M.S. HIGHWAY,
JAIPUR-302 003

© Reserved with the Publisher

First Edition 1997

Price Rs.250/-

Laser Typesetting
Shreenath Computers, Jaipur

Printers
Jaiupr Printers
M.I. Road, Jaipur

मैं आपको प्रणाम करता हूँ

पुण्यात्मा श्री सजंय शर्मा

जन्म तिथि	पुण्य तिथि
3-4-1966	3-3-1982

भारद्वाज कुलोद्भवः शशिनिभो दान्तो दया भावनः
समृद्धेश्च सुखस्य विस्तरकरो भक्त सहिष्णुर्गुणी।
पुण्यात्मा गणपाम्बिकाङ्घ्रिकमलध्यानेकतानोऽनघः
बालो राम् कृपालु शर्मतनुजः श्री संजयः स्मर्यते।।

श्री यंत्र

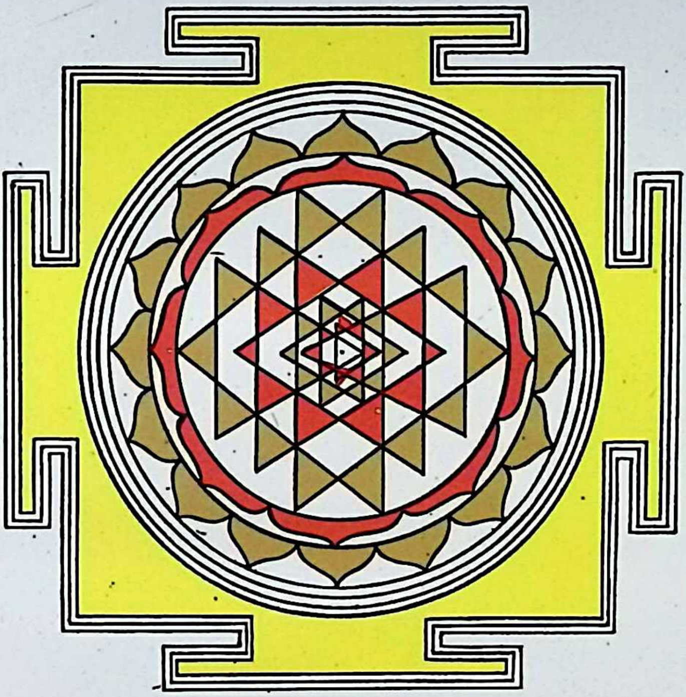

विन्दुत्रिकोणसंयुक्तं वसुकोणसमन्वितम्।
दशकोणद्वयोपेतं भुवनारसमान्वितम्।।
दलाष्टकमलोपेतं दलषोडशकान्वितम्।
वृत्तत्रयान्वितं भूमिसदनत्रयभूषितम्
नमामि ललिताचक्रं साधकानामभीष्टदम्।।

विषय - सूची

	पृष्ठ सं.
प्रकाशकीय -	I-VI
प्रस्तावना -	VII-XVI
भूमिका -	XVII-XXIV
मूल प्रति का प्रारंभिक एवं अन्तिमांश का स्वरूप	XXV-XXVI
श्रीललितासहस्रनामस्त्रोत्रम् (उपोद्घात विनियोगादि)	1-4
श्रीललितासहस्रनामस्त्रोत्रम् सभाष्य	1-76
भाष्यकार प्रशस्ति -	76-77
फलश्रुतिः -	78-84
श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रम् (हिन्दी व्याख्या सहितम्)	1-91

नीराजनम्

जय सुन्दरि ललिते।
श्री सुन्दरि ललिते।
श्रीचक्रोपरिराजित
कामेश्वरसहिते।। श्री सुन्दरि.।।
सविन्दुगुणकोणोपरि
राजितवसुकोणे।
तदुपरिदशकोणद्वय
शोभितमन्वस्रे।। जय सुन्दरि.।।
मात्तङ्गेन्दुकलादलभूषितगुणरेखे
तदुपरि त्रिरेखनिर्मित-शुद्ध चतुर्द्वारे।। जय देवि.।।
श्री चक्रे ललितार्चनमनुदिनमातनुते।
नीराजन सहितं य: परमसुखं लभते।। जय देवि.।।
शश्वद्वसतिं कुरु भोरीश्वरि मम हृदये।
जय सुन्दरि ललिते।।
श्री सुन्दरि ललिते।।

श्री चक्रोपरिराजित कामेश्वर सहिते।।

प्रकाशकीय

गुरुजनों से सुना, स्वयं मनन किया तथा जाना कि इस जगत् में जो कुछ सार भूत है, पवित्र है, वह ज्ञान है। "नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते"। ज्ञान ही परमप्रकाश है। ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं है -

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः, इत्यादि श्रुतिवाक्य भी ज्ञान माहात्म्य को प्रकट करते ही हैं।

ज्ञान प्राप्त करने तथा अन्यों को ज्ञान प्राप्त कराने के दो साधन हैं - अध्ययन तथा अध्यापन और इन दोनों में दक्षता के लिए आवश्यक है कि विपुल ग्रन्थ-राशि हमें सुलभ होती रहे, जिनसे नये-नये तथ्यों का ज्ञान हम सबको होता रहे। हमने यह अनुभव किया कि हमारे मनीषियों ने, विद्वानों ने विपुल ग्रन्थ रचकर नये-नये विचार सारभूत तथ्यों के साथ प्रस्तुत किये हैं, किन्तु वे जिज्ञासुओं के लिए अप्रकाशित होने के कारण प्राप्य नहीं हैं। ज्ञान-भण्डार को पाण्डुलिपियों के रूप में मैंने यत्र-तत्र बिखरा पड़ा देखा और गुरु की कृपा कहें या ईश्वरीय प्रेरणा, मुझमें इनको संग्रहीत कर सुरक्षित रखने की एवं कालान्तर में प्रकाशित कर जन—जन तक पहुँचाने की सदिच्छा का उदय हुआ। जिस से बिखरे पड़े ज्ञान-भण्डार का उपयोग मनुष्य अपने—अपने अभीष्टों की प्राप्ति हेतु एवं जीवन को समुन्नत करने हेतु कर सके। इसी सदिच्छा के कारण मैंने जीवन संग्राम से जूझते हुए भी आर्थिक कठिनाइयों की पराकाष्ठा में भी पाण्डुलिपियों का संग्रह प्रारम्भ किया। परिणामतः 25 अप्रेल, सन् 1970 ई. को ही स्वयं द्वारा संग्रहीत-पाण्डुलिपि-सम्पदा एवं कलात्मक-सामग्री को शर्मा ग्रन्थ संग्रहालय के नाम से तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षा राज्यमंत्री श्रीभक्तदर्शन जी के सान्निध्य में समर्पित कर दिया।

वही शर्मा ग्रन्थ संग्रहालय वर्तमान में श्रीसंजय शर्मा संग्रहालय एवं शोध संस्थान के नाम से एक प्रन्यास के रूप में परिवर्तित हुआ है। यद्यपि प्रन्यास के रूप में यह नाम नया लगता है किन्तु यह वस्तुतः 27 वर्ष पुराना संग्रहालय एवं शोध संस्थान है।

संग्रहालय के प्रेरणास्रोत श्री संजय शर्मा -

श्रीसंजय शर्मा मेरा कनिष्ठ आत्मज था। वह अल्पवय में ही अपनी विनम्रता, बुद्धि, प्रखरता तथा वाक्शक्ति आदि अनेकों गुणों के कारण लोगों में प्रिय हो गया था। सबसे बड़ी बात थी कि वह सिद्धवाक् था। मेरे लिए तो वह पुत्र ही नहीं था, वह मेरा अदृष्ट था, मेरे पूर्वजन्म के किसी पुण्य का फल

था, किसी सिद्ध पुरुष का अंश था, या दैवीशक्तिमय कोई अन्य मेरा सुहृद् उपकारी था, जिसने मेरे घर में उत्पन्न होकर असाध्य रोग से जीवन–पर्यन्त संघर्ष ही करता रहा और मुझे इस कार्य को करने की सामर्थ्य एवं संकल्प–शक्ति प्रदान् कर गया। श्रीगणपति एवं जगदम्बा के इस अनन्य भक्त के उदय के साथ हमारे घर में एक प्रकार से सौभाग्योदय होता गया। उसकी गणपति एवं जगदम्बा कीं दृढ़ भक्ति को देखकर मैं स्वयं भी सोचने के लिये विवश हो जाता हूँ। कितने ही जन्म–जन्मान्तर की दृढ़भक्ति को लेकर स्व. संजय शर्मा मेरे घर में आया और अपने जीवन की सुमधुर गन्ध बिखेरता हुआ ब्रह्मलीन भी हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि वह सिद्ध बालक जितना भी दायित्व लेकर आया था उसे पूर्ण करके अनन्त में विलीन हो गया और हमारे जीवन में ऐसी अमिट छाप छोड़ गया कि हम सभी उस दिव्य–आत्मा के ऋणी हैं।

हम सभी स्व. संजय के प्रति श्रद्धावनत हैं। उसी के यश:शरीर को चिरजीवित रखने के लिए मैंने श्रीसंजय शर्मा के नाम पर इस प्रन्यास का नामकरण किया। वही इस शोध-संस्थान एवं संग्रहालय का प्रेरणास्रोत भी था।

संग्रहालय (MUSEUM)

संजय शर्मा संग्रहालय में 12वीं शताब्दी से 20वीं शताब्दी तक के विभिन्न शैलियों के चित्रों का संग्रह किया गया है जिनमें जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, कोटा, बून्दी, सिरोही, किशनगढ़, नागौर, नाथद्वारा, बीकानेर, मुगल, पहाड़ी, गुजरात, महाराष्ट्र, पटना, अवध, इस्लामिक, उड़ीसा, तंजोर, हैदराबाद, बंगाल, मैसूर आदि शैलियों के प्राचीन चित्र संग्रहालय में विद्यमान हैं।

परन्तु, संग्रहालय में जयपुर शैली के चित्रों को अधिक महत्व दिया गया है, साथ ही यहाँ के लिखे गये अनेक प्रकार के ग्रन्थ तथा यहाँ के राजाओं के लिये विशेष रूप से लिखे गये ग्रन्थ, वस्त्र एवं परिधान, काष्ठकला, ऐतिहासिक सामग्री, ज्योतिष संबंधी यंत्र तथा तंत्रशास्त्र आदि को संग्रहालय में विशेष महत्त्व के साथ रखा गया है। तदुपरान्त, राजस्थान के विभिन्न अंचलों की कलात्मक सामग्री का संग्रह भी प्रदर्शनार्थ रखा गया है। चित्रों में भी जो अधिक जनोपयोगी हैं, यथा आयुर्वेद, चिकित्सा शास्त्र, योगशास्त्र, वैदिक चित्रावली, यज्ञोपकरण आदि विषयों के वैज्ञानिक चित्रों को विशेष रूप से प्रदर्शनार्थ रखा गया है।

वस्त्रों में जयपुर एवं मच्छलीपट्टम् की कलमकारी, कश्मीरी कशीदाकारी, शेखावाटी के आलंकारिक वस्त्र, बंगाल के टेरेकोटा कम्पनी स्कूल के फीगर, ईस्ट इंडिया कम्पनी समय के ग्लास पेंटिंग्स, लोक कलात्मक चित्र तथा नाथद्वारा की पिछवाइयाँ, नागौर की काष्ठकला तथा विविध कलाकृतियों का संग्रह किया गया है जिनका आधार ग्लास, कपड़ा, कागज, मिट्टी तथा लकड़ी, पीतल, लोहा, हाथीदाँत, प्रस्तर, ताड़पत्र, भोजपत्र आदि हैं।

इस प्रकार संग्रहालय में संगृहीत बहुत–सी कलाकृतियों एवं सचित्र ग्रन्थों का तथा प्राचीन वस्त्रों का पूर्णतया प्रदर्शन करना तो संभव नहीं है फिर भी यथाशक्ति बहुत कुछ प्रदर्शनार्थ रखा गया है।

शोध संस्थान (RESEARCH INSTITUTE)

संजय शर्मा संग्रहालय एवं शोध संस्थान में 12वीं से 20वीं शताब्दी तक के अनेक सचित्र ग्रन्थों की विपुल सम्पदा सुरक्षित है। प्राय: सभी विषयों के एवं सभी भाषाओं के सचित्र ग्रन्थ संग्रहालय में विद्यमान हैं।

शोध संस्थान में ब्राह्मी, शारदा, तिब्बती, अरबी, फारसी, उर्दू, तिरहुत, बंगला, तेलगू, मलयालम, कन्नड़, गुजराती, मराठी, गुरूमुखी, देवनागरी लिपियों तथा संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, नेपाली, बर्मीज आदि भाषाओं की पाण्डुलिपियाँ मौजूद हैं –

इसमें विविध कला–सौष्ठव से युक्त हस्तलिखित ग्रन्थ, कल्पसूत्र पद्धति पर आधारित वैष्णव ग्रन्थ, फारसी के सचित्र वैष्णव ग्रन्थ, 12वीं शताब्दी का ताड़पत्र का सचित्र ग्रन्थ तथा गुजरात के सचित्र ग्रन्थ प्रमुख हैं। गुजरात की संझ्या शैली में चित्रित एवं लोक कला सौष्ठव से युक्त अनेक सचित्र ग्रन्थ संग्रहालय में विद्यमान हैं। मधुसूदन जी ओझा के सचित्रग्रन्थ भी संग्रहालय में सुरक्षित हैं एवं फारसी से हिन्दी में अनूदित सचित्र ग्रन्थ संग्रहालय में प्रदर्शित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त ज्योतिषशास्त्र, वास्तुशास्त्र, अश्वचिकित्सा, गज चिकित्सा, आयुर्वेद आदि विषयों के सचित्र ग्रन्थ भी संग्रहालय में प्रदर्शनार्थ रखे गये हैं।

आज हमारे इस संग्रहालय में १०००००(एक लाख) दुर्लभ, बहुमूल्य, ज्ञान विज्ञान एवं कलाओं के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करने वाली महत्वपूर्ण पाण्डुलिपियाँ संगृहीत हैं जो मेरे 42 वर्ष तक सर्वात्मना - तन-मन-धन से संग्रह के लिये लगे रहने के परिश्रम का ही परिणाम है। इसके अतिरिक्त हस्तलिखित ग्रन्थों एवं कलात्मक सामग्री के सवर्द्धनार्थ तथा प्रकाशनार्थ मैं आगे भी परम शक्ति की कृपा से तत्पर रहने की सुदृढ़ भावना रखता हूँ।

संग्रहालय में विभिन्न कलात्मक-सामग्री के अतिरिक्त अधोलिखित विषयों की ग्रन्थराशि उपलब्ध हैं।

वेद	जैन साहित्य
वैदिक संहिता	पुराणेतिहास
ब्राह्मणग्रन्थ	वेदान्त दर्शन
आरण्यक	धर्मशास्त्र
वैदिककर्मकाण्ड	फलित ज्योतिष
स्तोत्र	गणित ज्योतिष
तन्त्र शास्त्र	प्रश्न
यन्त्र शास्त्र	परा-प्राकृत–विज्ञान (रसायन)
मन्त्र शास्त्र	रमल, शकुन
तन्त्रचिकित्सा	स्वर, स्वप्न
कल्पग्रन्थ	छाया, सामुद्रिक–ज्योतिष
रसायन	सामाजिक, ऐतिहासिक
संस्कृत–साहित्य	पिंगल, छन्द
व्याकरण	उपनिषद्
कोषग्रन्थ	न्यायदर्शन
इतिहास	योगशास्त्र
वास्तुशास्त्र	संगीत एवं नृत्यशास्त्र
पाकशास्त्र	कामशास्त्र
मीमांसा	सांख्ययोग
गजचिकित्सा	अश्वच्चिकित्सा
आयुध–शास्त्र	रत्न–शास्त्र
हिन्दी साहित्य	खगोल, भूगोल

चारण साहित्य आदि विषयों के तथा सभी धर्मों के, विभिन्न भाषाओं के हस्तलिखित ग्रन्थ संगृहीत हैं जो 10 वीं शती से लेकर 20 वीं शती तक के ग्रन्थ हैं। भारतीय संस्कृति के प्राणभूत हस्तलिखित ग्रन्थों एवं कलात्मक सामग्री का संग्रह बहुत ही कष्ट–साध्य एवं अर्थसाध्य रहा है। बहुत ही संकटापन्न परिस्थिति ने भी मुझे अब तक विचलित नहीं किया है और मैं अपने ध्येय के लिए निरन्तर विनीत भाव से अग्रसर होता रहा हूँ। इसका एक मात्र श्रेय विद्यानुरागी व्यक्तियों के शुभाशीर्वाद को ही देना चाहूंगा।

विद्यानुरागियों के अनुग्रह का ही फल है कि मैंने इस संग्रहालय को शोध छात्रों के उपयोग के लिए भी खोल दिया है तथा पाण्डुलिपि-विवरण

विद्यानुरागियों के अनुग्रह का ही फल है कि मैंने इस संग्रहालय को शोध छात्रों के उपयोग के लिए भी खोल दिया है तथा पाण्डुलिपि-विवरण ग्रन्थ (कैटलाग) एवं पाण्डुलिपियों को पुस्तकाकार देने हेतु प्रेस कापी बनाने के लिए कुछ विद्वानों को निरन्तर कार्य में लगा रखा है।

ललिता सहस्त्रनामस्तोत्र का प्रकाशन :-

इस ग्रन्थ की "बालातपभाष्य" की पाण्डुलिपि हमारे पास उपलब्ध है। अद्यावधि यह भाष्य प्रकाशित नहीं हो पाया है।ललितासहस्त्रनाम के 'बालातपभाष्य का निमार्ण जयपुर नगर में ही वि. संवत् 1918 में श्रीशिवनाथात्मज श्रीशम्भुनाथ नागर द्वारा किया गया। श्रीशम्भुनाथ नागर के सान्निध्य में उनके ही शिष्य श्रीकृष्ण द्वारा लिखवाया गया है। एतदर्थ यह ग्रन्थ मूल प्रति होने से भी महत्वपूर्ण है।ग्रन्थकार श्रीशम्भुनाथ नागर द्वारा यत्र-तत्र संशोधित भी हैं । इसीलिए लिपी संवत् और रचना संवत् भी समान ही है। ग्रन्थ की साइज $32 \times 11\frac{1}{2}$ से. मी. है। प्रत्येक पत्र में 8 पंक्तियाँ हैं तथा प्रति पंक्ति में औसतन 41 अक्षरों की संख्या है। स्व. संजय शर्मा जगदम्बा एवं गणेश का परम भक्त था। अत एव उसकी प्रथमतः आराध्या देवी से सम्बद्ध साहित्य के प्रकाशन को हमने प्राथमिकता दी है तथा इस संस्थान के प्रथेम-पुष्प के रूप में बालातप-भाष्य एवं हिन्दी व्याख्या के साथ "ललितासहस्त्रनामस्तोत्र" ग्रन्थ को आत्मज स्वं. संजय शर्मा को श्रद्धा-सुमन सदृश अर्पित क़रता हूँ, साथ ही विद्यानुरागी विद्वानों को भी इसे समर्पित करते हुए सुखानुभूति के साथ सन्तोष का अनुभव करता हूँ।

इस ग्रन्थ के सम्पादन के लिए मैं गोस्वामि पं. श्रीलक्ष्मीनारायण जी दीक्षित, जोधपुर, का आभार प्रकट करता हूँ। साथ ही इसकी हिन्दी-व्याख्या करने वाले डॉ. अर्कनाथजी चौधरी (जयपुर) का भी हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। मेरे ज्ञानदाता गुरु स्व. पं. उमेश चौधरी, न्याय–व्याकरण–वेदान्त–साहित्याचार्य, जिनके सान्निध्य में 10 वर्षों तक मैंने शिक्षा ग्रहण की है, उनके ज्येष्ठ पुत्र डॉ. अर्कनाथ जी चौधरी हैं, तथा इन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में जो सहयोग किया है वह एक अनुज का अपने अग्रज के लिए दिखाया गया स्नेह ही है।

मेरे लिए अत्यन्त प्रसन्नता-दायक यह भी है कि प्राच्य-पाश्चात्य विद्याओं के निष्णात, पाण्डुलिपि के संरक्षण एवं प्रकाशन कार्य के लिए अर्पित-जीवन, भारत-प्रसिद्ध मनीषि अनेकों ग्रन्थों के रचयिता, सम्पादक एवं अनुवादक श्रीगोपाल नारायण जी बहुरा, एम.ए., सवाई मानसिंह जी के पोथीखाना के अध्यक्ष ने इस पुस्तक पर वैदुष्यपूर्ण, गम्भीर एवं अमूल्य

प्रस्तावना लिखकर इस ग्रन्थ की श्रीवृद्धि के साथ इसकी उपादेयता को विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत किया है। उनके द्वारा लिखा गया प्रत्येक वाक्य आप्तवाक्य, ऋषिवाक् मानता हूँ। शतायुष्य के समीप में रहते हुए भी श्री बहुरा जी ने बौद्धिक, मानसिक एवं शारीरिक आयास किया है वह हमें उनके द्वारा दिया गया आशीर्वाद है। मैं उनको शतशः नमन करते हुए उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

अन्त में विद्वज्जनों से निवेदन है कि इस प्रथम-पुष्प को अधिक सुग्राह्य बनाने हेतु अपने सुझाव रूप सहयोग से हमें लाभान्वित करें जिससे हम अन्य संस्करण में सुधार कर सकें।

विनीत

रामकृपालु शर्मा

संस्थापक अध्यक्ष

श्रीसंजय शर्मा–संग्रहालय एवं शोध–संस्थान

प्रस्तावना

॥ श्रीः ॥

जब गजेन्द्र को पकड़ कर ग्राह अथाह जल सागर में खींचने लगा तो वह (गज) अपने को निरुपाय पाकर प्रार्थना करने लगा -

> यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं
> क्वचिद् विभातं क्व च तत् तिरोहितम्।
> अविद्धदृक् साक्ष्युभयं तदीक्षते
> स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥
>
> (भा.८.३.४)

जो अपनी ही माया से कहीं प्रतीत होता है और कहीं पर नहीं भी प्रतीत होता परन्तु साक्षी होकर दोनों ही अवस्थाओं को समान रूप से निरन्तर देखता रहता है - वह सब (जगत्) के और अपने भी मूल में विराजमान 'पर' से भी परे रहने वाला 'परात्पर' मेरी रक्षा करे।

वह 'परात्पर' जब तक प्रशान्त रहता है तब तक उसकी शक्ति उसी में समायी रहती है परन्तु जरा सा भी स्पन्द (हलचल) होते ही उस शक्ति-समुद्र में असंख्य बिन्दु अथवा केन्द्र विभात (प्रकट) हो जाते हैं। यही उस महाशक्ति का प्रादुर्भाव कहा जाता है जिसके निमेष (पलक गिराने) से जगत् का प्रलय होता है और उन्मेष से (पलक उठाते ही) उदय हो जाता है -

> निमेषोन्मेषाभ्यां प्रलयमुदयं याति जगती
>
> (आनन्दलहरी)

इस प्रकार परब्रह्म में जब शक्ति अथवा बल उद्बुद्ध होता है तब सृष्टि का क्रम चालू होता है। ब्रह्म रस है और उसकी शक्ति बल है। बल को ही माया कहते हैं। वह कभी सुप्त और कभी उद्बुद्ध (क्रियाशील) रहता है। यही महाशक्ति का निमेष और उन्मेष कहा जाता है। सुप्त अवस्था में ब्रह्म को रस-निर्विशेष ब्रह्म कहते हैं और जब वह कुर्वद्रूप (क्रियाशील) होता है तो (उसकी अप्रकट क्रियाशक्ति का अनुमान न लगा पाने के कारण) उसको परात्पर कहते हैं। न वाणी उसका वर्णन कर सकती है न मन ही वहाँ तक पहुँच सकता है। वह निःसीम होता है। जब उद्बुद्ध बल उसको परिच्छिन्न कर देता है तो उसकी संज्ञा पुरुष (एक घेरे में रहने वाला) हो जाती है। इसी पुरुष से जगत् की उत्पत्ति होती है।

रस और बल के संघर्ष से अक्षर पुरुष की अनन्त परा शक्तियाँ उद्भुत होती हैं, उनमें ज्ञान, बल और क्रिया स्वाभाविक (मूल) हैं -

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च। (श्वेताश्वतरोपनिषत्, ६-८)

अक्षर पुरुष की प्रकृति का जब 'पुरुष' ब्रह्म से समन्वय होता है तब विश्व-रचना होती है - जैसा कि गीता में कहा गया है -

मय्याध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते च चराचरम् (९-१०)

सृष्टि में जो कुछ प्रकृष्ट और सृष्ट है वह सब प्रकृति ही है

प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः।
सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता॥

'प्रकृति' में 'प्र' प्रकृष्टवाचक और 'कृति' सृष्टिवाचक है। परा शक्ति के तीन आयुधों की कल्पना की गई है, वे हैं पाश, अंकुश और धनुष-बाण। पाश इच्छाशक्ति का प्रतीक है। इच्छारूपी पाश में फँसकर व्यक्ति उलझता ही जाता है। उसमें से सुलझना कठिन हो जाता है, 'को सुरझ्यो इहिं जाल परि'। उसका संसार फैलता ही जाता है। अंकुश ज्ञान का प्रतीक है जो समस्त अविद्या और भ्रम की रंगभूमि मन-मतंग को सचेत कर ठीक मार्ग पर चलाता है। धनुष-बाण क्रिया शक्ति के नमूने हैं।

इसी आदि-प्रकृति से ब्रह्मा (सृष्टिकर्ता), विष्णु (पालक) और रुद्र (संहारक) उत्पन्न होते हैं और कल्प के अन्त में इसी में लीन हो जाते हैं -

त्वत्तः केशववासवप्रभृतयोऽप्याविर्भवन्ति ध्रुवम्।
लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरतौ ब्रह्मादयस्तेऽप्यमी
सा त्वं काचिदचिन्त्यरूपमहिमा शक्तिः परा गीयसे॥ १५॥

(लघुस्तव)

इस प्रकार यह संसार शक्ति का ही कार्य है। उसका आविर्भाव होने पर तीनों जगत् (इच्छा, ज्ञान और क्रिया जन्य) उत्पन्न होते हैं और उसका तिरोभाव होने पर उनका अभाव हो जाता है, इसलिए उसी शक्ति का चिन्तन करना चाहिए।

शक्तिजातं हि संसारं तस्मिन् सति जगत्त्रयम्।
तस्मिन् क्षीणे जगत् क्षीणं तच्चिकित्स्यं प्रयत्नतः॥

इच्छा, ज्ञान और क्रिया अथवा नाद, बिन्दु और कला इन तीनों में आविर्भूत शक्ति ही त्रिपुरा है। त्रिपुरा ही त्रिपुरा-बाला, त्रिपुर-सुन्दरी और त्रिपुर-भैरवी, इन तीनों रूपों का सामूहिक नाम है। इन्हीं तीनों से जगत् में विविध त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश), तीनों प्रकार की अग्नि (गार्हस्पत्य,

आहवनीय, दक्षिणा), तीनों शक्तियों महासरस्वती, महालक्ष्मी, महाकाली, ब्राह्मी,वैष्णवी, माहेश्वरी, तीनों लोकों (भूः, भुवः, स्वः) स्वर्ग, मर्त्य, पाताल, तीनों स्वर (मन्द, तार, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, समाहार अथवा ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत), तीनों वर्ण (अ, उ, म्) गायत्री, गंगा, विष्णुपदी यह त्रिपदी, हृदय, भ्रूमध्य और शिर ये त्रिपुष्कर, त्रिब्रह्म अर्थात् तीनों वेद, जो भी तीन की संख्या से परिमित हैं वे सब त्रिपुरा से अन्वित हैं -

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वरास् -
त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथ त्रिब्रह्मवर्णास्त्रयः।
यत्किंचिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तुत्रिवर्गादिकं
तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः॥

(लघुस्तव, १६)

यह महाशक्ति मूल रूप से समष्टिगत अव्यक्त चैतन्य की चित् शक्ति है अतः सब भूतों के चित्तों में भी नाना वृत्ति-रूप से निवास करती है, यथा - विष्णुमाया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, तृष्णा, शान्ति, जाति, लज्जा, क्षान्ति, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, दया, दीप्ति, तुष्टि, पुष्टि, भ्रान्ति आदि। आराधक अपनी भावना के अनुसार दुर्गा, महाकाली, महासरस्वती, महालक्ष्मी, अन्नपूर्णा आदि नामों से उसकी उपासना करते हैं।

संवेदन से पूर्व की अवस्था परमज्ञान की अवस्था होती है। वह 'परासंवित्' कहलाती है। संवेदन अथवा स्पन्दन के अनन्तर होने वाले प्रपञ्च (जगत्) के ज्ञान के आधार पर वह 'संवित्' विविध कलाओं के रूप में व्यक्त होती है। (सौभाग्य रत्नाकर)

आद्या महाशक्ति अगाध और अपार सौन्दर्य-राशि की भी स्वामिनी है। वे त्रिपुर की अधिष्ठात्री हैं इसलिए महात्रिपुरसुन्दरी कही जाती है। ललिता सुन्दरी का ही पर्यायवाची है। ललिता, परा, परमभट्टारिका आदि नामों से पूजित चरम सौन्दर्य रूपिणी माता को श्रीचक्र से व्यक्त किया जाता है और इसकी आराधना को श्रीविद्या कहते हैं। श्री शब्द का अर्थ सामान्यतया 'लक्ष्मी' लिया जाता है परन्तु 'श्री' तो उस परमा आद्या महाशक्ति का वाचक है जो श्रीचक्र में निवास करती है। इसी के माध्यम से श्रीतत्त्व का चिन्तन किया जाता है।

सामान्यतया श्रीचक्र षट्कोण के रूप में बनाया जाता है। दो त्रिभुज एक दूसरे को काटते हुए इस तरह बनाए जाते हैं कि एक का शीर्ष ऊपर होता है और दूसरे का नीचे, एक की आधार रेखा दूसरे की बगल वाली

रेखा के मध्य बिन्दुओं में होकर निकलती हैं। दोनों त्रिभुजों के बीच की जगह में दोनों (त्रिभुजों) को छूता एक वृत्त (गोला) बनाते हैं जिसके केन्द्र में बिन्दु रहता है जो प्रकाश बिन्दु कहलाता है। यह शिवतत्त्व के अनुप्रवेश पर बनता है और घेरने वाले वृत्त को नाद (अथवा शक्ति) का प्रतीक माना जाता है। इस प्रकार ये नाद और बिन्दु की स्थिति दर्शाते हैं। ऊपर से आने वाला अधो मुखी शीर्षक त्रिभुज शक्ति का और नीचे से आने वाला ऊर्ध्वमुख त्रिभुज शिव का प्रतीक है। शक्ति का वर्ण लाल और शिव का श्वेत माना गया है। लाल सोम है और श्वेत अग्नि इन दोनों कलाओं से ही सृष्टि होती है। 'अग्नीषोमात्मकं जगत्'। यह चित्र ही श्री, परा, ललिता और त्रिपुरसुन्दरी के प्रतीक रूप में पूजा जाता है।

यह तो हुआ सरल श्रीचक्र, इसका विदग्ध रूप कुछ जटिल होता है। उसमें पहले एक वृत्त खींचते हैं। उसमें नौ त्रिभुज एक दूसरे को काटते हुए बनाए जाते हैं। इनमें महात्रिपुरसुन्दरी अपने नौ रूपों में निवास करती है। इनके नाम श्री अथवा त्रिपुरसुन्दरी के पर्यायवाची रूपों में इस प्रकार दिये गये हैं - त्रिपुरा, त्रिपुरेशी, त्रिपुरमालिनी, त्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुरवासिनी, त्रिपुरश्री, त्रिपुरसिद्धा और महात्रिपुरसुन्दरी। ये नौ त्रिभुज नौ योनियों के प्रतीक हैं। वृत्त को एक आठ कमल दल वाला वलय घेरता है जो विविध द्वीपों के प्रतीक हैं, फिर उसके चारों ओर एक सोलह कमलदल वाला वलय होता है। अष्ट कमलदल और षोडश कमलदल वाले वलयों के बीच में आठ रिक्त स्थान छूट जाते हैं जो सप्त सागर और एक व्योम का सूचन करते हैं। षोडशदल कमल वाले वलय के सोलह भाग चन्द्रमा की पंद्रह कलाओं तथा एक शाश्वत कला के द्योतक हैं। इसको 'सदा' भी कहते हैं। दूसरे वलय के बाहर की ओर तीन गुण खींचे जाते हैं जो सत्त्व, रज और तम गुणों को बताने वाले हैं। इस प्रकार यह श्रीचक्र मूल शक्ति महात्रिपुरसुन्दरी के नौ योनि-विग्रहों, देश-खण्डों, काल-विभागों और गुणों को व्यक्त करने वाला होता है।

सोलह कलाओं और आदिकला सहित महात्रिपुर-भैरवी 'षोडशी' कहलाती है वह उसका सर्वोपरि रूप है। वही 'परम शिव' की प्रिया और स्वामिनी बनकर मणिद्वीप में विराजती है। वही 'सदा' कला ललिता नाम से भी प्रसिद्ध है।

वृत्त की परिधि गतिशील काल का प्रतीक है। इसकी आदि-बिन्दु और अन्तिम बिन्दु अर्थात् आदिकला और षोडशी अर्थात् महात्रिपुरसुन्दरी एक ही है। दोनों ही महिमा सम्पन्न हैं। वही ललिता है। षोडश नित्याओं के नाम

इस प्रकार हैं - महात्रिपुरसुन्दरी[१], कामेश्वरी[२], भगमालिनी[३], नित्यक्लिन्ना[४], भेरुण्डा[५], वह्निवासिनी[६], महाविद्येश्वरी[७], दूती[८], त्वरिता[९], कुलसुन्दरी[१०], नीलपताका[११], विजया[१२], सर्वमङ्गला[१३], ज्वालामालिनी[१४], चित्रा[१५] और षोडशी[१६]।

श्रीचक्र प्रायः स्वर्ण, रजत अथवा ताम्रपत्रों पर बनाया जाता है। सामान्य-जन इसको स्फटिक, प्रस्तर-खण्ड या भूर्ज-पत्र पर भी आलेखित कर लेते हैं। वामकेश्वर तंत्र में कहा गया है कि नौ त्रिभुज नौ आवरणों के प्रतीक हैं। पाँच त्रिभुजों के शीर्ष ऊपर की ओर और चार के नीचे की ओर होते हैं। इसको सृष्टिक्रम चक्र कहते हैं। यदि इस चक्र को उलटा रखा जाय तो वह संहारक्रम चक्र बन जाता है।

ऊपर से देखने पर श्रीचक्र में बिन्दु, त्रिकोण, कोण, पटल या दल तथा वृत्त दिखाई देते हैं। वृत्तों को मेखला और तीन समानान्तर रेखाओं से बने समकोण चतुर्भुजों को भूपुर कहते हैं। दो रेखाओं के मिलन स्थल को सन्धि और जहाँ तीन रेखाएँ मिलती हैं वह 'मर्म' कहा जाता है। ध्यान से देखने पर ज्ञात होगा कि यह चक्र नौ भागों में विभक्त होता है जिनको आवरण कहते हैं। इनमें ही परमा शक्ति के निर्वाण-चैतन्य से जगत् की उत्पत्ति होती है। यों सच्चिदानन्दरूपिणी महाशक्ति का सूक्ष्म रूप नामरूपात्मक स्वरूप में नौ अवतरणों में प्रकट होता है जिनसे पूर्ण श्रीचक्र की रचना सम्भव होती है। ये आवरण महाशक्ति को उद्भासित ही नहीं आवृत भी करते हैं। श्रीचक्र के नौ भागों के नाम ये हैं - १. बिन्दु (मध्य मे) २. त्रिकोण, ३. त्रिकोण को घेरता हुआ अष्टकोण चक्र, ४. अष्टकोण चक्र के चारों ओर दश कोणों वाला अन्तर्दशार चक्र, ५. अन्तर्दशार चक्र को घेरे हुए पुनः दश कोणों वाला बहिर्दशार चक्र, ६. इसको घेरता हुआ चतुर्दशकोणात्मक चतुर्दशार चक्र, ७. इसके चारों ओर अष्टदल कमल सहित एक वृत्त होता है, ८. सप्तम चक्र के चारों ओर षोडशदल पद्म वृत्त होता है और इसके बाहर की ओर तीन वृत्त होते हैं जिनको मेखलात्रय कहा गया है, ९. तीन समानान्तर रेखाओं से बना समकोण जिसकी प्रत्येक दिशा में द्वार बना होता है। इसको भूपुर कहते हैं।

यही श्रीचक्र नौ आवरणों एवं उपांगों सहित सम्पूर्ण जगत् का द्योतक है। यही ब्रह्माण्ड, जीव और मातृका सहित श्रीललिता महाशक्ति के स्वरूप का प्रतीक है। पाँच अधोशीर्ष त्रिकोण शक्ति को और चार ऊर्ध्वशीर्ष त्रिकोण शिव को बताते हुए 'शिवः शक्त्या युक्तो' स्वरूप को व्यक्त करते हैं।

समयाचार मत के अनुसार चक्र के मध्य में स्थित बिन्दु के चारों ओर का वृत्त बैन्दव स्थान कहलाता है। यह बिन्दु चक्र में किसी भी रेखा,

त्रिकोण अथवा कोष्ठक से सम्बद्ध नहीं है। यही चित्कला या श्रीललिता का अधिष्ठान है। अब त्रिकोणों को लीजिए। प्रथम त्रिकोण आज्ञाचक्र है, अष्टकोण विशुद्ध चक्र है, अन्तर्दशार चक्र अनाहतचक्र का द्योतक है, बहिर्दशारचक्र मणिपूर को और चतुर्दशारचक्र स्वाधिष्ठानचक्र को सूचित करते हैं। भूपुर मूलाधार का प्रतीक है। इसके चारों द्वार चार वेदों के सूचक हैं। यह नवावरण चक्र शब्द और नाद की चतुर्दशाओं - परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी तथा जीव की चारों अवस्थाओं - जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय एवं अन्तः स्थित चित् प्रकाश का भी द्योतक है। सब से भीतर बिन्दु को घेरे हुए त्रिकोण का शीर्ष नीचे की ओर होता है। इसको शक्तिचक्र कहते हैं। यही चित् शक्ति का विमर्शशक्ति के रूप में सृष्टि के लिए उन्मुख होना दर्शाता है। इसके तीनों शीर्ष इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्ति को बतलाते हैं। यह त्रिकोण ही नाम रूपात्मक जगत् का उत्पत्ति स्थान कहा गया है तथा यही परा वाक् का स्थान है जो पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाणी तथा मातृकाओं को जन्म देता है। शेष सातों आवरण इन्हीं 'प्रकाश' और 'विमर्श' शक्तियों से आलोकित होते हैं। यह सप्तवर्णात्मक त्रिकोण 'त्रिपुटी' भी कहलाता है अर्थात् इसमें ज्ञाता, ज्ञात और ज्ञान का समावेश रहता है, इसी को 'कामकला' कहते हैं। यह चन्द्रमण्डल को द्योतित करता है और सुषुप्ति अवस्था का प्रतीक है। उक्त दोनों आवरणों से रुद्रग्रन्थि भी सम्बद्ध है। अष्टकोण चक्र पश्यन्ती वाक् का प्रतीक है। अन्तर्दशार और बहिर्दशार आवरण भी उक्त बिन्दु और त्रिकोण आवरणों के रश्मि समूह से प्रकाशित होते हैं और जीव की स्वप्नावस्था के प्रतीक हैं। सूर्यमण्डल और विष्णु ग्रन्थ इनसे ऊपर अवस्थित है। ये मध्यमा वाक् के भी प्रतीक हैं और शरीर में 'अनाहत' तथा मणिपूर चक्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं। चतुर्दशारचक्र ही स्वाधिष्ठानचक्र है और वैखरी वाक् तथा पञ्चाशत (५०) वर्णों को प्रकट करता है। भूपुर ही मूलाधार है जहाँ चित् शक्ति का अवरण पूरा होकर बिन्दु अथवा सहस्रार कुण्डलिनी मूलाधार के रूप में स्वाधिष्ठान सहित अवस्थित रहता है। यह जीव की जागृत अवस्था, अग्निमण्डल और ब्रह्म ग्रन्थि को द्योतित करता है। अष्टदल कमल तथा षोडश दल कमल एवं बाहरी वृत्त प्रकाशांश और शेष पाँच विमर्शांश हैं। समयाचार के अनुसार यही श्रीचक्र का संक्षिप्त विवरण है।

शक्ति की उपासना के दो प्रकार बताए गये हैं, वामाचार और दक्षिणाचार। वामाचार को कौलाचार और दक्षिणाचार को समयाचार कहते हैं। वामाचार में प्रत्येक वस्तु का स्थूल रूप में ग्रहण किया जाता है - यथा योनि, पञ्चमकार आदि। दक्षिणाचार में इनको सूक्ष्म अर्थ में लिया जाता है - जैसे -

गुड़, अदरक का रस, नारियल का जल, शहद, चावल या धान का लावा आदि। योगिनी तंत्र में मांस और मत्स्य के स्थान पर नमक और अदरक का प्रयोग करने का विधान बताया है। इसी तरह मिथुन काल की चेष्टाओं के स्थान पर विविध प्रकार के पुष्पों का श्रीचक्र पर समर्पण करने का विधान है।

(हरतत्त्वदीधिति)

तान्त्रिक साधना की नकल करने वाले तथाकथित नासमझ साधकों के कारण समाज में अतिचार और अभिचार की अवांछित वृद्धि हुई। इस कुवृत्ति से बचाने और हिन्दू समाज का उद्धार करने हेतु श्रीशङ्कराचार्य ने विशुद्ध वैदिक आधार पर 'समयामत' अथवा 'दक्षिणाचार' की संस्थापना की जो उन्हीं के समय से सभी शाङ्कर मठों एवं अन्य साधनों स्थलों में प्रचलित है। इसमें मन्त्र, लय, भक्ति और जीव के योग की साधना की जाती है जिसको सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, वसिष्ठ और शुक संहिताओं पर आधारित 'शुभागम पञ्चक' कहते हैं। दक्षिणामूर्ति इसके ऋषि हैं और कामेश्वर-कामेश्वरी की इसमें उपासना की जाती है जो शिव और शक्ति के स्वरूप हैं। साधक इस युग्म के अभिन्न स्वरूप का श्रीचक्र के विभिन्न अंगों में दर्शन करता है और शरीरस्थ मूलाधारादि चित् चक्रों में अनुभव करता हुआ कपाल-मध्य सहस्रार में स्थित होकर परमा शक्ति के साथ एकात्म्य प्राप्त करता है। यह पूजा मानसी होती है और अन्तर्याग कहलाती है। समयामत का यही संक्षिप्त परिचय है।

देवता की आराधना में पाँच अंग होते हैं - पटल, कवच, पूजापद्धति, सहस्रनाम और स्तोत्र। पटल देवता का गात्र, पद्धति शिर, कवच नेत्र, मुख सहस्रार (सहस्रनाम) और स्तोत्र रसना है।

पटलं देवतांगात्रं पद्धतिर्देवताशिरः।
कवचं देवतानेत्रे सहस्रारं मुखं स्मृतम्।
स्तोत्रं देवीरसा प्रोक्ता पञ्चाङ्गमिदमीरितम्॥

इस प्रकार सहस्रनाम आराधना का एक आवश्यक अंग है। 'ललिता सहस्रनाम' ब्रह्माण्ड पुराण के अन्तर्गत है और 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' इस उपनिषद् वाक्य के अनुसार ही इसकी रचना हुई है। एक हजार नामों में एक ही देवता की अनेक रूपता व्यक्त की गई है। साथ ही विशिष्ट लक्षणों और शक्तियों का भी सूचन होता है।

यह सहस्रनाम विष्णु के अवतार हयग्रीव ने अगस्त्य ऋषि को सुनाया था। सभी श्रीविद्या-साधकों के लिए इसका पाठ करना आवश्यक है। कहा जाता है कि स्वयं श्रीललिता के आदेश से साधकों के कल्याणार्थ वाग्देवी ने

इसकी रचना की थी। यह भी कहा गया है कि यदि जप, पूजा आदि न भी किया जाय तो ललिता-सहस्रनाम का पाठ करने से ही साधक को सर्वसिद्धि प्राप्त हो जाती है। सहस्रनाम का प्रत्येक नाम मन्त्रगर्भित और अभीष्ट फल प्रदायक है।

विगत शताब्दियों में इस सहस्रनाम स्तोत्र पर अनके बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा संस्कृत टीकाएँ रची गई हैं यथा - विमर्शानन्द, विद्यारण्य, मुनीश्वर, भट्ट नारायण, शङ्कर और भास्कर राय और उनके गुरु नृसिह आदि। वर्तमान शताब्दी में श्रीकल्याणानन्द भारती स्वामी, सिंहभट्ट और राममूर्ति शास्त्री आदि ने व्याख्याएँ लिखी हैं। श्रीअनन्त कृष्ण शास्त्री और श्री एन.डी. शर्मा तथा डाक्टर सूर्यनारायण मूर्ति ने अंग्रेजी भाषा में भी इस स्तोत्र की व्याख्या की है।

महादेवी ललिता से सम्बन्धित और भी अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं। ब्रह्माण्डपुराण में ही ललिता त्रिशती है। इसी प्रकार ललिता पञ्चशती, ललितार्या द्विशती, ललिताक्रमदीपिका, ललिता-गद्यनिरूपण, आगमविलासगत ललितातन्त्र, ललितादिपूजाविधि (चिन्मयमूर्तिकृत), ललितानुराग (काव्य), ललितापूजा-पद्धति, ललितामाहात्म्य, ललितारहस्य, ललितासपर्यापद्धति, ललितार्चनदीपिका, भास्कररायकृत ललितार्चनविधि, सिंहसिद्धान्तसिन्धुकर्ता शिवानन्दगोस्वामी दीक्षानाम सच्चिदानन्दनाथ कृत ललितार्चनचन्द्रिका, ललितासिद्धान्त, ललितास्तवरत्न (दुर्वासाकृत), ललिताहृदय आदि कृतियों और ग्रन्थों के नाम थियोडोर ऑफ्रेट ने अपने वृहत् सूचीपत्र में संदृब्ध किये हैं।

उक्त सभी भाष्यों और टीकाओं में श्रीभास्कर राय कृत सौभाग्य-भास्कर भाष्य प्रमुख माना जाता है। अन्य सभी टीकाएँ प्रायः इसी पर आधारित और अनुप्राणित हुई हैं। परन्तु भास्कर के प्रखर पाण्डित्य के रश्मिजाल में साधारण प्रज्ञा वाले चकाचौंध में चुँधिया जाते हैं अतः अर्थ ग्रहण करने में कदाचित् ही कृतकार्य हो पाते हैं। अतः नागरवंशीय शिवनाथात्मज शम्भुनाथ नामक विद्वान् ने प्रातःकालीन भास्कर की कोमल रश्मियों सदृश सर्वसौख्यकर बालातप भाष्य की रचना धृत्यधृतिवर्षे (१९१८) संवत् में करके लिखी। यह भाष्य उन्होंने अपने अमृतनामाख्य गुरु की आज्ञा और कृपा से रचा जिनका दीक्षानाम गुरुनाथ रहा होगा। यह भी विदित होता है कि भाष्यकार शम्भुनाथ के ये गुरु 'माधवपदपङ्कजमधुमधुप' थे। इस भाष्य की लिपि कृष्ण नामक लेखक ने जयपुरपति के प्रीत्यर्थ 'गजग्लौनन्देन्दु' (१९१८) संवत् में की थी। उस समय (संवत् १९१८ मे) जयपुर पति महाराज

सवायी रामसिंह द्वितीय (१८९२-१९३७ वि.) थे जिनकी शिवशक्ति और तान्त्रिक श्रद्धा प्रसिद्ध है। जयपुर के राजमहलों में उनके द्वारा १९२० संवत् में निर्मापित राजराजेश्वर मन्दिर में 'श्रीचक्र' संस्थापित रहा है जिसका नित्य पूजन महाराज़ा के प्रतिनिधि रूप में दौसा वास्तव्य 'त्रिपुरापदाब्जभजनप्राप्तोदय, गौडचतुर्वेदवंशीय पण्डित नाथूनारायण तदनु उनके वंशज करते रहे हैं। पण्डित नाथूनारायण गायत्र्युपासक थे। उन्होंने 'गायत्रीकल्पलता' नामक ग्रन्थ की रचना भी की थी। गायत्रीमन्त्र के ही त्रिपुरोपासना में गूढ मन्त्र और महात्रिपुर सुन्दरी को 'श्रीचक्रनिलया' कहा गया है।

जब उक्त भाष्य की प्रति महाराजा के प्रीत्यर्थ लिखी गई तो वह राजकीय पोथीखाना में उपलब्ध होनी चाहिए थी परन्तु न इस भाष्य की प्रति न पण्डित नाथूनारायणजी की कोई रचना पोथीखाना में प्राप्त हुई। इसका कारण यह हो सकता है कि महाराजा रामसिंह (द्वि.) की रुचि के ग्रन्थों का संग्रह राजराजेश्वर मन्दिर में ही रहता था और वह पोथीखाना का अंग नहीं था। सम्भव है वह अब भी वहीं हो। मैंने 'गायत्री कल्पलता' की पोथी नाथूनारायण जी के वंशधर स्व. पं. सूर्यनारायण जी 'दिवाकर' के पुत्रों के पास देखी थी।

प्रस्तुत संस्करण की आधार पोथी पण्डित रामकृपालुजी शर्मा (चौमू निवासी) ने अपने अल्पायुष्य में दिवंगत पुत्र संजय शर्मा की स्मृति में संस्थापित श्री संजय शर्मा संग्रहालय एवं शोध संस्थान के विशाल संग्रह में से चयन करके प्रथम पुष्प के रूप में प्रकाशनार्थ उपलब्ध कराई है। संस्थान का परिचय श्री शर्मा जी ने अपने वक्तव्य में बड़े विनम्र भाव से दिया है तथा भावी योजनाओं से विद्यानुरागी विद्वानों को लाभान्वित करने का मन्तव्य प्रकट किया है।

इस पुस्तक का पाठ सम्पादन श्रीशर्माजी के 'पापान्निवारयति योजयते हिताय' परम सुहृद् और त्रिराज्य-गुरु श्रीललिताचरणचञ्चरीक शिवानन्द जी गोस्वामी कृत 'सिंहसिद्धान्तसिन्धु' के यशस्वी सम्पादक पण्डित-मतल्लिक श्रीमल्लक्ष्मीनारायणजी गोस्वामी के पाठाशुद्धिपाटनपटु हाथों द्वारा हुआ है। अत: पाठ की शुद्धि के विषय में कोई संशय उपस्थित नहीं होना चाहिये। अनेक प्रकार की विग्रह-व्याधियों से व्यथित श्रीगोस्वामीजी ने जिस तत्परता से यह कार्य सम्पादन किया है उससे श्रीललिता का कृपापाङ्गावलोकन अवश्य ही उनको प्राप्त होगा और सुजन साधक इससे उपकृत होंगे।

ग्रन्थ की उपयोगितावृद्ध्यर्थ श्रीशर्मा जी ने इसको हिन्दी व्याख्या से भी समन्वित कर देना उचित समझा एतदर्थ इन्होंने अपने ज्येष्ठ गुरु-पुत्र

डाक्टर अर्कनाथ चौधुरीजी को तत्पर किया। संस्कृत व्याकरण, दर्शन और शिक्षाशास्त्र के धुरीण डॉ. चौधुरी जी ने हिन्दी व्याख्या द्वारा महाशक्ति के अनेक रहस्यमय नामों का अर्थोद्घाटन भी कर दिया है। अपनी वैदुष्यपूर्ण भूमिका में उन्होंने महान् भाष्यकार भास्कराचार्य के विषय में महत्वपूर्ण सूचनाओं सहित सहस्रनाम के पाठ का फल, श्रीविद्या (षोडशी), द्वादशपीठ, त्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप, श्रीविद्या के तान्त्रिक महत्व और प्रस्तुत बालातप भाष्य की विशेषताओं पर सम्यक् प्रकाश डाला है।

इस प्रकार यह भुक्तिमुक्तिप्रदायक स्तोत्र पठनीय, मननीय और सङ्ग्रहणीय पुस्तक के रूप में सुजन साधकों के उपयोगार्थ प्रस्तुत हो रहा है तदर्थ यह पण्डितत्रयी धन्यवादार्ह है।

गोपालनारायण बहुरा

गंगादशमी, २०५२ वि.
२४-५-९५
बहुराजी का बाग,
जयपुर-३०२०१५

भूमिका

भारतीय परम्परा में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ माने गये हैं। चारों पुरुषार्थों में प्रथम एवं महत्वपूर्ण पुरुषार्थ है धर्म। शास्त्रविहित आचार-विचार, पूजा, ध्यान, यज्ञ, तप आदि धर्म ही अदृष्ट का निर्माण करते हैं तथा सुख के लिए अर्थ का मार्ग प्रशस्त करते हैं। अर्थ काम (कामनाओं) की पूर्ति में सहायक है। ऐहिक काम-तृप्ति के पश्चात् अनायास ही पारलौकिकता की कामना से व्यक्ति आत्मा, परमात्मा-विषयक चिन्तन आदि द्वारा आत्म-साक्षात्कार या ब्रह्मज्ञानी होकर सच्चिदान्दमय हो उठता है। मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

इन प्रक्रियाओं में यह देखने को मिलता है कि सुख-विशेष ही पुरुषार्थ है जो कृत्रिम, अकृत्रिम दो भेदों से काम एवं मोक्ष भी कहलाता है। इस सुख-विशेष के लिए विद्या, ज्ञान, विनम्रता आदि भी आवश्यक हैं। कहा भी गया है -

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्॥

सार यह है कि धर्म सुख का या सुखविशेष-मोक्ष का साधन है।

सुख के साधनीभूत धर्मज्ञान के लिए तथा विविध प्रकार के चित्तवृत्ति वाले लोगों को अनुगृहीत करने के लिए ईश्वर की प्रेरणा से परस्पर विलक्षण वेदशास्त्र, स्मृति, पुराण, इतिहास, दर्शन आदि विविध विद्याएँ प्रवृत्त हुईं। इनमें वेद अपौरुषेय माने जाते हैं तथा शेष ईश्वरानुकम्पा से अनुकम्पित ऋषियों, मुनियों द्वारा रची गई हैं।

धर्म के साधनीभूत दो मार्ग हैं- कर्ममार्ग तथा ब्रह्मविज्ञान। ब्रह्मविज्ञान के सर्वजन सुलभ नहीं होने से सामान्य जनों के लिए कर्ममार्ग ही एक मात्र साधन शेष रहता है। इनमें भी कुछ लोग वैदिक कर्ममार्ग का सहारा लेते हैं तथा कुछ लोग तन्त्र-मन्त्र मार्ग का आलम्बन करते हैं। तन्त्रमार्ग में भी श्री त्रिपुरसुन्दरी की आराधना में प्रवीण लोग बाहुल्येन दृष्टिगोचर होते हैं। सुन्दरीतापनीपंचक, भावनोपनिषद्, कौलोपनिषद्, गुह्योपनिषद्, महोपनिषद् इत्यादि वेद के शिरोभाग के रूप में ही हैं। अत एव त्रिपुरसुन्दरी के आराधन के लिए उपनिषदों पर आधारित तन्त्र, मन्त्र, नामस्तोत्र इत्यादि भी वेदमूलक होने से प्रामाणिक ही हैं।

जगज्जननी त्रिपुरसुन्दरी परमशिव की अर्धांगिनी श्रीललिता की आराधना हेतु मन्त्र-शास्त्रों का सर्वस्व श्री 'ललिता-सहस्र-नामस्तोत्र' है। श्रीविद्यारूपा स्वयं श्रीललिता जी मानी जाती हैं। अत एव श्रीविद्या के उपासक महामुनि अगस्त्य ने भगवान् हयग्रीव के मुख से ब्रह्माण्ड पुराण के अन्तर्गत आने वाले मन्त्र, जप, न्यास, पूजा, पुरश्चरण, होम, रहस्यस्तोत्र इन सातखण्डों में जगदम्बा (श्रीमाता) के प्रादुर्भाव आदि को सुना। परन्तु अपने तपोबल से अगस्त्य ने जाना कि 'श्रीललितासहस्रनाम' नामक परमरहस्य को गुरु श्रीहयग्रीव ने मुझ जैसे अनन्य भक्त को नहीं बताया। श्रीअगस्त्य ने विनम्रता एवं आदर के साथ अपने गुरु हयग्रीव से पूछा कि हे गुरुवर ! आपने मुझे ललितासहस्रनामरूपी परमरहस्य को क्यों नहीं बताया ?

इस प्रश्न को सुनकर अगस्त्य की रहस्य सुनने की पात्रता का निश्चय कर ब्रह्माण्ड पुराण के उत्तर भाग में वर्णित ललितासहस्रनामक परमरहस्य विद्या का उपदेश श्रीहयग्रीव ने अगस्त्य को दिया। ब्रह्माण्ड पुराण के अन्तिम भाग में वाग्देवी द्वारा रचित ललितासहस्रनाम के पाठादि का फल ८६ श्लोकों में वर्णित है। आदि एवं अन्त का श्लोक इस प्रकार है -

> इत्येतन्नामसाहस्रं कथितन्ते घटोद्भव।
> रहस्यानां रहस्यञ्च ललिताप्रीतिदायकम्॥ १॥
> अनेन सदृशं स्तोत्रं न भूतन्न भविष्यति।
> सर्वरोगप्रशमनं सर्वसम्पत् प्रवर्धनम्॥ २॥
> इत्युक्त्वा श्री हयग्रीवो ध्यात्वा श्रीललिताम्बिकाम्।
> आनन्दमग्नहृदयः सद्यः पुलकितोऽभवत्॥८६॥

पाठ का फल

श्रीललिता जी को प्रसन्नता देने वाला ललितासहस्रनामक स्तोत्र रहस्यों का भी रहस्य, अर्थात् परमरहस्य-विद्या है। इस प्रकार का स्तोत्र न हुआ, न ही होगा। सभी रोगों को शान्त करने वाला, सभी प्रकार की सम्पत्तियों को बढ़ाने वाला, दीर्घ-आयु प्रदान करने वाला, वंश की वृद्धि करने वाला, पापों का क्षय करने वाला तथा दुर्ग्रह-शत्रु आदि को नष्ट करने वाला है यह ललितासहस्रनामस्तोत्र। यहां तक वर्णन मिलता है कि - गंगादि सभी तीर्थों में स्नान करने से, करोड़ों शिवलिङ्ग की स्थापना करने से, सूर्यग्रहण के समय कुरुक्षेत्र में कोटि बार दान देने से, सुवर्णों का दान देने से, निर्जल मरुभूमि में कोटि-कोटि कूप खुदवाने से, दुर्भिक्ष के समय अनेकों ब्राह्मणों को भोजन कराने से जो पुण्य प्राप्त होता है, उस पुण्य से कई गुणा अधिक पुण्य श्रीललिता जी के रहस्यात्मक हजार नाम के पाठ से प्राप्त होता है।

पूजा तिथियाँ

संक्रान्ति, शुक्ल-पक्ष की नवमी, चतुर्दशी, पूर्णमासी तथा शुक्रवार को ललिता जी का पञ्चोपचार पूजा करने से तथा सहस्रनाम-स्तोत्र का पाठ करने से रोगों की शान्ति तथा दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है। दिन में तीन बार इस स्तोत्र का पाठ करने से लक्ष्मी स्थिर होकर निवास करती है, वाणी की देवता जिह्वा के अग्रभाग पर नाचा करती है। श्रीमन्त्रराज को जानकर जो व्यक्ति श्रीचक्र की पूजा करता है वह देवी का प्रिय तथा सत्पात्र माना जाता है।

वैशिष्ट्य -

ललितासहस्रनाम् को रहस्यों का रहस्य मानते हैं। यह रहस्य विद्यारूपा है। अत एव इसे तन्त्रविद्या भी मानते हैं। उपास्य देवताओं के भेद से तन्त्रविद्या को दशमहाविद्या भी कहते हैं। काली, तारा, श्रीविद्या (षोडशी) भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगला, मातंगी एवं कमला ये दश महाविद्याएँ हैं।

श्रीविद्या (षोडशी)

दश महाविद्याओं में त्रिपुरसुन्दरी का ही वाचक षोडशी एवं श्रीविद्या है। त्रिपुरा तथा ललिता इन नामों से भी एक ही विद्या - "श्रीविद्या" का वर्णन किया गया है। शक्तिसंगम-तन्त्र के अनुसार सुन्दरी का ही अन्य नाम भैरव ललितेश्वर या त्रिपुरभैरव है। यद्यपि महाशक्ति नाम तथा रूप के भेद से अनन्त हैं, तथापि उनका परमस्वरूप एक ही है। त्रिपुरा के उपासकों का मानना है कि ब्रह्मादि देव भी त्रिपुरा के ही उपासक हैं। त्रिपुरा=ललिता का परमरूप इन्द्रिय एवं मन से भी परे है। वह पूर्णाहन्तामय तुरीयब्रह्मरूपा हैं। उनका परमरूप वासनामय, मनोमय है, तथा सूक्ष्म रूप मन्त्रात्मक है। वह श्रोत्रेन्द्रिय वागिन्द्रिय आदि का विषय नहीं है। श्रीललिता का स्थूल रूप ही कर, चरण मुख आदि से युक्त है तथा यह नेत्र आदि इन्द्रियों का विषय है।

त्रिपुरा (ललिता) के उपासकों में मन्मथ की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। मन्मथ विद्या-प्रवर्तक होने के कारण विद्येश्वर है। देवी की कृपा से काम-सदृश बारह विद्या-प्रवर्तक हुए, जिनमें अधिकांश का उल्लेख ललिता-सहस्रनाम में किया गया है। उन विद्याप्रवर्तकों का रूप देवी का ही रूप है या देवी, तत्स्वरूपा हैं ऐसी व्याख्याएँ की जाती हैं। यथा - मनु, कुबेर, चन्द्र, मन्मथ, लोपामुद्रा, अगस्त्य, अग्नि, सूर्य, इन्द्र, स्कन्द, शिव और क्रोधभट्टारक। इनके अतिरिक्त बीजों एवं मन्त्रों की भी उपासना-पद्धति प्रचलित है। परन्तु इनमें विद्येश्वरों की ही प्रधानता है। परन्तु विद्येश्वरों में भी मन्मथ

(कामराज) तथा लोपामुद्रा का सम्प्रदाय ही सुरक्षित है, अन्य लुप्त हो गए। कामराज विद्या कादि पञ्चदश वर्णात्मक है। लोपामुद्रा-विद्या हादि पञ्चदश वर्णात्मक है। भास्कर राय ने ललिता-सहस्रनाम के भाष्य में यथास्थल इनका उल्लेख किया है। लोपामुद्रा ने अपने पिता के घर पिता की प्रमुख उपास्या त्रिपुरा की शक्ति भगमालिनी देवी की सेवा की थी। जिससे प्रसन्न होकर देवी ने उन्हें अपनी सेवा का वरदान दिया। लोपामुद्रा ने त्रिपुरा-विद्या का उद्धार किया। अत एव लोपामुद्रास्वरूपिणी श्रीललिता जी को माना गया है। अगस्त्य यद्यपि वैदिक थे, फिर भी अपनी पत्नी से दीक्षा लेकर भगवती की आराधना के अधिकारी बने।

श्रीविद्या शक्तिचक्र की साम्राज्ञी मानी जाती है। यह ब्रह्म-विद्यास्वरूपिणी आत्मशक्ति है। अत एव प्रसिद्धि हुई -

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ॥

सार यह है कि भोग और मोक्ष एक साथ नहीं हो सकते हैं। किन्तु श्रीसुन्दरी = ललिता, त्रिपुरसुन्दरी के उपासकों के हाथ में भोग एवं मोक्ष एक साथ ही रहता है।

श्रीविद्या वेदानुमोदित तन्त्रविद्या है। अत एव शङ्कराचार्यों के मठों में श्रीविद्या की उपासना तथा श्रीचक्र का पूजन अब भी प्रचलन में है।

ललितासहस्रनाम में देवी को बारह पीठों की अधिष्ठात्री माना गया है। वे स्थान क्रमशः इस प्रकार हैं।

१. कामाक्षी (काञ्चीपुरम्)
२. भ्रामरी (मलयगिरि पर)
३. कुमारी या कन्याकुमारी (केरल में)
४. अम्बा (आनर्त, गुजरात में)।
५. महालक्ष्मी (करवीर में)
६. कालिका (मालव में)
७. ललिता (प्रयाग में)
८. विन्ध्यवासिनी (विन्ध्याचल में)
९. विशालाक्षी (वाराणसी में)
१०. मूलचण्डी (गया में)
११. सुन्दरी (बंगाल में)
१२. गुह्येश्वरी (नेपाल में)

वस्तुतः ये देवी के बारह रूप हैं। इनके अतिरिक्त प्रधान तीन स्थान हैं (१) कामगिरि (पूर्वसागर तट पर) (२) जालन्धर (मेरुशिखर पर) ३- पूर्णगिरि (पश्चिम सागर तट पर)।ये त्रिकोण के तीन बिन्दु हैं।

त्रिपुरा या त्रिपुरसुन्दरी

देवी ललिता का ही यह अपर नाम है त्रिपुरा या त्रिपुरसुन्दरी। जीवों को दुःख-सागर में निमग्न देखकर ऋषि अगस्त्य करुणावश द्रवीभूत हो गये तथा कांची में महाविष्णु की तपस्या करने के बाद प्रसन्न हुए महाविष्णु से संसार के उद्धार का उपाय पूछा। महाविष्णु ने त्रिपुरा की स्थूलमूर्ति ललिता जी का माहात्म्य अगस्त्य को बताया, तथा भण्डासुर आदि के वध का भी वर्णन किया। अत एव देवी ललिता को इस सहस्रनाम स्तोत्र में भण्डासुरनाशिनी, भण्डासुरहन्त्री आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है।

श्रीविद्यारूपा ललिता जी का तान्त्रिक स्वरूप

तान्त्रिक सम्प्रदाय में श्रीविद्या के तीन भेद हैं - (१) कादि विद्या (२) हादि विद्या (३) कहादि विद्या। कादि श्रीविद्या गायत्री का अतिगुप्त रूप है। यह अतिगुप्त रूप चारों वेदों में वर्णित है। इस अत्यन्त गोपनीय कादि विद्या में तीन कूट हैं। (१) वाग्भवकूट (२) कामराजकूट (३) शक्तिकूट। वाग्भवकूट में वर्णों की संख्या १८ हैं। कामराजकूट में वर्णों की संख्या २२ हैं, तथा शक्तिकूट में वर्णों की संख्या १८ हैं। इनका कुल योग ५८ है। श्री भास्कर राय ने अपनी विस्तृत व्याख्या सौभाग्यभास्कर में इन सबका उल्लेख किया है। श्री भास्कर राय ने मात्रा की संख्या का भी विचार किया है। वाग्भव कूट में सात मात्राएँ, हल्लेखा में चार मात्राएँ हैं। कामराज कूट में साढ़े सात मात्राएँ, हल्लेखा में चार मात्राएँ हैं। शक्तिकूट में साढ़े चार मात्राएँ, और हल्लेखा में चार मात्राएँ हैं।

वाग्भव कूट में वर्णसमूह प्रलयाग्नि के समान है तथा यह मूलाधार से अनाहतचक्र तक व्याप्त है। कामराज कूट में वर्णसमूह कोटि सूर्य के समान अनाहत से आज्ञाचक्र तक व्याप्त है। शक्तिकूट में वर्ण-समूह चन्द्रमा के समान आज्ञाचक्र से ललाट तक व्याप्त है। ये सभी वर्णमाला में गुम्फित मणि की भाँति एक के ऊपर एक के क्रम से विराजमान हैं। सुषुम्णा के मूल में तथा अग्रभाग में दो भिन्न-भिन्न सहस्रदल कमल हैं, जिनमें एक का वर्ण रक्त और मुर्ख ऊर्ध्व है, तथा दूसरे का वर्ण श्वेत और मुख नीचे है। इन सहस्रदल कमलों के बीच में अष्टदल ३० कमल हैं।

बीज :-

व्यष्टि कूट तीन और समष्टिकूट एक हैं, इन दोनों को मिलाने पर चार कूट हैं। इन चारों कूटों में चार बीज हैं। ये चारों बीज सृष्टि स्थिति लय और अनाख्या (औदासीन्य अवस्था) के प्रतिपादक हैं।

उपर्युक्त तथ्यों का प्रतिपादन भास्कर राय के सौभाग्यभास्कर भाष्य पर आधारित है। श्रीभास्कर राय ने ललिता सहस्रनाम की उपर्युक्त व्याख्या में देवी के उन नामों की व्याख्या करते हुए श्रीविद्या की उपासना के अन्य ग्रन्थ वामकेश्वर तन्त्र, ज्ञानार्णव, त्रिपुरारहस्य, आदि २१ ग्रन्थों की भी चर्चा की है तथा उनसे उद्धरण भी दिए हैं।

श्रीविद्या का व्यापक साहित्य अतिप्राचीन है। इसके उपासकों में मनुष्यों के अतिरिक्त ऋषि, इन्द्र आदि देवता भी रहे हैं। इससे स्वतः ही श्रीविद्या प्रतिपादक-ग्रन्थ ललितासहस्रनाम का महत्व प्रस्फुटित होता है। यहाँ तक कि श्रीशंकराचार्य तथा उनके गुरु श्रीगौड़पादाचार्य की दिव्यशक्तियों का स्रोत भी श्रीविद्या की उपासना ही रहा है।

ललितासहस्रनाम के भाष्यकार श्री भास्कर राय

श्रीललिता सहस्रनाम के तान्त्रिक स्वरूप को प्रकट करने वाले तथा श्रीविद्या की उपासना में अग्रगण्य भाष्यकार श्रीभास्कर राय शंकर की विभूति माने जाते हैं। इन्होंने अपने जन्म से किस प्रदेश को अलंकृत किया यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता है। किन्तु ये वाराणसी में रहते थे तथा नारायण भट्ट के समकालीन थे। नारायण भट्ट का काल सत्रहवीं शदी का प्रथम दशक रहा है। वही समय भास्कर राय का भी रहा होगा, अर्थात् १६१० से १६१८ तक।

ये व्याकरण, न्याय, शैवतन्त्र तथा सांख्ययोग के उत्कृष्ट विद्वान् थे। ललितासहस्रनाम ग्रन्थ के स्वरचित सौभाग्य-भास्कर नामक भाष्य में व्याकरण शास्त्रीय सिद्धान्तों का, शंकाओं के समाधान का वारीकी से उल्लेख किया है तथा अपने तन्त्रसम्प्रदाय सिद्ध अर्थों के प्रतिपादन में व्युत्पत्तियों का भी प्रदर्शन किया है। इनके पिता का नाम गम्भीर राय दीक्षित था। श्रीभास्कर राय का दीक्षा नाम भासुरानन्दनाथ था।

बालातप भाष्यकार श्री शम्भुनाथ नागर

"ललितासहस्रनाम" ग्रन्थ का लघुभाष्य "बालातप" की रचना करने वाले श्रीशम्भुनाथ नागर हैं। इनके पिता का नाम शिवनाथ नागर था तथा

इनके गुरु का नाम श्रीगुरुनाथ था। इन्होंने बालातप भाष्य के पूर्व मङ्गलाचरण में अपने गुरु व पिता को नमस्कार करते हुए लिखा है कि -

नागरवंशाब्धिमणिश्रीशिवनाथात्मजेन तेन मया।
शम्भुनाथाख्येन श्रीदेवीचरणकमलदासेन॥
श्रीमाधवपदपङ्कजमधुमधुपायितनिजान्तरङ्गनाम्।
अमृताख्यानां श्रीगुरुनाथानामाज्ञया कृपाकृतया॥
आरचितः श्रीललिताचरणद्वन्द्वे समर्पितः सोऽयम्।
तेन श्रीगुरुरूपा प्रीणातु श्रीपराम्बिका सततम्॥

भास्कर द्वारा निर्मित समस्त विद्यासिद्धान्तों के सारस्वरूप सौभाग्य-भास्कर नामक भाष्य में बालकों तथा मन्द बुद्धियों का प्रवेश निश्चय ही दुर्लभ है, यह मानकर मैं उनके भाष्य का सार-अर्थ प्रकाशित करने की इच्छा से "बालातप" नामक भाष्य लिख रहा हूँ। यह भाष्य देवी श्रीललिता जी के साधकों को सुख देगा। भाष्य की समाप्ति पर ११ श्लोकों में ललिता-सहस्रनाम का महत्त्व, भास्कर राय का शास्त्रज्ञान तथा अपने वंश का परिचय दिया है। इसमें इन्होंने अपने पिता शिवनाथ को नागरवंश-समुद्र का मणि कहा है तथा स्वयं को देवी के चरण-कमल का दास बताया है। श्री शम्भुनाथ नागर ने मन्द बुद्धियों को भी सहजता से ललिता जी के नाम के अर्थों का परिज्ञान हो जाये ऐसा प्रयास किया है। इन्होंने सौभाग्य भास्कर के अनेकों अर्थों में से नवनीत तुल्य सहजग्राह्य व सुगम अर्थों का संकलन कर उसे अपने भाष्य में रखा है। यह भी कठिन कार्य ही था कि अनेकों अर्थों में उस सार अर्थ को चुनें जो सिद्धान्त अर्थ भी बन सके। इस कार्य में नागर जी अत्यन्त सफल हुए हैं।

इन का काल १९१८ संवत् रहा है। इन्होंने जयपुर नरेश की प्रीति के लिए भाष्य लिखा जिससे सिद्ध है कि जयपुर में स्थित विद्वन्मण्डली के एक रत्न तथा जयपुर नरेश के प्रियपात्र थे श्रीशम्भुनाथ नागर।

प्रस्तूयमान ग्रन्थ

ललिता-सहस्रनाम के इस ग्रन्थभाग में आज से पूर्व अप्रकाशित बालातप नाम का भाष्य दिया गया है। सरल संस्कृत में व्युत्पत्तिप्रदर्शन पूर्वक प्रत्येक नाम का अर्थ प्रस्तुत किया गया है। बालातप भाष्य की पाण्डुलिपि के संग्राहक श्रीरामकृपालु शर्मा जी स्वयं अद्भुत प्रतिभा के धनी हैं। १८ वर्ष के किशोरवय में ही कामायनी की टक्कर का 'प्राञ्जलि' नामक काव्य रचकर श्रीरामकृपालु जी शर्मा, रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख', हनुमत् प्रसाद शास्त्री,

स्वनामधन्य सुमित्रानन्दन पन्त, राम कुमार वर्मा आदि विख्यात विद्वानों, कवियों के प्रीतिपात्र बन गये। पन्त जी ने इनके गीतों को रहस्यवादी दृष्टिकोण से ओतप्रोत बताते हुए यह भी कहा कि इस प्राञ्जलि काव्य से हिन्दी कविता की सौन्दर्य-वृद्धि हुई है। ऐसे प्रतिभावान् मनस्वी श्रीशर्मा जी सरस्वती के पुत्र होते हुए भी अदृष्टवश लक्ष्मी के सेवक बने। परन्तु सरस्वती की सेवा में लक्ष्मी को भी इन्होने संलग्न कर दिया। फलतः आज इनके संग्रहालय में लगभग १००००० पाण्डुलिपियों का संग्रह है जिनको प्राप्त करने में श्रमसाधना के साथ प्रचुर अर्थ का भी उपयोग करना पड़ा है। बालातप भाष्य के साथ ललितासहस्रनाम का सम्पादन-कार्य इन्होंने जोधपुर निवासी पण्डित श्रीलक्ष्मीनारायण जी गोस्वामी को सौंपा। पण्डित जी ने इस टीका का निर्दुष्ट सम्पादन कर अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया है। अस्वास्थ्यवश वे इसकी भूमिका नहीं लिख सके। मुझे भूमिका लेखन के साथ ही ललितासहस्रनाम के हिन्दी-अनुवाद का कार्य सौंपा गया। हिन्दी में अनुवाद करते समय भास्कर राय की सौभाग्य भास्कर का पर्याप्त सहारा लिया है। एक ही शब्द के अनेकों अर्थों में जितने भी अर्थ प्रसंगवश मेरी बुद्धि से अन्वित हो सके उन्हें मैंने अपने हिन्दीकरण में रखा है तथा विमर्श के रूप में उन उन पदों की व्युत्पत्ति को प्रदर्शित करते हुए कहीं कहीं उन अर्थों की पुष्टि में तन्त्र एवं पुराण-वचनों को भी उद्धृत किया है। सौभाग्यभास्कर-रूप सागर से मुक्ता चुनने का श्रम यदि सुधीजनों को भाया तो मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा। अन्त में मैं श्रीसंजय शर्मा संग्रहालय एवं शोध संस्थान के संयुक्त मन्त्री एवं ट्रस्टी श्रीतिलक शर्मा का भी आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने इस कार्य हेतु मुझे प्रेरित किया। श्रीलक्ष्मीनारायण गोस्वामी के सुन्दर स्वास्थ्य और दीर्घायुष्य-कामना के साथ पुनः उनकी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। विद्वज्जन त्रुटियों को हमारी अज्ञानता समझते हुए उस ओर यदि मेरा ध्यान आकृष्ट कर सकें तो मेरा बड़ा सौभाग्य होगा।

विनीत

(डॉ. अर्कनाथ चौधरी)
वरिष्ठ प्राध्यापक
केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जयपुर।

१ ॥श्रीगणेशायनमः॥ नमःश्रीगुरुनाथस्यचरणांबुजभास्वते महामोहनिशोद्भूतदुःखभूतौघशत्रवे १ सौभाग्यभास्कराख्यातेभाष्येभास्करनिर्मिते समस्तविद्यासिद्धांतसाररत्नमहोदधौ २ बालानांमंदबुद्धीनामवगाहःसुदुर्लभः इतिमत्वा..ऽऽभाष्यसारंनामार्थैकप्रकाशकं ३ बालातपाख्यंश्रीदेव्याःसाधकानांसुखावहम् करोमिदेवताप्रीत्यैसाधकेंद्रैर्नियोजितः ४ श्रीरिति भारतीगौर्य्योरुःजलक्षणं तथाच

॥श्रीगणेशायनमः ॐ श्रीमाता १ श्रीमहाराज्ञी २ श्रीमत्सिंहासनेश्वरी ३ ॥

श्रीभारतीगौरीणांमाता तेन त्रिमूर्त्तिशक्तीनांकारणभूतत्वादियंपरब्रह्मणः शक्तिरित्युक्तंभवति श्रीमात्रे इतिचतुर्थ्यंतं १ अतएवेयं श्रीमहाराज्ञी भारत्याद्याःकेवलंराज्ञ्यः इयंतु श्रीयुतामहती राज्ञी महाराज्ञ्यै इतिच· २ नृपाधिष्ठितमासनं सिंहवच्छ्रेष्ठत्वात्सिंहासनमित्युच्यते अखिलप्रपंच· साम्राज्यश्रीमुकुटालंकृता ८ तस्येश्वरी इत्यर्थः इतिच·३

२

चिद्रूपोयोग्निस्तत्कुंडात्प्रादुर्भूता भूतायै इतिच·४ देवानांकार्यं भंडासुरवधादि तदर्थमुद्यता आविर्भूता उद्यतायै इतिच· ५ १ उद्यतांभानूनां रक्तसूर्याणां यत्सहस्रं तदिव आभायस्याः आभायै इति च·६ चतुर्भिर्बाहुभिः सम्यक् अतिसुंदरतया अन्विता युता अन्वितायै इतिच·७ रागः इच्छा सः ६

चिदग्निकुंडसंभूता ४ देवकार्यसमुद्यता ५ ॥ १ उद्यद्भानुसहस्राभा ६ चतुर्बाहुसमन्विता ७
रागस्वरूपपाशाढ्या ८ क्रोधाकारांकुशोज्वला ९ ॥ २ मनोरूपेक्षुकोदंडा १० पंचतन्मात्रसायका १
स्वरूपंयस्यपाशस्य तेन आढ्या आढ्यायै। इतिच· ८ क्रोधोद्वेषः सः आकारोयस्य अंकुशस्यतेन उज्वला शोभमाना उज्वलायै इतिच· ९ । २ मनएवरूपंयस्य ईदृशइक्षुमयःकोदंडोधनुर्यस्यास्सा कोदंडायै इतिच· १० पंचसंख्यतन्मात्राणि शब्दादिविषयास्तान्येवसायकाःशरायस्याःसासायका

३ निजःस्वकीयः यः अरुणप्रभायाः लोहितकांतेः पूरःप्रवाहः तस्मिन्मज्जंति निमग्नानि ब्रह्मांडानांमंडलानि यस्याःसा मंडलायै इतिच· २। ३ चंपकादिपदैर्निरूढलक्षणया तत्पुष्पाणिगृह्यंते तैर्लसंतः शोभमानाः कचाः शिरोरुहायस्याः कचायै इतिच· ३ कुरुविंदाः पद्मरागाख्याःरक्तमणयः तेषांश्रे

निजारुणप्रभापूरमज्जद्ब्रह्मांडमंडला २ चंपकाशोकपुंनागसौगंधिकलसत्कचा ३
कुरुविंदमणिश्रेणीकनत्कोटीरमंडिता ४ अष्टमीचंद्रविभ्राजदलिकस्थलशोभिता ५

ण्यापंक्त्याकन ः तादीप्यमानेन कोटीरेणमुकुटेन मंडिता भूषिता भूषितायै इतिच· ४ अष्टमीसंबंधी यः चंद्रः अर्द्धवृत्तरूपः तद्वद्विभ्राजताविराजमानेनालिकस्थलेनललाटप्रदेशेनशोभिता शोभितायै इतिच· ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ॥ ३

४ मुखरूपस्य चंद्रस्यकलंकसदृशोमृगनाभेः कस्तूर्याः विशेषः तिलकोयस्याः सा विशेषकायै इति च· ६ वदनमेवस्मरस्य मन्मथस्य मांगल्यगृहं तस्यतोरणे बहिर्द्वारं तदेवचिल्लिकाभ्रूर्यस्याःसा चिल्लिकायै इतिच· ७ वक्त्रस्यमुखस्ययालक्ष्मीः कांतिः तस्याःपरीवाहेपूरे चलद्भ्यां चंचलाभ्यां का

मुखचंद्रकलंकाभमृगनाभिविशेषका ६ वदनस्मरमांगल्यगृहतोरणचिल्लिका ७
वक्त्रलक्ष्मीपरीवाहचलन्मीनाभलोचना ८ नवचंपकपुष्पाभनासादंडविराजिता ९

मीनाभ्यां तुल्येलोचने यस्याः सालोचनायै इतिच ८ नवंनूतनंयच्चंपकपुष्पं ईषद्विकसितंतेनतुल्येननासादंडेन नासिकावंशेन विराजिता विराजितायै इतिचतुर्थ्यंतम् ९ ९ ९ ॥

५६ अघंपापं तन्नास्तियस्यांसा अनघायै॰ इतिच॰ ७ अद्भुतानिचारित्राणियस्याःसा चारित्रायै इतिच॰ ८ भक्तेभ्यःवां
छितानर्थान्प्रददातीतिसा प्रदायिन्यै इतिच॰ ९ अभ्यासःस्वरूपानुसंधानं तस्यातिशयः स्थिरीभावः तेनज्ञाता

अनघा ७ अद्भुतचारित्रा ८ वांछितार्थप्रदायिनी ९ अभ्यासातिशयज्ञाता ९९०
षडध्वातीतरूपिणी १ अव्याजकरुणामूर्ति २ रज्ञानध्वान्तदीपिका ३

ज्ञातायै इतिच॰ ९९० वर्णपदमंत्रकलातत्वभुवनाख्याःषडध्वानः तेभ्यः अतिक्रांतं रूपमस्याःरूपिण्यैइति॰ १ अव्या
जकरुणानैसर्गिकीदयासैवमूर्त्तिर्यस्याःसामूर्त्यैइति॰ २ अज्ञानांधकारस्यदीपिकेवनाशिकादीपिकायै इतिच॰ ३

५७ बालगोपपर्यंतैः सर्वैर्ज्ञाताविदितायै इतिच॰ ४ सर्वैर्ब्रह्मादिभिरप्युल्लंघ्यंशासनंआज्ञायस्याःसाशासनायै इ॰ ५
श्रीचक्रराजःनिलयंगृहंयस्याःसानिलयायै॰ इति॰ ६ श्रीमती त्रिपुरेषुजाग्रदादिषुसुंदरीसर्वस्पृहणीयासुदर्यै इ॰ ७

आबालगोपविदिता ४ सर्वानुल्लंघ्यशासना ५ श्रीचक्रराजनिलया ६
श्रीमत्त्रिपुरसुंदरी ७ श्रीशिवा ८ शिवशक्त्यैक्यरूपिणी ९ ललितांबिका १००९

श्रीशिवःपरशिवः तद्रूपाशिवायै इ॰ ८ शिवशक्त्योरैक्यंसामरस्यं तदेववास्तवंरूपं अस्याः रूपिण्यै इति॰ ९ ललते
अविशेषात्सदासर्वत्र शोभतेसौललिता साचासौ अंबिकाचेति ललितांबिकायैनमः इतिचतुर्थ्यंतं १०००

५८ ललितासहस्रनामसुवाग्देवीविरचितेषुनामैकम् व्याख्यातुंकःप्रभवतिललितादेवीकृपाकटाक्षमृते १ संतिहिस
हस्रनामस्तोत्राण्यन्यानितानिविविधानि व्याख्यातानितथान्यैरेतन्नाम्नःकलासमानिकिमु २ बहुजन्मसुकृतसेवनसं
प्राप्तश्रीशिवाकटाक्षकणैः भास्कररायैर्भाषितमेतद्भाष्यंमहार्थसिद्धांतं ३ पदवाक्यमानकापिलपातंजलशैवतंत्र

इतिश्रीवाग्देवीविरचितंश्रीललितायाःसहस्रनामस्तोत्रंसमाप्तम् १

निगमानां सौभाग्यभास्कराख्यंविसिद्धांतानामतिप्रकाशकरम् ४ श्रीसाधकेंद्रसुख्यास्तद्भाष्याब्धिंविमुह्याकुष्या
निर्मथ्यनीतनामार्थामृतततास्वतंत्रविश्रांताः ५ तद्भास्करवाक्यार्थमोदमपूर्वच्छटासुगतिभ्रहीनाः येबालामंदधि
यस्तेषांनामार्थपरिचयायैषः ६ श्रीभाष्यकथितनामार्थानांसंक्षेपसंग्रहोग्रंथः सर्वजनसेवनीयोभास्करबाला। ५८

५९ तपाभिधःसुगमः ७ नागरवंशाब्धिमणिश्रीशिवनाथात्मजेनतेनमया शंभूनाथाख्येनश्रीदेवीचरणकमलदासेन
८ श्रीमाधवपदपंकजमधुमधुपायितनितांतरंगानाम् अमृताख्यानांश्रीगुरुनाथानामाज्ञयाकृपाकृतया ९
आरचितःश्रीललिताचरणद्वंद्वेसमर्पितःसोयम् तेनश्रीगुरुरूपाप्रीणातुश्रीपराम्बिकासततम् १० ममबुद्धेर
तिमांद्यान्नामार्थस्याप्यतीवगांभीर्यात् स्यादत्रवचनदोषःक्षंतव्योमयिकृपापरैर्विबुधैः ११ इतिश्री
सौभाग्यभास्करभाष्यसारोद्धारे नागरवंश्यश्रीशिवनाथजशंभूनाथविरचितेश्रीबालातपाख्यंभाष्यंसंपूर्णम् ॥

धृत्यतिधृतिमितवर्षे १९१८ शुचिमासेशुचिदलेशुचितिथौच
भौमेकृष्णोव्यलिखद् भाष्यंबालातपाख्यमिदम् १ ॥

गजग्लौनंदेंदुप्रमितशरदिश्राद्धविरतौ शुभेमास्याषाढधवलदलजायांप्रतिपदि तिथौभौमेकृष्णोऽलि
खदमलबालातपमिदं सुभाष्यंश्रीश्रीमज्जयपुरपतेःप्रीतिजनकम् १ ॐनमश्श्रीमत्त्रिपुरसुंदर्यै ५९

श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रम्

।। श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः ।।

अगस्त्य उवाच—

अश्वानन महाबुद्धे सर्वशास्त्रविशारद ।
कथितं ललितादेव्याश्चरितं परमाद्भुतम् ।।१।।
पूर्वम्प्रादुर्भवो मातुस्ततः पट्टाभिषेचनम् ।
भण्डासुरवधश्चैव विस्तरेण त्वयोदितः ।।२।।
वर्णितं श्रीपुरञ्चाऽपि महाविभवविस्तरम् ।
श्रीमत्पञ्चदशाक्षर्या महिमा वर्णितस्तथा ।।३।।
षोढान्यासादयो न्यासा न्यासखण्डे समीरिताः ।
अन्तर्यागक्रमश्चैव बहिर्यागक्रमस्तथा ।।४।।
महायागक्रमश्चैव पूजाखण्डे प्रकीर्त्तितः ।
पुरश्चरणखण्डे तु जपलक्षमीरितम् ।।५।।
होमखण्डे त्वया प्रोक्तो होमद्रव्यविधिक्रमः ।
चक्रराजस्य विद्यायाः श्रीदेव्या देशिकात्मनोः ।।६।।
रहस्यखण्डे तादात्म्यं परस्परमुदीरितम् ।
स्तोत्रखण्डे बहुविधाः स्तुतयः परिकीर्त्तिताः ।।७।।
मन्त्रिणीदण्डिनीदेव्योः प्रोक्ते नामसहस्रके ।
न तु श्रीललितादेव्याः प्रोक्तन्नामसहस्रकम् ।।८।।
तत्र मे संशयो जातो हयग्रीव दयानिधे ।
किं वा त्वया विस्मृतन्तज्ज्ञात्वा वा समुपेक्षितम् ।।९।।
मम वा योग्यता नाऽस्ति श्रोतुन्नामसहस्रकम् ।
किमर्थम्भवता नोक्तन्तत्र मे कारणं वद ।।१०।।

सूत उवाच—

इति पृष्टो हयग्रीवो मुनिना कुम्भजन्मना ।
प्रहृष्टो वचनम्प्राह तापसं कुम्भसम्भवम् ।।११।।

श्रीहयग्रीव उवाच—

लोपामुद्रापतेऽगस्त्य सावधानमनाः शृणु ।
नाम्नां सहस्रं यन्नोक्तं कारणन्तद्वदामि ते ।।१२।।

रहस्यमिति मत्वाऽहन्नोक्तवांस्ते न चाऽन्यथा ।
पुनश्च पृच्छसे भक्त्या तस्मात्तत्ते वदाम्यहम् ।।१३।।
ब्रूयाच्छिष्याय भक्ताय रहस्यमपि देशिकः ।
भवता न प्रदेयं स्यादभक्ताय कदाचन ।।१४।।
न शठाय न दुष्टाय नाविश्वासाय कर्हिचित् ।
श्रीमातृभक्तियुक्ताय श्रीविद्याराजवेदिने ।।१५।।
उपासकाय शुद्धाय देयन्नामसहस्रकम् ।
यानि नामसहस्राणि सद्यः सिद्धिप्रदानि वै ।।१६।।
तन्त्रेषु श्रीललितादेव्यास्तेषु मुख्यमिदम्मुने ।
श्रीविद्यैव तु मन्त्राणान्तत्र कादिर्यथा परा ।।१७।।
पुराणां श्रीपुरमिव शक्तीनां ललिता यथा ।
श्रीविद्योपासकानाञ्च यथा देवो वरः शिवः ।।१८।।
तथा नामसहस्रेषु वरमेतत्प्रकीर्त्तितम् ।
यथाऽस्य पठनाद्देवी प्रीयते ललिताम्बिका ।।१९।।
अन्यनामसहस्रस्य पाठान्न प्रीयते तथा ।
श्रीमातुः प्रीतये तस्मादनिशं कीर्त्तयेदिदम् ।।२०।।
विल्वपत्रैश्चक्रराजे योऽर्चयेल्ललिताम्बिकाम् ।
पद्मैर्वा तुलसीपत्रैरेभिर्नामसहस्रकैः ।।२१।।
सद्यः प्रसादङ्कुरुते तत्र सिंहासनेश्वरी ।
चक्राधिराजमभ्यर्च्य जप्त्वा पञ्चदशाक्षरीम् ।।२२।।
जपान्ते कीर्त्तयेन्नित्यमिदन्नामसहस्रकम् ।
जपपूजाद्यशक्तोऽपि पठेन्नामसहस्रकम् ।।२३।।
साङ्गार्चने साङ्गजपे यत्फलन्तदवाप्नुयात् ।
उपासने स्तुतीरन्याः पठेदभ्युदयो हि सः ।।२४।।
इदन्नामसहस्रन्तु कीर्त्तयेन्नित्यकर्मवत् ।
चक्रराजार्चनन्देव्या जपो नाम्नाञ्च कीर्त्तनम् ।।२५।।
भक्तस्य कृत्यमेतावदन्यदभ्युदयं विदुः ।
भक्तस्याऽवश्यकमिदन्नामसाहस्रकीर्त्तनम् ।।२६।।

तत्र हेतुम्प्रवक्ष्यामि शृणु त्वं कुम्भसम्भव ।
पुरा श्रीललितादेवी भक्तानां हितकाम्यया ॥२७॥

वाग्देवीर्वशिनीमुख्याः समाहूयेदमब्रवीत् ।
वाग्देवता वशिन्याद्याः शृणुध्वं वचनम्मम ॥२८॥

भवत्यो मत्प्रसादेन प्रोल्लसद्वाग्विभूतयः ।
मद्भक्तानां वाग्विभूतिप्रदाने विनियोजिताः ॥३०॥

मच्चक्रस्य रहस्यज्ञा मम नामपरायणाः ।
मम स्तोत्रविधानाय तस्मादाज्ञापयामि वः ॥३०॥

कुरुध्वमङ्कितं स्तोत्रम्मम नामसहस्रकैः ।
येन भक्तैः स्तुताया मे सद्यः प्रीतिः परा भवेत् ॥३१॥

हयग्रीव उवाच—

इत्याज्ञप्ता वचोदेव्यो देव्या श्रीललिताम्बया ।
रहस्यैर्नामभिर्दिव्यैश्चक्रुः स्तोत्रमनुत्तमम् ॥३२॥

रहस्यनामसाहस्रमिति तद्विश्रुतम्परम् ।
ततः कदाचित्सदसि स्थित्वा सिंहासनेऽम्बिका ॥३३॥

स्वसेवावसरम्प्रादात्सर्वेषां कुम्भसम्भवः ।
सेवार्थमागतास्तत्र ब्रह्माणीब्रह्मकोटयः ॥३४॥

लक्ष्मीनारायणानां च कोटयः समुपागताः ।
गौरीकोटिसमेतानां रुद्राणामपि कोटयः ॥३५॥

मन्त्रिणीदण्डिनीमुख्याः सेवार्थं याः समागताः ।
शक्तयो विविधाकारास्तासां संख्या न विद्यते ॥३६॥

दिव्यौघा मानवौघाश्च सिद्धौघाश्च समागताः ।
तत्र श्रीललितादेवी सर्वेषां दर्शनन्ददौ ॥३७॥

तेषु दृष्ट्वोपविष्टेषु स्वे स्वे स्थाने यथाक्रमम् ।
तत्र श्रीललितादेवीकटाक्षाक्षेपनोदिताः ॥३८॥

उत्थाय वशिनीमुख्या बद्धाञ्जलिपुटास्तदा ।
अस्तुवन्नामसाहस्रैः स्वकृतैर्ललिताम्बिकाम् ॥३९॥

श्रुत्वा स्तवम्प्रसन्नाऽभूल्ललितापरमेश्वरी ।
सर्वे ते विस्मयं जग्मुर्ये तत्र सदसि स्थिताः ॥४०॥
ततः प्रोवाच ललिता सदस्यान् देवतागणान् ।
ममाज्ञयैव वाग्देव्यश्चक्रुः स्तोत्रमनुत्तमम् ॥४१॥

अङ्कितं नामभिर्दिव्यैर्मम प्रीतिविधायकैः ।
तत्पठध्वं सदा यूयं स्तोत्रं मत्प्रीतिवृद्धये ।।४२।।

प्रवर्तयध्वम्भक्तेषु मम नामसहस्रकम् ।
इदन्नामसहस्रम्मे यो भक्तः पठते सकृत् ।।४३।।

स मे प्रियतमो ज्ञेयस्तस्मै कामान्ददाम्यहम् ।
श्रीचक्रे मां समभ्यर्च्य जप्त्वा पञ्चदशाक्षरीम् ।।४४।।

पश्चान्नामसहस्रम्मे कीर्तयेन्मम तुष्टये ।
मामर्चयतु वा मा वा विद्यां जपतु वा न वा ।।४५।।

कीर्तयेन्नामसाहस्रमिदम्मत्प्रीतये सदा ।
मत्प्रीत्या सकलान्कामाँल्लभते नाऽत्र संशयः ।।४६।।

तस्मान्नामसाहस्रम्मे कीर्तयध्वं सदाऽऽदरात् ।

हयग्रीव उवाच—

इति श्रीललितेशानो शास्ति देवान्सहानुगान् ।।४७।।

तदाज्ञया तदारभ्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
शक्तयो मन्त्रिणीमुख्या इदन्नामसहस्रकम् ।।४८।।

पठन्ति भक्त्या सततं ललितापरितुष्टये ।
तस्मादवश्यम्भक्तेन कीर्तनीयमिदम्मुने ।।४९।।

आवश्यकत्वे हेतुस्ते मया प्रोक्तो मुनीश्वर ।
इदानीन्नामसाहस्रं वक्ष्यामि श्रद्धया शृणु ।।५०।।

———————

।। न्यासः ।।

अस्य श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रमालामन्त्रस्य वशिन्यादिवाग्देवता ऋषयः अनुष्टुप् छन्दः श्रीललितापरमेश्वरी देवता, प्रथमकूटं बीजम्, तृतीयकूटं शक्तिः, द्वितीयकूटं कीलकम्, श्रीललितापराम्बादेवताप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

(मूलमन्त्रेण करषडङ्गन्यासान् कृत्वा)

ध्यानम्—

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनाम्माणिक्यमौलिस्फुर-
त्तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम् ।
पाणिभ्यामलिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीं,
सौम्यां रत्नघटस्थरक्तचरणान्ध्यायेत्परामम्बिकाम् ।।५१।।

———————

श्रीमद्भास्कररायोन्नीत-सौभाग्यभास्कराभिधभाष्यसाररूपेण
श्रीशिवनाथात्मजश्रीशम्भुनाथनागरविरचितेन

बालातपाभिधभाष्येण
सँव्वलितं

श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रम्

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

(१)

ॐश्रीमाता[1] श्रीमहाराज्ञी[2] श्रीमत्सिंहासनेश्वरी[3] ।
चिदग्निकुण्डसम्भूता[4] देवकार्यसमुद्यता[5] ।।१।।

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

भाष्यम्—

नमः श्रीगुरुनाथस्य चरणाम्बुजभास्वते ।
महामोहनिशोद्भूतदुःखभूतौघशत्रवे ।।१।।

सौभाग्यभास्कराख्याते भाष्ये भास्करनिर्मिते ।
समस्तविद्यासिद्धान्तसाररत्नमहोदधौ ।।२।।

बालानाम्मन्दबुद्धीनामवगाहः सुदुर्ल्लभः ।
इति मत्वा भाष्यसारन्नामार्थैकप्रकाशकम् ।।३।।

बालातपाख्यं श्रीदेव्याः साधकानां सुखावहम् ।
करोमि देवताप्रीत्यै साधकेन्द्रैर्नियोजितः ।।४।।

श्रीरिति भारतीगौर्योरुपलक्षणम् । तथा च —श्रीभारतीगौरीणां माता, तेन त्रिमूर्ति-शक्तीनां कारणभूतत्वादियम्परब्रह्मणः शक्तिरित्युक्तम्भवति । श्रीमात्रे इति चतुर्थ्यन्तम् १।।

अत एवेयं श्रीमहाराज्ञी । भारत्याद्याः केवलं राज्यः, इयन्तु श्रीयुता महती राज्ञी । महाराज्ञ्यै इति च० २।।

नृपाधिष्ठितमासनं सिंहवच्छ्रेष्ठत्वात्सिंहासनमित्युच्यते । अखिलप्रपञ्चसाम्राज्यशोभा-युतत्वाच्छ्रीमत्, तस्येशित्री । ईश्वर्य्यै इति च० ३।।

चिद्रूपो योऽग्निस्तत्कुण्डात्प्रादुर्भूता । भूतायै इति च० ४।।

देवानाङ्कार्यम्भण्डासुरवधादि, तदर्थमुद्यता आविर्भूता । उद्यतायै च० ५।।

(२)

उद्यद्भानुसहस्राभा[6] चतुर्बाहुसमन्विता[7] ।
रागस्वरूपपाशाढ्या[8] क्रोधाकाराङ्कुशोज्ज्वला[9] ॥२॥

उद्यताम्भानूनां रक्तसूर्य्याणां यत्सहस्रं, तदिव आभा यस्याः । आभायै च० ६॥
चतुर्भिर्व्बाहुभिः सम्यक् अतिसुन्दरतया अन्विता युता । अन्वितायै इति च० ७॥
रागः इच्छा, सः स्वं रूपं यस्य पाशस्य, तेन आढ्या । आढ्यायै इति च० ८॥

क्रोधो द्वेष, स. आकारो यस्य अङ्कुशस्य, तेन उज्ज्वला शोभमाना । उज्ज्वलायै इति च०९ ॥२॥

(३)

मनोरूपेक्षुकोदण्डा[10] पञ्चतन्मात्रसायका[11] ।
निजारुणप्रभापूरमज्जद्ब्रह्माण्डमण्डला[12] ॥३॥

मन एव रूपं यस्य, ईदृश इक्षुमयः कोदण्डो धनुर्यस्याः सा । कोदण्डायै इति च० १० ।

पञ्चसंख्यतन्मात्राणि शब्दादिविषयाः, तान्येव सायकाः शराः यस्याः सा । सायकायै इति च० ११॥

निजः स्वकीयः यः अरुणप्रभायाः लोहितकान्तेः पूरः प्रवाहः, तस्मिन्मज्जन्ति निमग्नानि ब्रह्माण्डानां मण्डलानि यस्याः सा । मण्डलायै इति च०१२ ॥३॥

(४)

चम्पकाशोकपुन्नागसौगन्धिकलसत्कचा[13] ।
कुरुविन्दमणिश्रेणीकनत्कोटीरमण्डिता[14] ॥४॥

चम्पकादिपदैर्निरूढलक्षणया तत्पुष्पाणि गृह्यन्ते, तैर्लसन्तः शोभमानाः कचाः शिरोरुहा यस्याः । कचायै इति च० १३॥

कुरुविन्दाः पद्मरागाख्याः रक्तमणयः, तेषां श्रेण्या पङ्क्त्या कनता दीप्यमानेन कोटीरेण मुकुटेन मण्डिता भूषिता । भूषितायै इति च०१४ ।४॥

(५)

अष्टमीचन्द्रविभ्राजदलिकस्थलशोभिता[15] ।
मुखचन्द्रकलङ्काभमृगनाभिविशेषका[16] ॥५॥

अष्टमीसम्बन्धी यः चन्द्रः अर्द्धवृत्तरूपः, तद्वद्विभ्राजता विराजमानेनाऽलिकस्थलेन ललाटप्रदेशेन शोभिता । शोभितायै इति च० १५।।

मुखरूपस्य चन्द्रस्य कलङ्कसदृशो मृगनाभेः कस्तूर्य्याः विशेषः[1] तिलको यस्याः सा । विशेषकायै इति च०१६ ।।५।।

(६)

वदनस्मरमाङ्गल्यगृहतोरणचिल्लिका[17] ।
वक्त्रलक्ष्मीपरीवाहचलन्मीनाभलोचना[18] ।।६।।

वदनमेव स्मरस्य मन्मथस्य माङ्गल्यगृहं, तस्य तोरणो वहिर्द्वारं, तदेव चिल्लिका भ्रूर्यस्याः सा । चिल्लिकायै इति च० १७।।

वक्त्रस्य मुखस्य या लक्ष्मीः कान्तिः, तस्याः परीवाहे पूरे चलद्भ्यां चञ्चलाभ्यां मीनाभ्यां तुल्ये लोचने यस्याः सा । लोचनायै इति च०१८ ।।६।।

(७)

नवचम्पकपुष्पाभनासादण्डविराजिता[19] ।
ताराकान्तितिरस्कारिनासाभरणभासुरा[20] । ७।।

नव नूतनं यच्चम्पकपुष्पं ईषद्विकसितं, तेन तुल्येन नासादण्डेन नासिकावंशेन विराजिता । विराजितायै इति चतुर्थ्यन्तम् १९।।

तारायाः नक्षत्रस्य या कान्तिः, तां स्वकान्त्या तिरस्करोति यत्तादृशेन नासाभरणेन भासुरा शोभमाना । भासुरायै इति च०२० ।।७।

(८)

कदम्बमञ्जरीक्लृप्तकर्णपूरमनोहरा[21] ।
ताटङ्कयुगलीभूततपनोडुपमण्डला[22] ।।८।।

कदम्बस्य मञ्जर्य्या पुष्पेण क्लृप्तः कल्पितः कर्णपूरः कर्णोर्द्ध्वे स्थापितः शेखरः, तेन मनोहरा रमणीया । मनोहरायै इति च० २१।।

ताटङ्कयुगलं कर्णाभरणद्वयं, तथाभूते तपनोडुपयोः सूर्य्यचन्द्रयोः मण्डले यस्याः सा । मण्डलायै इति च०२२ ।।८।।

---

१. विशेषकः ।

(९)

पद्मरागशिलादर्शपरिभाविकपोलभूः[२३] ।
नवविद्रुमबिम्बश्रीन्यक्कारिदशनच्छदा[२४] ॥९॥

पद्मरागशिलात्मको यः आदर्शः, तं परिभावयति अवजानाति, ईदृशी कपोलभूर्गण्ड-प्रदेशो यस्याः सा । भुवे इति चतुर्थ्यन्तम् २३॥

नवयोः नूतनयोः विद्रुमबिम्बयोः पक्वप्रवालतुण्डीफलयोः श्रियं कान्ति न्यक्कुरुतः अधः कुरुतः, तादृशौ दशनच्छदौ ओष्ठौ यस्याः सा । छदायै इति च० २४ ॥९॥

(१०)

शुद्धविद्याङ्कुराकारद्विजपङ्क्तिद्वयोज्ज्वला[२५] ।
कर्पूरवीटिकामोदसमाकर्षदिगन्तरा[१] [२६] ॥१०॥

शुद्धाः दोषरहिताः याः विद्याः मोक्षसाधनीभूतवेदादयो मन्त्राद्याश्च, तासामङ्कुराः, यथा हि विस्तृतस्य वृक्षस्य संक्षिप्तं रूपमङ्कुर, एवं विद्याङ्कुराकाराः ये द्विजाः दन्ताः, तेषां यत्पङ्क्तिद्वयं, तेनोज्ज्वला शोभमाना । अखिलाः विद्याः अङ्कुराकारेण संक्षेपरूपेण देवतायाः मुखे दन्तात्मकतया स्थिता इति भावः । उज्ज्वलायै इति च० २५॥

एलालवङ्गकर्पूरकस्तूरीकेशरादिभिः ।
जातीफलैर्दलैः[२] पूगैर्लाङ्गल्यूषणनागरैः ॥
चूर्णैः खदिरसारैश्च युक्ता कर्पूरवीटिका ।

इति प्रसिद्धकर्पूरवीटिकायास्तःमूत्रस्य मोदं[३] स्वाभिमुखेन[४] सम्यगाकर्षन्ति इत्याकर्षाः,[५] ईदृशा दिगन्तरस्थदेवता यस्या सा । दिगन्तरस्थदेवताः परिमललुब्धाः स्वस्वाभिमुख्येन परिमलमाकर्षन्तीत्यर्थः । अन्तरायै इति च०२६ ॥१०॥

(११)

निजसँल्लापमाधुर्य्यविनिर्भर्त्सितकच्छपी[२७] ।
मन्दस्मितप्रभापूरमज्जत्कामेशमानसा[२८] ॥११॥

निजस्य स्वस्य य संल्लापः वर्णमयशब्दोच्चारः तस्य माधुर्य्येण विनिर्भर्त्सिता विशेषेण तिरस्कृता कच्छपी वीणा यया सा । कच्छप्यै इति च० २७॥

---

१. समाकर्षदिगन्तरा इति साधुः पाठः । २. जातीफलदलैः । ३. आमोदं ।
४. स्वस्वाभिमुख्येन । ५. इत्याकर्षिण्यः ।

मन्दस्मितमीषद्धासः, तस्य प्रभापूरे लावण्यप्रवाहे मज्जत्कामेशमानसं यस्याः सा । मानसायै इति च० २८ ॥११॥

(१२)

अनाकलितसादृश्यचिबुकश्रीविराजिता[२९] ।
कामेशबद्धमाङ्गल्यसूत्रशोभितकन्धरा[३०] ॥१२॥

अनाकलितं अलब्धं सादृश्यं यस्याश्चिबुकश्रियः, तया विराजिता शोभमाना । विराजितायै इति च० २९॥

कामेशेन बद्धं यन्माङ्गल्यसूत्रं सौभाग्याभरणं, तेन शोभिता कन्धरा ग्रीवा यस्याः सा । कन्धरायै इति च० ३०॥१२॥

(१३)

कनकाङ्गदकेयूरकमनीयभुजान्विता[३१] ।
रत्नग्रैवेयचिन्ताकलोलमुक्ताफलान्विता[३२] ॥१३॥

कनकमयैरङ्गदैः केयूरैः बाहुभूषणैः कमनीयाः सुन्दराः ये भुजाः चतुःसंख्याः, तैरन्विता युता । अन्वितायै इति च० ३१॥

रत्नमयेन ग्रैवेयेण ग्रीवाभरणेन चिन्ताकेन च लोलैर्मुक्ताफलैर्हारभावमापन्नैरन्विता । अन्वितायै इति च० ३२॥१३॥

(१४)

कामेश्वरप्रेमरत्नमणिप्रतिपणस्तनी[३३] ।
नाभ्यालबालरोमालिलताफलकुचद्वयी[३४] ॥१४॥

कामेश्वरस्य प्रेमैव रत्नमणिः, तत्पणने प्रतिपणभूतौ स्तनौ यस्याः सा । स्तन्यै इति च० ३३॥

नाभिरेव आलबालो लतावापगर्त्तः यस्याः, ईदृशी या रोमालिरूपा लता, तस्याः फलभूतं कुचद्वयं यस्याः कुचद्वय्यै इति च० ३४॥१४॥

(१५)

लक्ष्यलोमलताधारतासमुन्नेयमध्यमा[३५] ।
स्तनभारदलन्मध्यपट्टबन्धवलित्रया[३६] ॥१५॥

लक्षयितुं योग्या लक्ष्या ज्ञायमाना, ईदृशी या लोमलता, तस्या या आधारता, तया समुन्नेयं अनुमितिविषयीभूतं मध्यमं मध्यभागो यस्याः सा। मध्यमायै इति च० ३५॥

स्तनयोर्भारेण गुरुत्वेन दलदिव त्रुटद्यदिव स्थितं यन्मध्यं तद्दाढर्यार्थं कृतः पट्टबन्धः कनकपट्टिकाभिः बन्ध इव वलित्रयं यस्याः सा। त्र्यायै इति च० ३६॥१५॥

(१६)

अरुणारुणकौसुम्भवस्त्रभास्वत्कटीतटी[३७]।
रत्नकिङ्किणिकारम्यरशनादामभूषिता[३८] ॥१६॥

अरुण इव अनूरुरिव अरुणं यत्कौसुम्भं कुसुम्भेन रक्तं [यद्वस्त्रं] ईदृशेन वस्त्रेण भास्वती शोभमाना कट्यास्तटीप्रदेशो यस्याः सा। तटयै इति च० ३७॥

रत्नमयीभिः किङ्किणिकाभिः क्षुद्रघण्टिकाभिः रम्येण रशनात्मकदाम्ना मेखलासूत्रेण भूषिता। भूषितायै इति च० ३८॥१६॥

(१७)

कामेशज्ञातसौभाग्यमार्द्दवोरुद्वयान्विता[३९] ॥
माणिक्यमुकुटाकारजानुद्वयविराजिता[४०] ॥१७॥

कामेशेनैव ज्ञाते सौभाग्यमार्द्दवे सौन्दर्य्यमृदुत्वे ययोस्तादृशोरुद्वयेनान्विता। अन्वितायै इति च० ३९ ॥

माणिक्येन निर्मितं यन्मुकुटं टोपिकानामकं न्युब्जं शिरःप्रावरणं, तस्येवाकारो ययोर्जानोस्तयोर्द्वयेन विराजिता। विराजितायै इति च० ४०॥१७॥

(१८)

इन्द्रगोपपरिक्षिप्तस्मरतूणीरजङ्घिका[१] [४१]।
गूढगुल्फा[४२] कूर्मपृष्ठजयिष्णुप्रपदान्विता[४३] ॥१८॥

इन्द्रगोपाः वर्षाकालोद्भवाः रक्तकृमिविशेषाः, तैः परितः क्षिप्तौ व्याप्तौ यौ स्मरस्य मदनस्य तूणीरौ[२] शरधी, तयोरिवाऽऽभा ययोस्ते जङ्घिके जङ्घे यस्याः सा। जङ्घिकायै इति च० ४१॥

१. ०स्मरतूणाभ०। २. तूणौ।

गूढौ मांसलौ गुल्फौ पादमणिबन्धौ यस्याः सा । गुल्फायै इति च० ४२।।

कूर्मपृष्ठे जयत इति कूर्मपृष्ठजयिष्णू, ईदृशे प्रपदे पादाग्रे ताभ्यामन्विता । अन्विताये इति च० ४३।।१८।।

(१९)

नखदीधितिसञ्छन्ननमज्जनतमोगुणा[४४] ।
पदद्वयप्रभाजालपराकृतसरोरुहा[४५] ।।१९।।

नखानां पादनखानां दीधितिभिः ज्योत्स्नासदृशैः किरणैः सम्यक् छन्नो लोपितो नमतां भक्तजनानां तमोगुणः अज्ञानं यस्याः सा । गुणायै इति ४४।।

पदद्वयस्य यः प्रभाजालः कान्तिसमूहः, तेन पराकृतानि सरोरुहाणि यस्याः सा । सरोरुहायै इति च० ४५ ।।१९।।

(२०)

सिञ्जानमणिमञ्जीरमण्डितश्रीपदाम्बुजा[४६] ।
मरालीमन्दगमना[४७] महालावण्यशेवधिः[४८] ।।२०।।

सिञ्जाने शब्दं कुर्वाणे मणिमये मञ्जीरे पादकटके, ताभ्यां मण्डिता भूषिता श्रीः शोभा ययोरीदृशे पदाम्बुजे यस्याः सा । अम्बुजायै इति च० ४६।।

मरालीव हंसीव मन्दं गमनं यस्याः सा । गमनायै इति च० ४७।।

महदत्युत्कृष्टं यल्लावण्यं सौन्दर्यं, तस्य शेवधिः निधिः । शेवधये इति च० ४८।।२०।।

(२१)

सर्व्वारुणा[४९] ऽनवद्याङ्गी[५०] सर्व्वाभरणभूषिता[५१] ।
शिवकामेश्वराङ्कस्था[५२] शिवा[५३] स्वाधीनवल्लभा[५४] ।।२१।।

सर्व्वं वसनाभरणादिकं अरुणं यस्याः सा । अरुणायै इति च० ४९।।

अनवद्यान्यङ्गानि यस्याः सा । अङ्ग्यै इति च० ५०।।

सर्वैराभरणैर्भूषिता । भूषितायै इति च० ५१।।

शिवात्मको यः कामेश्वरः मन्मथरुद्रादिभिन्नः परमशिवात्मकः, तस्य अङ्के वामोत्सङ्गे तिष्ठतीति सा । अङ्कस्थायै च० ५२।।

शिवाभिन्नत्वाच्छिवा । शिवायै इति च० ५३।।

स्वाधीनो वल्लभो यस्याः सा । वल्लभायै इति च० ५४।।२१।।

(२२)

सुमेरुमध्यशृङ्गस्था[५५] श्रीमन्नगरनायिका[५६] ।
चिन्तामणिगृहान्तःस्था[५७] पञ्चब्रह्मासनस्थिता[५८] ।।२२।।

सुमेरोर्हिमाद्रेर्यन्मध्यशृङ्गं, तस्मिन् तिष्ठतीति सा । शृङ्गस्थायै इति च० ५५।।

श्रीमल्लक्ष्मीवद्यन्नगरं श्रीविद्यानगरं, तस्य नायिका राज्ञी । नायिकायै इति च० ५६।।

चिन्तामणिरभीष्टप्रदो मणिस्तैर्निर्मितं यद्गृहं, तस्यान्तस्तिष्ठतीति सा । अन्तःस्थायै इति च०।।५७।।

पञ्चब्रह्ममयं यदासनं ब्रह्मविष्ण्वादिपादयुतं, तस्मिन् स्थितायै इति च० ५८।।२२।।

(२३)

महापद्माटवीसंस्था[५९] कदम्बवनवासिनी[६०] ।
सुधासागरमध्यस्था[६१] कामाक्षी[६२] कामदायिनी[६३] ।।२३।।

महान्ति पद्मानि यस्यां, ईदृशी या अटवी वनं, तस्यां सम्यक् तिष्ठतीति सा संस्थायै इति च० ५९।।

कदम्बानां वने वसतीति सा । वासिन्यै इति च० ६०।।

सुधामयः अमृतमयः सागरः समुद्रः, तन्मध्ये तिष्ठतीति सा । मध्यस्थायै इति च० ६१।।

कामानि कमनीयानि अक्षीणि यस्याः सा । कामाक्ष्यै इति च० ६२।।

कामानभीष्टान् ददाति सा । दायिन्यै इति च० ६३।।२३।।

(२४)

देवर्षिगणसङ्घातस्तूयमानात्मवैभवा[६४] ।
भण्डासुरवधोद्युक्तशक्तिसेनासमन्विता[६५] ।।२४।।

देवानां ऋषीणां गणानां गणदेवतानां आदित्यविश्ववस्वादीनां च यः सङ्घातः समुदायस्तेन स्तूयमानमात्मनो वैभवं यस्याः । वैभवायै इति च० ६४॥

भण्डनामको योऽसुरः, तस्य वधे हनने उद्युक्ताः याः शक्तयः, तासां सेनाभिः सम्यगन्विता युक्ता । समन्वितायै इति चतुर्थ्यन्तम् ६५॥२४॥

(२५)

सम्पत्करीसमारूढसिन्धुरव्रजसेविता[६६] ।
अश्वारूढाधिष्ठिताश्वकोटिकोटिभिरावृता[६७] ॥२५॥

सम्पत्कर्याख्या या मूलदेव्यङ्कुशात्प्रादुर्भूता देवता तया च शक्तिसेनया सहितया सम्यक् गजशास्त्रोक्तरीत्या आरूढो यः सिन्धुराणां गजानां व्रजः समुदायः, तेन सेविता । सेवितायै इति च ६६॥

अश्वारूढाख्या श्रीदेवी पाशादाविर्भूता देवता, तया अधिष्ठितानां स्वायत्तीकृतानां अश्वानां या कोटिगुणिता कोटिः अनेकैः कोटिभिरावृता परितः संवृता । आवृतायै इति च० ६७॥२५॥

(२६)

चक्रराजरथारूढसर्वायुधपरिष्कृता[६८] ।
गेयचक्ररथारूढमन्त्रिणीपरिसेविता[६९] ॥२६॥

चक्रराजाख्यो यः श्रीदेव्या रथः, तं आरूढानि यानि सर्वाण्यायुधानि देवतारूपाणि, तैः परिष्कृता अलङ्कृता । परिष्कृतायै इति च ॥६८॥

गेयचक्राख्यं रथं आरूढा या मन्त्रिणी राजश्यामला, तया परितः समन्तात् सेविता । सेवितायै इति चतुर्थ्यन्तम् ६९॥२६॥

(२७)

किरिचक्ररथारूढदण्डनाथापुरस्कृता[७०] ।
ज्वालामालिनिकाक्षिप्तवह्निप्राकारमध्यगा[७१] ॥२७॥

किरिचक्रनामकं रथमारूढा या दण्डनाथा वाराही, तया पुरस्कृता सेविता । पुरस्कृतायै इति च० ७०॥

ज्वालामालिनीति चतुर्दशी नित्या, तया आसमन्तात् परितः क्षिप्तस्य निर्म्मितस्य वह्निमयप्राकारस्य मध्यभागे गच्छति इति सा । मध्यगायै इति च० ७१॥२७॥

(२८)

भण्डसैन्यवधोद्युक्तशक्तिविक्रमहर्षिता७२ ।
नित्यापराक्रमाटोपनिरीक्षणसमुत्सुका७३ ॥२८॥

भण्डस्य भण्डासुरस्य यत्सैन्यं सेना, तस्य वधे उद्युक्तानां सन्नद्धानां शक्तीनां विक्रमेण पराक्रमेण हर्षिता सञ्जातहर्षा । हर्षितायै इति चतुर्थ्यन्तम् ७२॥

नित्यानां कामेश्वर्य्यादिचित्रान्तानां यः पराक्रमस्याटोपः विस्तारः, तन्निरीक्षणे सम्यक् अतिशयेन उत्सुका । उत्सुकायै इति चतुर्थ्यन्तम् ७३॥२८॥

(२९)

भण्डपुत्रवधोद्युक्तबालाविक्रमनन्दिता७४ ।
मन्त्रिण्यम्बाविरचितविशुक्रवधतोषिता७५ ॥२९॥

भण्डस्य भण्डासुरस्य ये पुत्राः, तेषा वधे संहारे उद्युक्तायाः बालायाः स्वकुमार्य्याः विक्रमेण नन्दिता हृष्टा । नन्दितायै इति च० ७४॥

मन्त्रिण्यम्बया राजश्यामलया विरचितो यो विशेषेण कृतो विशुक्रस्य भण्डासुरभ्रातुर्वधः, तेन तोषिता तुष्टा । तोषितायै इति च० ७५॥२९॥

(३०)

विषाङ्गप्राणहरणवाराहीवीर्यनन्दिता७६ ।
कामेश्वरमुखालोककल्पितश्रीगणेश्वरा७७ ॥३०॥

विषाङ्गाख्यस्य अपरभ्रातुः प्राणानां हरणे वाराह्या दण्डनाथाया यद्वीर्य्यं शौर्य्यं, तेन नन्दिता । नन्दितायै इति च० ७६॥

कामेश्वरस्य मुखालोकमात्रेण कल्पितः उद्भावितः श्रीगणेश्वरो महागणपतिर्यया । गणेश्वरायै इति च० ७७॥३०॥

(३१)

महागणेशनिर्भिन्नविघ्नयन्त्रप्रहर्षिता७८ ।
भण्डासुरेन्द्रनिर्मुक्तशस्त्रप्रत्यस्त्रवर्षिणी ७९ ॥३१॥

महागणेशेन निर्भिन्नं निश्शेषनाशितं यद्विघ्नयन्त्रं—गव्यूतिमात्रविस्तृतायां शिलायां यल्लिखित्वा शक्तिसैन्ये आलस्यादिकमुद्भाव्य विघ्नकरणाय शक्तिसैन्ये विशुक्रेण निक्षिप्तमिति प्रसिद्धं, तेन प्रकर्षेण हर्षिता । हर्षितायै इति चतुर्थ्यन्तम् ७८॥

भण्डनामकेनाऽसुरेन्द्रेण निर्मुक्तानां प्रयुक्तानां शस्त्राणां प्रतिकूलानि नाशकानि अस्त्राणि वर्षतीति सा । वर्षिण्यै इति चतुर्थ्यन्तम् ७९॥३१॥

(३२)

कराङ्गुलिनखोत्पन्ननारायणदशाकृतिः[८०] ।
महापाशुपतास्त्राग्निनिर्दग्धासुरसैनिका[८१] ॥३२॥

करयोरङ्गुलयः दश, तासां नखेभ्यः उत्पन्ना नारायणस्य विष्णोराकृतयः अवताराः यस्याः सा । आकृतये इति चतुर्थ्यन्तम् ८०॥

महत्पशुपतिसम्बन्ध्यस्त्रं, तस्याग्निना निश्शेषेण दग्धा भण्डनामकाऽसुरस्य सैनिकाः सेनानां नायकाः यस्याः सा । सैनिकायै इति च० ८१ ।३२॥

(३३)

कामेश्वराग्निनिर्दग्धसभण्डासुरसैनिका[८२] ।
ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्रादिदेवसंस्तुतवैभवा[८३] ॥३३॥

कामेश्वरस्येदं कामेश्वरं महापाशुपतास्त्रादप्यधिकमस्त्रं, तस्याग्निना निर्दग्धाः भण्डासुरेण सहिताः सभण्डासुराः सैनिकास्तत्समीपवर्त्तिमुख्यसैनिकाः यया सा । वस्तुतस्तु सैनिकशब्दः शून्यकाख्यतदीयनगरनिवासिजनपरः । तथा च ब्रह्माण्डे—

अथैकशेषन्तन्दुष्टन्निहताशेषबान्धवम् ।
क्रोधेन प्रज्वलन्तन्तञ्जगद्विप्लवकारणम् ॥

महासुरम्महासत्वम्भण्डञ्चण्डपराक्रमम्
महाकामेश्वरास्त्रेण सहस्रादित्यवर्चसा ॥

गतासुमकरोन्माता ललिता परमेश्वरी ।
तदस्त्रप्रहितैर्ज्वालैः शून्यकन्तस्य पत्तनम् ॥

सस्त्रीकञ्च सबालञ्च सगोष्ठधन्यधान्यकम् ।
निर्द्दग्धमासीत्सहसा स्थलमात्रमशिष्यत ॥

शून्यकन्तत्पुरं नाम शून्यमासीद्यथार्थतः ।

इति सभण्डासुरशून्यकेति पाठोऽस्ति चेद्युक्तः । यद्वा आत्माख्यदेवताया जीवदशायाः सायुज्यमुक्तिम्प्राप्तस्य शिवतुल्यस्थितिमिव महता प्रबन्धेन कथयित्वा साम्प्रतम्प्रारब्धवशात् स्थितस्य दग्धपटाभासस्य द्वैतभानस्य तत्तुल्येन लिङ्गशरीरादिना सह नाशमात्मज्ञानेन वदन् शिवमात्रावशेषमाह—

कामेश्वराग्निः चिदग्निः, भण्डासुरो द्वैतभानकरो जीवभावः, सैनिकाः लिङ्गशरीरादयः । शून्यकेति पाठे दग्धपटाभासः द्वैतभानमर्थः । शून्यवादिसम्मतं शून्यमेव वा जीवभावसहितस्य शून्यभावस्य चिदग्निनाऽपगमे चिन्मात्रमवशिष्यत इति सिद्ध्यति [सैनिकायै इति च०] ८२॥

एवम्भण्डासुरपीडितैर्देवैः स्तुता सती भण्डहननान्तं देवकार्यं कृत्वा तदन्ते सन्तुष्टैर्देवैः पुनः स्तुतेत्याह—ब्रह्मे ति । ब्रह्मविष्णुशक्राद्यैर्देवैस्सम्यक् स्तुतं वैभवं पराक्रमो यस्याः । भण्डासुरहननोत्तरं ब्रह्मादिभिः प्रार्थितया ललिताम्बया पुनर्मन्मथाज्जीवित इति कथा [या] ब्रह्माण्डपुराणे स्मरणाच्च । पक्षे—ब्रह्माद्यैः संस्तुतं परिचितं विभुत्वमपरिच्छिन्नत्वं सर्वात्मत्वं यस्याः आत्मरूपदेवतायाः सा [वैभवायै इति च०] ८३॥३३॥

(३४)

हरनेत्राग्निसन्दग्धकामसञ्जीवनौषधिः[८४] ।
श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपङ्कजा[८५] ॥३४॥

हरस्य तृतीयनेत्रस्थेन अग्निना सम्यग्दग्धस्य भस्मीकृतस्य कामस्य सञ्जीवनौषधिः जीवातुः । विरक्ततरस्याऽपि कामेश्वरस्य स्वाभिमुखीकरणात् ।

"अस्मिन्नेवावसरे देवा भण्डसंहारतोषिताः ।
सर्वे तां सेवितुम्प्राप्ता ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥"

इत्यादि ब्रह्माण्डपुराणात् । एतेन—

"पित्रा निर्भर्त्सितो बालो मात्रैवाऽऽश्वास्यते किल"

इति न्यायोऽप्यनुगृहीतः । अनेनैवाऽऽशयेनोक्तम्ब्रह्मवैवर्त्ते—

"हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चनेति" ।

न च तत्र हरिपदस्योपास्यदेवतापरत्वेन त्रिपुरसुन्दरीकोपात् त्राणकर्त्तृकत्वम्परमशिवस्यैव गुरुपरम्परावधित्वाद्वक्तव्यन्न पुनर्वैपरीत्यमिति शङ्क्यम्, परमशिवस्याऽपि श्रीविद्योपासकत्वेन उपासना [या]श्च गुरुमन्तरेणाऽयोगात् तदपेक्षायां त्रिपुरसुन्दर्य्या एव तद्गुरुत्वस्वीकारात् । अत एव योगिनीहृदये शिवेनै[व] पार्व्वतीम्प्रत्युक्तम्—

"अन्यायेनैव दातव्यन्नास्तिकानाम्महेश्वरि ।
एवन्त्वयाऽहमाज्ञप्तो मदिच्छारूपया प्रभो ॥"

इति प्रवृत्तिम्प्रति इच्छायाः कारणत्वाच्छिवस्य प्रवर्त्तिका भगवत्येवेति सिद्धन्तस्या एव गुरुत्वम् । अत एव गुरुमूर्त्तिरिति नाम वक्ष्यते—

"शक्त्या विना शिवे सूक्ष्मे नाम धाम न विद्यते"

इति चतुश्शतीशास्त्रादिच्छाशक्तिविशिष्टस्यैव परशिवस्याऽऽदिनाथत्वेन तन्त्रेषु गणनान्न त्रिपुरसुन्दर्य्या गुरुमण्डलान्तरादिनाथात् पूर्वं गणनपूजाद्यापत्तिरिति चेन्नावकाशः । तथा च महास्वच्छन्दतन्त्रे—

"गुरुशिष्यपदे स्थित्वा स्वयमेव सदाशिवः ।
प्रश्नोत्तरपदैर्वाक्यैस्तन्त्रं समवतारयत् ॥"

इति स्वयमेवेत्यनेन प्रकाशविमर्शांशयोर्विभजनेन परस्परं गुरुशिष्यभावः सूचितः । प्रवर्त्तकत्वप्रष्टृत्वे देवनिष्ठयोर्वक्तृत्वप्रवर्त्यत्वे शिवनिष्ठयोर्गुरुत्वशिष्यत्वयोरवच्छेदके इति तद्भेदाददविरोधः । एतदेव द्योतयितुं मदिच्छारूपयेति विशेषणम्प्रभुपदेन सम्बोधनञ्च । वस्तुतस्तु आदिनाथादर्वागादिशक्त्यम्बानाम्ना द्वितीयस्थाने गण्यत एवेति । न ततः पूर्वं गणनापत्तिः । सदाशिवनामकतृतीयगुरुम्प्रत्यादिनाथात्वच्छिन्नायाः आदिशक्तेरेव गुरुत्वाद् द्वितीयस्थाने एव गणनीयतया न तयोः पौर्वापर्य्ये विनिगमनाविरहोऽपीति दिक् ।

यद्वा हरणं हरः आत्मस्वरूपापहारः, हरन्ति इति वा हराः आत्मापहर्त्तारः, तेषां नेता नायकः, स एवाऽऽसमन्ताद्व्याप्तोऽग्निः स्वस्वरूपान्यथाकरणात् मूलज्ञानमिति यावत्, मूलज्ञानाधिकत्वात्, तेन सम्यग्दग्धो यः कामः जीवभावापन्नः कामेश्वरस्वरूप आत्मा, तस्य सम्यगावरणपरावृत्य [भाव] पूर्वकं जीवने स्वस्वरूपावासा(प्ता)वौषधिर्मूलिका । एतदुपासनया विद्यारूपयाऽविद्यानिवृत्त्या स्वस्वरूपावाप्तिलक्षणो मोक्ष इत्यर्थः ।

मन्मथस्य दाहात्पूर्वं सशरीरस्य जीवत एव पश्चादशरीरजीवनाद् दृष्टान्तादात्मनोऽपि पूर्वंब्रह्मण एव सतोऽविद्यावशाप्तशरीरस्येव स्थितस्य तन्निवृत्तावशरीरतापूर्वकब्रह्मैक्यप्राप्तिर्ध्वन्यते । ध्वनितञ्चैवमेव शैवशास्त्रान्तिमाधिकरणे—'भूयः स्यात्प्रोक्तमिलन'[1] मिति । वार्त्तिकेऽपि—

'पुनश्च प्रोक्तचैतन्यस्वरूपमिलनात्मकम् ।
परयोगाधिरूढस्य भवेत्परमयोगिनः ॥

भूयः स्यादिति वाक्यस्य स्फुट एवाऽयमाशयः ।
यच्छिवत्वममुष्योक्तं नाऽपूर्वंन्न तु यशेगिनः ॥

स्वभाव एव तन्मायाशक्तिप्रोत्थापितान्निजात् ।
नानाविकल्पदौरात्म्यात्पराभूतमिव स्वतः ॥

१. पुस्तके भूयस्याप्रोक्तमिलनमिति ।

विशिष्टं[1] गुरुनिर्दिष्टप्रोक्तोपायक्रमेण तत् ।
शिवत्वं व्यक्तमेतीति शिवेनोदीरितं शिवम् ।।इति।

शक्तिशास्त्रान्तिमाधिकरणेऽपि निजसंविद्देवताचक्रेश्वरत्वप्राप्तिरिति सूत्रावयवे निजपदेन तथैव स्फोरितमिति [सञ्जीवनौषधये इति च०] ८४।।

इयता प्रबन्धेन देव्याः परं रूपं सूक्ष्मतरत्वात् सूक्ष्मरूपात् परतो वक्तव्यमपि रहस्योक्तिविषयत्वात् स्थूलकार्यरूपेण भण्डासुरवधेन सह श्लेषलिप्सया पूर्वोक्तक्रमप्राप्त सूक्ष्मरूपं स्थूलरूपाभिन्नत्वेन वर्णयति श्रीमद्वाग्भवेत्यादिना—

श्रीमज्ज्ञानप्रदायकमाहात्म्यादिशीला(लं) वाग्भवत्यस्मादिति व्युत्पत्त्या वाग्भवनामकं कूटं पञ्चाक्षराणां समुदाय एवैकं मुख्यं स्वं निजं रूपं यस्य तादृशं मुखपङ्कजं यस्याः । तदुक्तम् 'नेत्रोष्ठापरगलवर्णशालि वाचां सम्भूतिर्मुखमिति वाग्भवाख्यकूट' मिति [पङ्कजायै इति च०] ८५।।३४।।

(३५)

कण्ठाधःकटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिणी[८६] ।
शक्तिकूटैकतापन्नकट्यधोभागधारिणी[८७] ।।३५।।

कण्ठस्याधः कटिपर्यन्तो यस्य सः मध्यभागः, स एव मध्यस्थकामराजाख्यस्य [कूटस्य] षडक्षरसमूहस्य स्वं निजं रूपमस्याः, पटुज्योतिष्मती लोचने इतिवत्कर्मधारयादपि मत्वर्थीयः [स्वरूपिण्यै इति च०] ८६।।

सर्ज्जनशक्तिमत्त्वाच्छक्तिनामकेन कूटेन चतुरक्षरसमूहेनैकतामापन्नं कटेरधोभागं धारयतीति तथा । तदुक्तं 'कामस्ते हृदि वसतीति कामराजं स्रष्टृत्वात्[2] तदनु तवाम्ब शक्तिकूट' मिति [धारिण्यै इति च०] ८७।।३५।।

(३६)

मूलमन्त्रात्मिका[८८] मूलकूटत्रयकलेवरा[८९]
कुलामृतैकरसिका[९०] कुलसङ्केतपालिनी[९१] ।।३६।।

चतुर्विधपुरुषार्थमूलकारणत्वान्मूलम्पञ्चदशाक्षरी सैव[3] मननात् त्रायत इति मन्त्र आत्मा स्वरूपं यस्याः । तदुक्तम्—

'पूर्णाहन्तानुसन्ध्यात्मा स्फूर्जन्मननधर्म्मतः ।
संसारक्षयकृत्त्राणधर्म्मतो मन्त्र उच्यते' इति [मूलमन्त्रात्मिकायै इति च०] ८८।।

---

१. मु. पु. विमृष्टम् । २. पुस्तके—कामराजसृष्टत्वात् । ३. पुस्तके—मेव ।

मूलस्य कूटत्रयमेवोक्तरीत्या कलेवरं स्थूलरूपं यस्याः । कूटत्रयमेव सूक्ष्मरूपं यस्याः इति वा [कलेवरायै इति च०] ८६।।

एवम्ब्रह्माण्डान्तर्गतं रूपमुक्त्वा पिण्डान्तर्गतं[1] कुण्डलिन्याख्यं रूपं वक्तुमारभते । सा हि मूलाधाराख्ये चक्रे सार्द्धत्रिवलयाकारेण सुप्ता सती योगिभिरुत्थाप्य षट्चक्राणि ब्रह्मविष्णवादिग्रन्थीश्च भेदयन्ती सती सहस्रारं नीता सती तत्कर्णिकारूपं चन्द्रमण्डलादमृतं स्रावयति । अयोगिभिरपि भावनामात्रेण सर्वाऽप्येषा प्रक्रिया सम्पाद्यते । तत्प्रक्रियापरिणतनामान्याह[2]-कुलामृतेत्यादिना ।

कुलं सजातीयसमूहः, स चैकज्ञानविषयत्वरूपसाजात्यापन्नज्ञातृज्ञेयज्ञानरूपत्रयात्मकः । घटमहं जानामीति ज्ञानभासनाय अनुव्यवसायापेक्षायां दीपभासनाय दीपान्तरापेक्षापत्तेः । उक्तञ्चाचार्यभगवत्पादैः ।

'जानामीति तमेव भान्तमनुभात्येतत्समस्तञ्जग' दिति ।

ततश्च सा त्रिपुटी कुलमित्युच्यते । तदुक्तञ्चिद्गगनचन्द्रिकायाम्—

'मेयमातृमितिलक्षणं कुलं प्रान्ततो व्रजति यत्र विश्रम' मिति ।

ऊर्द्ध्वाधरभावेन विद्यमानेषु स्वच्छन्दसङ्ग्रहादौ प्रपञ्चितेषु द्वात्रिंशत्पद्मेषु सर्वाधस्तनं पद्मं त्रिपुटीसम्बन्धाभावात्[3] कुलमुच्यते । तदुपरिस्थानि कुलसम्बन्धीनि । यद्वा कुः पृथ्वीतत्वं लीयते यत्र तत्कुलमाधारचक्रम्, तत्सम्बन्धाल्लक्षणया सुषुम्णामार्गोऽपि । अतः सहस्रारात् स्रवदमृतं 'शरीरं कुल'मित्युक्तमिति स्वच्छन्दसङ्ग्रहोक्त्या शरीरसम्बन्धित्वाद्वा तत्कुलामृतम् । तत्र मुख्यतया रसिका तद्रसास्वादनतत्परा [रसिकायै इति च०] ९०।।

उपास्योपासकवस्तुजातस्य चित्त्वेन साजात्यात्[4] तत्समुदायप्रतिपादकं शास्त्रमपि कुलम् । तथा च कल्पसूत्रे प्रयोगः 'कुलपुस्तकानि गोपये' दिति ।

'न कुलं कुलमित्याहुराचारः कुलमुच्यते' ।

इति भविष्योत्तरपुराणवचनात् आचारोऽपि कुलम्, तयोः सङ्केतानि[5] परमरहस्यानि पालयन् पशुषु न प्रकाशयति साम्प्रदायिकपरम्परयैव[6] प्रकाशयतन्तुं प्रवर्त्तयति चेति तथा [पालिन्यै इति च०] ९१।।३६।।

---

१. मु. पु. पिण्डाण्डान्तर्गतं । २. मु. पु. तत्प्रक्रियापराणि नामान्याह । ३. पुस्तके—'सन्धाभावात् । ४. पुस्तके—साजात्या । ५. मु. पु. सङ्केताः । ६. मु. पु. परम्परायै ।

(३७)

कुलाङ्गना[९२] कुलान्तस्था[९३] कौलिनी[९४] कुलयोगिनी[९५] ।
अकुला[९६] समयान्तस्था[९७] समयाचारतत्परा[९८] ॥३७॥

कुलस्य परमशिवस्याऽङ्गना शक्तिः । अङ्गनायै इति च० ९२॥

कुलस्य परमशिवस्यान्तःसारतया तिष्ठतीति सा । अन्तस्थायै इति च० ९३॥

कुले भवं कौलं परमशिवोत्पन्नं जगत्, तदस्या अस्तीति कौलिनी । कौलिन्यै इति च० ९४॥

कुलस्य परमशिवस्य योगः नित्यसम्बन्धः, तद्वती । योगिन्यै इति च० ९५॥

कुः पृथ्वी इदञ्च महाभूतोपलक्षणं, तत्र लीयते इति कुलं नश्वरं, तस्मादन्या अकुला । अकुलायै इति च० ९६॥

समयः सच्छास्त्रसङ्केतः, तस्यान्ते तत्सेवनान्ते प्राप्यत्वेन तिष्ठतीति सा । अन्तस्थायै इति च० ९७॥

आचरणमाचारः, समयः पूर्वोक्तः आचारो येषां, तेषु तत्परा आसक्ता । तत्परायै इति चतुर्थ्यन्तम् ९८॥३७॥

(३८)

मूलाधारैकनिलया[९९] ब्रह्मग्रन्थिविभेदिनी[१००] ।
मणिपूरान्तरुदिता[१०१] विष्णुग्रन्थिविभेदिनी[१०२] ॥३८॥

मूलाधारः गुदोर्द्ध्वे लिङ्गाधः विद्यमानं चतुर्दलं कमलं, सुषुम्णाया मूले आधारभूतत्वान्मूलाधार इत्युच्यते । स एकः मुख्यो निलयो यस्याः सा । निलयायै इति च० ९९॥

षट्सु चक्रेषु आद्यन्तयोर्द्वौ ग्रन्थी सुषुम्णामार्गनिरोधकौ, तत्र स्वाऽधिष्ठानमणिपूरानाहतानि त्रीणि चक्राणि ब्रह्मविष्णुरुद्राणां स्थानानि, तत्तत्समीपे विद्यमानो ग्रन्थिरपि ब्रह्मग्रन्थीत्यादि तत्तन्नाम्नोच्यते । मूलाधारे प्रसुप्तसर्पाभा कुण्डलिनी योगिभिरुत्थापिता झटिति ग्रन्थीन्निर्भिद्य, सुषुम्णामार्गेण ब्रह्मरन्ध्रस्थचन्द्रमण्डलं प्रविश्य, तच्चन्द्रमण्डलगलदमृतधाराभिर्देहमाप्लावयतीत्यागमविरुद्धम् । तदेतदाह—ब्रह्मग्रन्थीत्यादिना—ब्रह्मसंज्ञकं ग्रन्थि विशेषेण भिनत्तीति सा । भेदिन्यै इति चतुर्थ्यन्तम् १००॥

नाभौ दशदलकमलमस्ति । अन्तराराधनावसरे साधकैः देव्यङ्गं मणिमयभूषणैरापूर्य्यते तत्रेति तन्मणिपूरं, तदन्तस्तन्मध्ये उदिता आविर्भूता । उदितायै इति च० १०१॥

विष्णुग्रन्थिं विभिनत्तीति सा । विभेदिन्यै इति च० १०२॥३८॥

(३९)

आज्ञाचक्रान्तरालस्था[103] रुद्रग्रन्थिविभेदिनी[104] ।
सहस्राराम्बुजारूढा[105] सुधासाराभिवर्षिणी[106] ॥३९॥

भ्रूमध्यस्थं द्विदलकमलं आज्ञापकस्य[1] गुरोःस्थानत्वादाज्ञाचक्रं, तदन्तराले तिष्ठतीति सा । स्थायै इति च० १०३॥

रुद्रग्रन्थिं विभिनत्तीति सा । भेदिन्यै इति च० १०४।

ब्रह्मरन्ध्रस्थितमधोमुखं श्वेतसहस्रदलं कमलं सहस्रारमुच्यते । सहस्राराख्येऽम्बुजे आरूढा । आरूढायै इति च० १०५।

सुधाया आसारः धारासम्पातः, तं अभितः सर्वतो वर्षतीति सा । वर्षिण्यैइति च० १०६॥३९॥

(४०)

तडिल्लतासमरुचिः[107] षट्चक्रोपरिसंस्थिता[108] ।
महासक्तिः[109] कुण्डलिनी[110] विसतन्तुतनीयसी[111] ॥४०॥

तडिल्लताया विद्युल्लतायाः समा रुचिः कान्तिर्यस्या । रुच्यै इति च० १०७॥

मूलाधाराद्यान्तानां षट्चक्राणामुपरि सहस्रारे सम्यक्स्थिता । स्थितायै इति च० १०८॥

महे उत्सवे आसक्तिः प्रीतिर्यस्याः सा । सक्त्यै इति च० १०९॥

कुण्डलिनी शक्तिरूपा । कुण्डलिन्यै इति च० ११०॥

विसं कमलनालं, तस्य तन्तुरिव तनीयसी सूक्ष्मरूपा । तनीयस्यै इति च० १११॥४०॥

(४१)

भवानी[112] भावनागम्या[113] भवारण्यकुठारिका[114] ।
भद्रप्रिया[115] भद्रमूर्त्ति[116] र्भक्तसौभाग्यदायिनी[117] ॥४१॥

---

१. पुस्तके-आज्ञा तस्य ।

भवत्यस्मात्सर्वमिति भवः परशिवः, तस्य पत्नी भवानी । भवान्यै इति च० ११२॥

भावना सगुणनिर्गुणाद्युपासना, तया गम्या ज्ञेया । गम्यायै इति च० ११३॥

भवः संसारः, स एवारण्यं तत्तुल्यत्वात्, तस्य कुठारिका छेदनकर्त्री । कुठारिकायै इति च० ११४॥

भद्रं मङ्गलं प्रियं यस्याः सा । प्रियायै इति च० ११५॥

भद्रा मङ्गला, मूर्त्तिः स्वरूपं यस्याः सा । मूर्त्यै० इति च० ११६॥

सुष्ठु यद्भाग्यं दैवं यस्य सः सुभाग्यः, तस्य भावः सौभाग्यम् । भक्तेभ्यः सौभाग्यं ददातीति सा । दायिन्यै इति च० ११७॥४१॥

(४२)

भक्तिप्रिया[११८] भक्तिगम्या[११९] भक्तिवश्या[१२०] भयापहा[१२१] ।
शाम्भवी[१२२] शारदाराध्या[१२३] शर्वाणी[१२४] शर्मदायिनी[१२५] ॥४२॥

भक्तिर्मुख्यानुरक्तिः, सा प्रिया यस्याः सा । प्रियायै इति च० ११८॥

भक्त्या निरुपमया गम्या उपलभ्या । गम्यायै इति च० ११९॥

भक्तेरुक्तलक्षणाया वश्या पराधीना । वश्यायै इति च० १२०॥

भयानि जरामरणादिनिमित्तानि अपहन्तीति सा । अपहायै इति च० १२१॥

शम्भोरियं शाम्भवी । शाम्भव्यै इति च० १२२॥

शारदया सरस्वत्या आराध्या पूज्या । आराध्यायै इति च० १२३॥

शर्वस्य परशिवस्य स्त्री शर्वाणी । शर्वाण्यै इति च० १२४॥

शर्म्म सुखं ददातीति सा । दायिन्यै इति च० १२५॥४२॥

(४३)

शाङ्करी[१२६] श्रीकरी[१२७] साध्वी[१२८] शरच्चन्द्रनिभानना[१२९] ।
शातोदरी[१३०] शान्तिमती[१३१] निराधारा[१३२] निरञ्जना[१३३] ॥४३॥

शङ्करः एव शाङ्करः, तस्य स्त्री । शाङ्कर्यै इति च० १२६॥

श्रियं करोतीति सा । श्रीकर्य्यै इति च० १२७॥

साध्वी पतिव्रता । साध्व्यै इति च० १२८॥

शरत्कालचन्द्रेण तुल्यं आननं यस्याः सा । आननायै इति च० १२९॥

शातं कृशं उदरं यस्याः सा । उदर्य्यै इति च० १३०॥

शान्तिरस्ति यस्या इति सा शान्तिमती । मत्यै इति च० १३१॥

निर्गत आधारः अधिष्ठानं यस्याः सा स्वस्या एव सर्वाधारत्वात् । आधारायै इति च० १३२॥

निर्गतमञ्जनं मालिन्यं अविद्यासम्बन्धो यस्याः सा । अञ्जनायै इति च० १३३॥४३॥

(४४)

निर्लेपा[१३४] निर्म्मला[१३५] नित्या[१३६] निराकारा[१३७] निराकुला[१३८] ।
निर्गुणा[१३९] निष्कला[१४०] शान्ता[१४१] निष्कामा[१४२] निरुपप्लवा[१४३] ॥४४॥

लेपः कर्म्मसम्बन्धः, स निर्गतो यस्याः सा । लेपायै इति च० १३४॥

निर्गतः विकाररूपो दोषो यस्याः सा । मलायै इति च० १३५॥

नित्या कालत्रयाबाध्या । नित्यायै इति च० १३६॥

आकारः अवयवः, स निर्गतो यस्याः सा । आकारायै इति च० १३७॥

निर्गता आकुला चिन्ता यस्याः सा । आकुलायै इति चतुर्थ्यन्तम् १३८॥

निर्गता गुणाः सत्त्वादयो यस्याः सा । गुणायै इति च० १३९॥

निर्गताः कलाः अंशा यस्याः सा । कलायै इति च० १४०॥

शान्ता शमवती । शान्तायै इति च० १४१॥

निर्गतः काम इच्छा यस्याः सा । कामायै इति च० १४२॥

निर्गत उपप्लवो नाशो यस्याः सा । उपप्लवायै इति च० १४३॥४४॥

(४५)

नित्यमुक्ता[१४४] निर्विकारा[१४५] निष्प्रपञ्चा[१४६] निराश्रया[१४७] ।
नित्यशुद्धा[१४८] नित्यबुद्धा[१४९] निरवद्या[१५०] निरन्तरा[१५१] ॥४५।

नित्यं मुक्ता भक्ता यस्याः । मुक्तायै इति च० १४४॥

निर्गताः विकाराः परिणामादिभावाः यस्याः सा । विकारायै इति च० १४५॥

निर्गतः प्रपञ्चः क्षित्यादिरूपो यस्याः सा । प्रपञ्चायै इति च० १४६॥

निर्गत आश्रयः शरणं यस्याः सा । आश्रयायै इति च० १४७॥

नित्यं शुद्धाः पापरहिता जनाः यस्याः सा । शुद्धायै इति च० १४८॥

नित्यबुद्धाः बुद्धिमन्तो ज्ञानिनो जना यस्याः सा । बुद्धायै इति च० १४९॥

निर्गतमवद्यं गह्यं यस्याः सा । अवद्यायै इति च० १५०॥

निर्गतमन्तरं भेदो यस्याः सा । अन्तरायै इति च० १५१॥४५॥

(४६)

निष्कारणा[१५२] निष्कलङ्का[१५३] निरुपाधि[१५४] र्निरीश्वरा[१५५] ।
नीरागा[१५६] रागमथिनी[१५७] निर्मदा[१५८] मदनाशिनी[१५९] ॥४६॥

निर्गतं कारणं यस्याः सा । कारणायै इति च० १५२॥

निर्गतः कलङ्कः अपवादो यस्याः सा । कलङ्कायै इति च० १५३॥

निर्गत उपाधिर्गुणाधायको यस्याः । उपाधये इति च० १५४॥

निर्गत ईश्वरो यस्याः सा स्वस्यां सर्वैश्वर्य्यत्वात् । ईश्वरायै इति च० १५५॥

रागः प्रीतिः, स निर्गतो यस्याः सा । रागायै इति च० १५६॥

भक्तानां विषयगतं रागं मथ्नातीति सा । मथिन्यै इति च० १५७ ॥

मदः मोहकारणात्मा स्तब्धतारूपः चित्तवृत्तिविशेषः, स निर्गतो यस्याः सा । मदायै इति च० १५८॥

सेवकानां मदं नाशयतीति सा । नाशिन्यै इति च० १५९॥४६॥

(४७)

निश्चिन्ता[१६०] निरहङ्कारा[१६१] निर्मोहा[१६२] मोहनाशिनी[१६३] ।
निर्ममा[१६४] ममताहन्त्री[१६५] निष्पापा[१६६] पापनाशिनी [१६७] ॥४७॥

चिन्ता दुःखजनकस्मृतिः, सा निर्गता यस्याः सा । चिन्तायै १६०॥

अहङ्कारोऽभिमानः, स निर्गतो यस्याः सा । अहङ्कारायै इति च० १६१॥

मोहः स्मृतिप्रबन्धकः चित्तवृत्तिः, सः निर्गतो यस्याः सा । मोहायै १६२॥

भक्तानां मोहं नाशयतीति सा । नाशिन्यै १६३॥

ममेति ममकारो ममाऽयमित्यभिमानविशेषः, स निर्गतो यस्याः सा । ममायै इति च० १६४॥

स एवाऽभिमानो ममता, तस्या हन्त्री । हन्त्र्यै च० १६५॥

निर्गतं पापं यस्याः सा । पापायै इति च० १६६॥

सेवकानां पापं नाशयतीति सा । नाशिन्यै इति च० १६७॥४७॥

(४८)

निष्क्रोधा[168] क्रोधशमनी[169] निर्लोभा[170] लोभनाशिनी[171] ।
निस्संशया[172] संशयघ्नी[173] निर्भवा[174] भवनाशिनी[175] ॥४८॥

निर्गतः क्रोधो यस्याः सा। क्रोधायै इति च० १६८॥

सेवकानां क्रोधं शमयतीति सा । शमन्यै इति च० १६९॥

निर्गतो लोभो यस्याः सा । लोभायै इति च० १७०॥

सेवकानां लोभं नाशयतीति सा । नाशिन्यै इति च० १७१॥

निर्गतः संशयः सन्देहो यस्याः सा । संशयायै इति च० १७२॥

सेवकानां संशयान् हन्तीति[1] संशयघ्नी । संशयघ्न्यै इति च० १७३॥

भव उत्पत्तिः, स निर्गतो[2] यस्याः सा । भवायै इति च० १७४॥

सेवकानां भवं उत्पत्तिं नाशयतीति सा । नाशिन्यै इति चतुर्थ्यन्तम् १७५॥४८॥

(४९)

निर्विकल्पा[176] निराबाधा[177] निर्भेदा[178] भेदनाशिनी[179] ।
निर्नाशा[180] मृत्युमथिनी[181] निष्क्रिया[182] निष्परिग्रहा[183] ॥४९॥

विकल्पः सविकल्पं ज्ञानं, तन्निष्क्रान्ता निर्विकल्पा । कल्पायै इति च० १७६॥

निर्गत आ समन्ताद्बाधः निषेधो यस्याः । आरोपितस्य हि बाधो नाधिष्ठानस्येति, अस्याः सर्वाधिष्ठानत्वात् । बाधायै इति च० १७७॥

निर्गतः भेदो यस्याः सा सर्वात्मत्वात् । भेदायै इति च० १७८॥

भेदं अद्वैतज्ञानप्रदानेन भक्तानां नाशयतीति सा । नाशिन्यै इति च० १७९॥

निर्गतः नाशो यस्याः सा । नाशायै इति च० १८०॥

भक्तानां मृत्युं मथ्नातीति सा । मथिन्यै इति च० १८१॥

विहितनिषिद्धरूपक्रियाभ्यो[3] निर्गता । क्रियायै इति च० १८२॥

निर्गतः परिग्रहः स्वीकारो यस्याः सा अाप्तकामत्वात् । परिग्रहायै इति च० १८३॥४९॥

---

१. पुस्तके-'घ्नन्तीति' पाठः । २ पु.-गंतो । ३. पु०-० निषिद्धाक्रियाभ्यो ।

(५०)

निस्तुला[१८४] नीलचिकुरा[१८५] निरपाया[१८६] निरत्यया[१८७] ।
दुर्लभा[१८८] दुर्गमा[१८९] दुर्गा[१९०] दुःखहन्त्री[१९१] सुखप्रदा[१९२] ॥५०॥

निर्गता तुला उपमा यस्याः सा । तुलायै इति च० १८४ ॥

नीलाश्चिकुराः कुन्तला यस्याः सा । चिकुरायै इति च० १८५ ।।

निर्गतः अपायः विश्लेषः व्यापकत्वात् यस्याः सा । अपायायै इति च० १८६ ॥

निर्गतः अत्ययः दण्डः सर्वेश्वरत्वात् यस्याः सा । अत्ययायै इति च० १८७ ॥

दुर्ल्लभा बाह्यप्रयत्नैरसाध्यत्वात् । दुर्लभायै इति च० १८८॥

बाह्यज्ञानैरधिगन्तुमशक्यत्वात् दुर्गमा । दुर्गायै इति च० १८९॥

दुर्गाऽसुरविनाशिनी । दुर्गायै इति च० १९० ॥

भक्तानां दुःखहन्त्री । हन्त्र्यै इति च० १९१॥

सुखं भक्तानां प्रकर्षेण ददातीति सा । प्रदायै इति च० १९२॥५०॥

(५१)

दुष्टदूरा[१९३] दुराचारशमनी[१९४] दोषवर्जिता[१९५] ।
सर्वज्ञा[१९६] सान्द्रकरुणा[१९७] समानाधिकवर्जिता[१९८] ५१॥

दुष्टानां दूरा अप्राप्या । दूरायै इति च० १९३॥

सेवकानां दुराचारं शमयतीति सा । शमन्यै इति च० १९४॥

दोषै रागादिभिर्वर्जिता । वर्जितायै इति च० १९५॥

सर्वं जानातीति सा । ज्ञायै इति च० १९६॥

सान्द्रा घना भक्तेषु करुणा यस्याः साः । करुणायै इति च० १९७॥

समानाधिकाभ्यां वर्जिता सर्वोत्तमत्वात् । वर्जितायै इति च० १९८॥५१॥

(५२)

सर्वशक्तिमयी[१९९] सर्वमङ्गला[२००] सद्गतिप्रदा[२०१] ।
सर्वेश्वरी[२०२] सर्वमयी[२०३] सर्वमन्त्रस्वरूपिणी[२०४]॥५२॥

सर्वशक्त्यभिन्ना । मय्यै इति च० १९९॥

सर्वाणि मङ्गलानि भक्तानां यस्याः सा । मङ्गलायै इति च० २००॥

सती उत्तमा या सालोक्यादिगतिः, तास्प्रकर्षेण ददातीति सा । दायै इति च० २०१॥

सर्वेषां पिपीलिकादीनां ब्रह्मान्तानां ईश्वरी स्वामिनी । ईश्वर्य्यै इति च० २०२॥

सर्वं क्षित्यादिशिवान्ततत्त्वं, तन्मयी तदभिन्ना । मय्यै इति च० २०३॥

सर्वेषां मन्त्राणां स्वरूपं यस्याः सा । स्वरूपिण्यै इति च० २०४॥५२॥

(५३)

सर्वयन्त्रात्मिका[२०५] सर्वतन्त्ररूपा[२०६] मनोन्मनी[२०७] ।
माहेश्वरी[२०८] महादेवी[२०९] महालक्ष्मी[२१०]र्मृडप्रिया[२११] ॥५३॥

सर्वेषां पूज्यानां धार्य्याणां च यन्त्राणां आत्मा स्वरूपं इति सा । आत्मिकायै इति च० २०५॥

सर्वाणि तन्त्राणि चतुष्षष्ट्यादिभेदभिन्नानि रूपं यस्याः । रूपायै इति च० २०६॥

योगिनः विषयासक्तिराहित्येन हृदि निरुद्धं मनः मनोन्मनीत्युच्यते तस्य परमपुरुषार्थसाधकत्वेनात्मशक्तिभूतत्वादियमेव तद्रूपा । उन्मन्यै इति च० २०७॥

महेश्वरस्येयं माहेश्वरी । ईश्वर्य्यै इति च० २०८॥

महती प्रमाणैरपरिच्छिन्ना देवी द्योतनशीला । देव्यै इति च० २०९॥

महती चाऽसौ लक्ष्मीः । लक्ष्म्यै इति च० २१०॥

मृडस्य परमशिवस्य प्रिया । प्रियायै इति च० २११॥५३॥

(५४)

महारूपा[२१२] महापूज्या[२१३] महापातकनाशिनी[२१४] ।
महामाया[२१५] महासत्त्वा[२१६] महाशक्ति[२१७] र्महारतिः[२१८] ॥५४॥

महदपरिच्छिन्नं रूपं यस्याः सा । रूपायै इति च० २१२॥

महती चाऽसौ पूज्या च । पूज्यायै इति च० २१३॥

भक्तानां महान्ति ब्रह्महत्यादिपातकानि नाशयतीति सा । नाशिन्यै इति च० २१४॥

महतामपि मोहिनीत्वात् महामाया । मायायै इति च० २१५॥

महत्सत्त्वं वलं यस्याः । सत्त्वायै इति च० २१६॥

महत्यः इच्छादिशक्तयो यस्याः सा । शक्त्यै इति च० २१७॥

महती रतिः प्रीतिः ज्ञानिनां यस्यां सा । रत्यै इति च० २१८॥५४॥

(५५)

महाभोगा[२१९] महैश्वर्य्या[२२०] महावीर्य्या[२२१] महाबला[२२२] ।
महाबुद्धि[२२३] महासिद्धि[२२४] महायोगेश्वरेश्वरी[२२५] ॥५५॥

महानाभोगो विस्तारो यस्याः सा । भोगायै इति च० २१९॥

महदैश्वर्य्यं विभूतिर्यस्याः सा । ऐश्वर्य्यायै इति च० २२०॥

महान्ति वीर्य्याणि प्रभावा यस्याः सा । वीर्य्यायै इति चतुर्थ्यन्तम् २२१॥

महद्बलं सेना यस्याः सा । बलायै इति चतुर्थ्यन्तम् २२२॥

महती उत्कृष्टा बुद्धिर्यस्याः सकाशात् सा । बुद्धयै इति च० २२३॥

महती सिद्धिर्यस्याः सकाशात्सा । सिद्धयै इति च० २२४॥

महतां योगेश्वराणामपीश्वरी । ईश्वर्य्यै इति च० २२५॥५५॥

(५६)

महातन्त्रा[२२६] महामन्त्रा[२२७] महायन्त्रा[२२८] महासना[२२९] ।
महायागक्रमाराध्या*[२३०] महाभैरवपूजिता[२३१] ॥५६॥

महान्ति उत्कृष्टानि तन्त्राणि यस्याः सा । तन्त्रायै इति च० २२६॥

महान्तः तादृशाः मन्त्राः यस्याः सा । मन्त्रायै इति च० २२७॥

महान्ति तादृशानि यन्त्राणि यस्याः सा । यन्त्रायै इति च० २२८॥

महत्सर्वोत्तमं ब्रह्मादिपादयुतमासनं यस्याः सा । आसनायै इति च० २२९॥

महायागः स्वतन्त्रतन्त्रोक्तः चतुर्भिर्द्दिवसैर्निर्वर्त्यः, तस्य क्रमः मातङ्गीवाराहीबाला-पूजानां पूर्वापर्य्यभावः, तेन आराध्या । आराध्यायै इति च० २३०॥

महाभैरवेण परशिवेन पूजिता । पूजितायै इति चतुर्थ्यन्तम् २३१॥५६॥

(५७)

महेश्वरमहाकल्पमहाताण्डवसाक्षिणी[२३२] ।
महाकामेशमहिषी[२३३] महात्रिपुरसुन्दरी[२३४] ॥५७॥

महेश्वरपरशिवस्य महाकल्पे महाप्रलये स्वात्मैकशेषोद्भूतानन्दकृतं यन्महाताण्डवं

* पुस्तके—महायागसमाराध्या ।

नटनं तदा देव्यतिरिक्तस्य कस्याऽप्यभावात्तत्साक्षिणी । साक्षिण्यै इति० च० २३२॥

महाकामेश्वरस्य परशिवस्य महिषी कृताभिषेका पत्नी । महिष्यै इति च० २३३॥

त्रिपुरपदं ऊर्द्ध्वमध्याधोरूपलोकत्रयजनपरं, तेषु महती चाऽसौ सुन्दरी चेति सा । सुन्दर्य्यै इति च० २३४॥५७॥

(५८)

चतुःषष्ट्यु पचाराढ्या[२३५] चतुःषष्टिकलामयी[२३६] ।
महाचतुःषष्टिकोटियोगिनीगणसेविता[२३७] ॥५८॥

[चतुरधिका षष्टिश्चतुष्षष्टिस्तत्संख्या उपचाराः, तैराढ्या] आढ्यायै इति च० २३५॥

चतुःषष्टिकलाः गीतादिविज्ञानान्ताः, तन्मयी तत्प्रचुरा । मय्यै इति च० २३६॥

एकैकनाथस्य चतुःषष्टिकोटियोगिन्यः, एवंविधो नवनाथानां नवगणाः, यासां मन्त्राः षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतकोटिसङ्ख्याकाः तन्त्रराजे उद्धृताः, महद्भिरुत्कृष्टैरखिलपूज्यैश्चतुःषष्टिकोटियोगिनीगणैः सेविता । सेवितायै इति च० २३७॥५८॥

(५९)

मनुविद्या[२३८] चन्द्रविद्या[२३९] चन्द्रमण्डलमध्यगा[२४०]
चारुरूपा[२४१] चारुहासा[२४२] चारुचन्द्रकलाधरा[२४३] ॥५९॥

वाच्यवाचकयोरभेदात् मनूपासितविद्यात्मिका । विद्यायै इति च० २३८॥

चन्द्रोपासितविद्यात्मिका, इदं नामद्वयं द्वादशविद्यानामुपलक्षकं, तेन द्वादशविद्यारूपेत्यर्थः । विद्यायै इति च० २३९॥

चन्द्रमण्डलमध्ये ध्येयत्त्वेन गच्छतीति सा । मध्यगायै इति च० २४०॥

चारु सुन्दरं रूपं यस्याः सा । रूपायै इति च० २४१॥

तथा हासः यस्याः सा । हासायै इति च० २४२॥

चारुरूपा चन्द्रस्य कला, तस्या धरा । धरायै इति च० २४३॥५९॥

(६०)

चराचरजगन्नाथा[२४४] चक्रराजनिकेतना[२४५]
पार्व्वती[२४६] पद्मनयना[२४७] पद्मरागसमप्रभा[२४८] ॥६०॥

चराचरस्य स्थावरजङ्गमात्मकस्य जगतो नाथा । नाथायै इति च० २४४॥

चक्रराजः श्रीचक्रं, तन्निकेतनं स्थानं यस्याः साः । निकेतनायै इति च० २४५॥

पर्व्वतस्य हिमवतोऽपत्यं स्त्री पार्व्वत्यै इति च० २४६॥

पद्मे इव नयने यस्याः सा । नयनायै इति च० २४७॥

पद्मरागाख्येनारक्तरत्नेन समा प्रभा कान्तिर्यस्याः सा । प्रभायै इति च० २४८ ॥६०॥

(६१)

पञ्चप्रेतासनासीना[२४९] पञ्चब्रह्मस्वरूपिणी[२५०]

चिन्मयी[२५१] परमानन्दा[२५२] विज्ञानघनरूपिणी[२५३] ॥६१॥

ब्रह्मविष्णुरुद्रेश्वरसदाशिवाख्याः स्वस्वशक्तिराहित्ये धर्म्यंशेन पञ्चप्रेताः, तैः कल्पिते आसने आसीना । आसीनायै इति च० २४९॥

पञ्चब्रह्मपदेन पूर्वोक्ता ब्रह्मादयः, पञ्चब्रह्मणां स्वरूपं यस्याः । स्वरूपिण्यै इति च० २५०॥

चिन्मयी तदभिन्ना । चिन्मय्यै इति च० २५१॥

परम उत्कृष्ट आनन्दो यस्याः सा । आनन्दायै इति च० २५२॥

विज्ञानं चैतन्यमेव घनं एकरसं रूपमस्याः सा । रूपिण्यै इति च० २५३ ॥६१॥

(६२)

ध्यानध्यातृध्येयरूपा[२५४] धर्माधर्मविवर्जिता[२५५] ।

विश्वरूपा[२५६] जागरिणी[२५७] स्वपन्ती[२५८] तैजसात्मिका[२५९] ॥५२॥

ध्यानं प्रत्ययैकवत्ता, ध्याता तत्कर्त्ता, ध्येयं तद्विषयः, यत्तेषां रूपं यस्याः सा । रूपायै इति च० २५४॥

धर्माधर्माभ्यां पुण्यपापाभ्यां वर्जिता रहिता शास्त्रस्याऽचिद्विषयत्वात् । वर्ज्जितायै इति चतुर्थ्यन्तम् २५५॥

विश्वः व्यष्टिस्थूलोपाध्युपहितं चैतन्यं, तत् रूपं यस्याः सा । रूपायै इति च० २५६॥

जागरः बाह्येन्द्रियविलासः अस्याः अस्तीति सा । जागरिण्यै इति च० २५७॥

स्वपन्ती स्वप्नदशाभिमानिनी । स्वपन्त्यै इति च० २५८॥

तैजसात्मिका जाग्रदवस्थाभिमानिनी[1] आत्मिकायै इति च० २५९॥६२॥

---

१ पु.० स्थाभिनिनी ।

(६३)

सुप्ता[२६०] प्राज्ञात्मिका[२६१] तुर्य्या[२६२] सर्वावस्थाविवर्जिता[२६३] ।
सृष्टिकर्त्री[२६४] ब्रह्मरूपा[२६५] गोप्त्री[२६६] गोविन्दरूपिणी[२६७] ।।६३।।

सुप्ता सुषुप्त्यवस्थाभिमानिनी । सुप्तायै इति च० २६०।।

प्राज्ञः व्यष्टिकारणोपाध्युपहितं चैतन्यं तदात्मा स्वरूपं यस्याः सा । आत्मिकायै इति च० २६१।।

जाग्रदाद्यवस्थात्रयानुस्यूतं चैतन्यं 'तुरीयं त्रिषु सन्ततं' इत्युक्तेः, तद्रूपा । तुर्य्यायै इति च० २६२।।

शुद्धसंविन्मात्ररूपत्वात् सर्वाभिः उक्तावस्थाभिः वर्जिता रहिता । वर्जितायै इति च० २६३।।

सृष्टेर्जगन्निर्म्माणस्य कर्त्री । कर्त्र्यै इति च० २६४।।

अत एव ब्रह्मा विधाता, स रूपं यस्याः सा। रूपायै इति च० २६५।।

गोप्त्री रक्षणकर्त्री । गोप्त्र्यै इति च० २६६।।

अत एव विष्णुः, स रूपं यस्याः सा । रूपिण्यै इति च० २६७।।६३।।

(६४)

संहारिणी[२६८] रुद्ररूपा[२६९] तिरोधानकरी[२७०] ईश्वरी[२७१] ।
सदाशिवा[२७२]ऽनुग्रहदा[२७३] पञ्चकृत्यपरायणा[२७४] ।।६४।।

संहारः जगद्ध्वंसनः त करोतीति सा । संहारिण्यै इति च० २६८।।

रुद्रः पशुपतिः रूपं यस्याः सा । रूपायै इति च० २६९।।

तिरोधानं निश्शेषेण नाशनं, तत्करोतीति सा । कर्य्यै इति च० २७०।।

ईश्वरी तिरोधानकर्तृरूपा । ईश्वर्य्यै इति च० २७१।।

सदाशिवा अनुग्रहकर्तृरूपा । शिवायै इति च० २७२।।

अनुग्रहः तिरोहितस्य जगतः सृष्टेरादौ प्राथमिकव्यापाररूपः, तं ददाति कुरुते इति सा । अनुग्रहदायै इति च० २७४।।

पञ्चसूक्तेषु सृष्टयादिषु कृत्येषु परायणा तत्परा । परायणायै इति च०२७४।।६४।।

(६५)

भानुमण्डलमध्यस्था[२७५] भैरवी[२७६] भगमालिनी[२७७]
पद्मासना[२७८] भगवती[२७९] पद्मनाभसहोदरी[२८०] ।।६५।।

भानोर्यन्मण्डलं, तन्मध्ये तिष्ठतीति सा । मध्यस्थायै इति च० २७५।।

भैरवस्य परशिवस्य स्त्री भैरवी। भैरव्यै इति च० २७६।।

भगं षाण्यं मलति धारयतीति सा । मालिन्यै इति च०२७७।।

पद्मं आसनं यस्याः सा । आसनायै इति च० २७८।।

भग ऐश्वर्य्यं अस्या अस्तीति सा । भगवत्यै इति च० २७९।।

पद्मनाभस्य विष्णोः सहोदरी सहजाता । सहोदर्य्यै इति च० २८०।।६५।।

(६६)

उन्मेषनिमिषोत्पन्नविपन्नभुवनावली[1] २८१ ।
सहस्रशीर्षवदना २८२ सहस्राक्षी २८३ सहस्रपात् २८४ ।।६६।।

उन्मेषनिमिषौ[2] नेत्रोन्मीलननिमीलने क्रमेण ताभ्यां उत्पन्नाः सृष्टाः, विपन्नाः नष्टाः भुवनानां लोकानां आवल्यः पङ्क्तयो यस्याः सा । आवल्यै इति च० २८१।।

सहस्राण्यनन्तानि शीर्षाणि मस्तकानि वदनानि आस्यानि यस्याः । वदनायै इति च० २८२।।

सहस्राण्यक्षीणि नेत्राणि यस्याः सा । अक्ष्यै इति च० २८३।।

सहस्राणि पदानि चरणानि यस्याः सा । पदे इति च० २८४।।६६।।

(६७)

आब्रह्मकीटजननी २८५ वर्णाश्रमविधायिनी २८६ ।
निजाज्ञारूपनिगमा २८७ पुण्यापुण्यफलप्रदा २८८ ।।६७।।

ब्रह्मा स्थूलसमष्टिरूपो हिरण्यगर्भाख्यो जीवः, कीटः स्तम्बाख्योऽतिसूक्ष्मो जीवः, ब्रह्मादिस्तम्बान्तजीवानां जननी । जनन्यै इति च० २८५।।

वर्णाश्रमयोः वर्णाश्रमधर्म्मयोः विधायिनी व्यवस्थापिका । विधायिन्यै इति च०२८६।।

निजा स्वकीया या आज्ञा, तद्रूपा निगमाः वेदादिविद्याः यस्याः सा । निगमायै इति च० २८७।।

पुण्यपापयोः विहितनिषिद्धकर्मजन्ययोरदृष्टयोः फलं सुखदुःखरूपं प्रददातीति सा । प्रदायै इति च० २८८।।

---

१ पु० भुवनावलि । २. पु० निमेषौ ।

(६८)

श्रुतिसीमन्तसिन्दूरीकृतपादाब्जधूलिका[२८९] ।
सकलागमसन्दोहशुक्तिसम्पुटमौक्तिका[२९०]॥६८॥

श्रुतिरूपा याः स्त्रियः, तासां सीमन्ते मूर्द्धभूते उपनिषद्भागे, सिन्दूरद्रवसम्पद्यमाना पादाब्जयोर्धूलिका रजः यस्याः सा । धूलिकायै इति च० २८९॥

सकलानामङ्गोपाङ्गसहितानां आगमानां वेदानां यः सन्दोहः समुदायः, तद्रूपं यत् शुक्तिसम्पुटं मिलितमुक्ताशुक्तिसम्पुटनं, तस्मिन् मौक्तिकमिव स्थिता । मौक्तिकायै इति च० २९०॥६८॥

(६९)

पुरुषार्थप्रदा[२९१] पूर्णा[२९२] भोगिनी[२९३] भुवनेश्वरी[२९४] ।
अम्बिका[२९५]ऽनादिनिधना[२९६] हरिब्रह्मेन्द्रसेविता[२९७]॥७२॥

पुरुषार्थान् प्रददातीति सा । प्रदायै इति च० २९१॥

पूर्णा अपरिच्छिन्ना । पूर्णायै इति च० २९२॥

भोगः सुखादिसाक्षात्कारः अस्या इति । भोगिन्यै इति च० २९३॥

भुवनानां लोकानां ईश्वरी स्वामिनी । ईश्वर्य्यै इति च० २९४॥

अम्बैवाऽम्बिका जगन्माता । अम्बिकायै इति च० २९५॥

आदिनिधने जन्ममृत्यू न विद्येते यस्याः सा । निधनायै इति च० २९६॥

हरिब्रह्मेन्द्रैः सेविता । सेवितायै इति च० २९७॥

(७०)

नारायणी[२९८] नादरूपा[२९९] नामरूपविवर्ज्जिता[३००] ।
ह्रींकारी[३०१] ह्रीमती[३०२] हृद्या[३०३] हेयोपादेयवर्जिता[३०४]॥७३॥

नारायणस्य स्त्री भगिनी वा नारायणी । नारायण्यै इति च० २९८॥

नादः शक्तिः 'बिन्दुनादमणिपीठमण्डल' मित्यत्र तथा व्याख्यानात्, सः रूपं यस्याः सा । रूपायै इति च० २९९॥

नामरूपाभ्यां विशेषेण रहिता । वर्जितायै इति च० ३००॥

ह्रींकारी मायाबीजरूपा ह्रींकार्य्यै इति च० ३०१॥

ह्रीरस्या अस्तीति ह्रीमती । ह्रीमत्यै इति च० ३०२॥

हृद्या रमणीया । हृद्यायै इति च० ३०३॥

हेयोपादेयाभ्यां हीनोपात्तविषयाभ्यां वर्जिता रहिता । [वर्जितायै इति च०] ३०४॥७०॥

(७१)

राजराजार्चिता[305] राज्ञी[306] रम्या[307] राजीवलोचना[308] ।
रञ्जिनी[309] रमणी[310] रस्या[311] रणत्किङ्किणिमेखला[312] ।७१॥

राजराजैरिन्द्रादिभिरर्चिता । अर्चितायै इति च० ३०५॥

राज्ञः कामेश्वरस्य महिषीत्वाद्राज्ञी । राज्ञ्यै इति च० ३०६॥

रम्या सुन्दरी । रम्यायै इति च० ३०७॥

राजीवं कमलं, तत्तुल्ये लोचने यस्याः सा । लोचनायै इति चतुर्थ्यन्तम् ३०८॥

भक्तान् रञ्जयतीति सा । रञ्जिन्यै इति च० ३०९॥

भक्तान् रमयतीति सा । रमण्यै इति च० ३१०॥

योगिभिः रसयितुं आस्वादितुं योग्या । रस्यायै इति च० ३११॥

रणत्किङ्किणीयुक्ता मेखला यस्याः सा । मेखलायै इति च० ३१२॥७१॥

(७२)

रमा[313] राकेन्दुवदना[314] रतिरूपा[315] रतिप्रिया[316] ।
रक्षाकरी[317] राक्षसघ्नी[318] रामा[319] रमणलम्पटा[320] ॥७२॥

श्रीरूपत्वाद् रमा । रमायै इति च० ३१३॥

राकेन्दुः पूर्णचन्द्रः, तत्तुल्यं वदनं यस्याः सा । वदनायै इति च० ३१४॥

रत्याः कामपत्न्याः रूपमिव जगन्मोहनं रूपं यस्याः सा । रूपायै इति च० ३१५॥

रतिः प्रिया यस्याः सा । प्रियायै इति च० ३१६॥

भक्तानां रक्षां करोतीति सा । रक्षाकर्य्यै इति च० ३१७॥

राक्षसान् हन्तीति सा । राक्षसघ्न्यै इति च० ३१८॥

स्त्रीरूपत्वाद् रामा । रामायै इति च० ३१९॥

रमणे पुरुषे कामेश्वरे, लम्पटा सलालसा । लम्पटायै इति चतुर्थ्यन्तम् ३२०॥७२॥

(७३)

काम्या[321] कामकलारूपा[322] कदम्बकुसुमप्रिया[323] ।
कल्याणी[324] जगतीकन्दा[325] करुणारससागरा[326] ।।७३।।

योगिभिः काम्यमानत्वात् काम्या । काम्यायै इति च० ३२१।।

कामस्य मन्मथस्य या जगन्मोहिनी कलाशक्तिः, तद्रूपं यस्याः सा । रूपायै इति च० ३२२।।

कदम्बकुसुमानि प्रियाणि यस्याः सा । प्रियायै इति च० ३२३।।

कल्याणी शुभरूपा । कल्याण्यै इति च० ३२४।।

जगत्याः प्रपञ्चस्य कन्दः[1] मूलं यस्यां सा । कन्दायै इति च० ३२५।।

करुणैव रसो येषु, तादृशाः सागरा यस्यां सा । सागरायै इति च० ३२६।।७३।।

(७४)

कलावती[327] कलालापा[328] कान्ता[329] कादम्बरीप्रिया[330] ।
वरदा[331] वामनयना[332] वारुणीमदविह्वला[333] ।।७४।।

कलाश्चतुःषष्टिसंख्या अस्यां सन्ति इति सा । कलावत्यै इति च० ३२७।।

कलाः मधुराः, आलापाः वचनानि यस्याः सा । आलापायै इति चतुर्थ्यन्तम् ३२८।।

कान्ता कमनीयत्वात् । कान्तायै इति चतुर्थ्यन्तम् ३२९।।

कादम्बरी मदिरा प्रिया यस्याः सा । प्रियायै इति चतुर्थ्यन्तम् ३३०।।

भक्तेभ्यो वरान् ददातीति सा । वरदायै इति च० ३३१।।

वामानि सुन्दराणि, नयनानि यस्याः सा । नयनायै इति च०३३२।।

वारुणी मदिरा, तस्याः पानेन मदः मत्तता, तेन विह्वला वाह्यपदार्थविस्मरणवती सा । विह्वलायै इति च० ३३३।।७४।।

(७५)

विश्वाधिका[334] वेदवेद्या[335] विन्ध्याचलनिवासिनी[336] ।
विधात्री[337] वेदजननी[338] विष्णुमाया[339] विलासिनी[340] ।।७५।।

---

१. पु. कन्दं ।

विश्वस्मादधिका सर्वोत्कृष्टा। अधिकायै इति च० ३३४॥

वेदैश्चतुःसंख्यैर्वेद्या। वेद्यायै इति च० ३३५॥

विन्ध्याख्ये अचले पर्व्वते निवसतीति सा। निवासिन्यै इति च० ३३६॥

जगद् विदधाति धारयतीति सा। विधात्र्यै इति च० ३३७॥

वेदानां जननी। जनन्यै इति च० ३३८॥

विष्णोर्व्यापनशीलस्य भगवतः, माया स्वभावावरणकर्त्री शक्तिः। मायायै इति च० ३३९॥

विलासः क्रीडा अस्या अस्तीति सा। विलासिन्यै इति चतुर्थ्यन्तम् ३४०॥७५॥

(७६)

क्षेत्रस्वरूपा[३४१] क्षेत्रेशी[३४२] क्षेत्रक्षेत्रज्ञपालिनी[३४३]।
क्षयवृद्धिविनिर्म्मुक्ता[३४४] क्षेत्रपालसमर्च्चिता[1] [३४५] ॥७६॥

क्षेत्रं शरीरं स्वरूपं यस्याः सा। स्वरूपायै इति च० ३४१॥

क्षेत्रस्य शरीरस्येशः शिवः, तस्य पत्नी। ईश्यै इति च० ३४२॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञौ शरीरजीवौ पालयतीति सा। पालिन्यै इति च० ३४३॥

क्षयवृद्धिभ्यां भावविकाराभ्यां विनिर्म्मुक्ता। मुक्तायै इति चतुर्थ्यन्तम् ३४४॥

क्षेत्रपालः शिवावतारविशेषः, तेन सम्यगर्च्चिता। अर्च्चितायै इति चतुर्थ्यन्तम् ३४५॥७६॥

(७७)

विजया[३४६] विमला[३४७] वन्द्या[३४८] वन्दारुजनवत्सला[३४९]।
वाग्वादिनी[३५०] वामकेशी[३५१] वह्निमण्डलवासिनी[३५२] ॥७७॥

विशिष्टो जयो यस्याः सा। जयायै इति चतुर्थ्यन्तम् ३४६॥

विगतः मलः आणवादिर्यस्याः सा। विमलायै इति चतुर्थ्यन्तम् ३४७॥

वन्दितुं योग्या वन्द्या। वन्द्यायै इति चतुर्थ्यन्तम् ३४८॥

---

१. पु. क्षेत्रपालसर्ञ्चिता।

वन्दारवः वन्दनकर्त्तारो ये जनाः, तेषु वत्सला अनुग्रहदृष्टियुता। वत्सलायै इति चतुर्थ्यन्तम् ३४९॥

वाचं वदति या सा। वाग्वादिन्यै इति च० ३५०॥

वामाः सुन्दराः केशा यस्याः सा। केश्यै इति च० ३५१॥

वह्नेर्मण्डले प्रातःसन्ध्यायां ध्येयत्वेन वसतीति सा। वासिन्यै इति च० ३५२॥७७॥

(७८)

भक्तिमत्कल्पलतिका[३५३] पशुपाशविमोचिनी[३५४]।
संहृताशेषपाखण्डा[३५५] सदाचारप्रवर्त्तिका[३५६] ॥७८॥

भक्तिमतां कल्पलतिका अभीष्टदानात्। लतिकायै इति च० ३५३॥

आणवादिमलयुताः पशवः, तेषां पाशाः आत्मविद्यामर्माख्या देहतादात्म्यस्वरूपाख्यातिपुण्यपापकर्मरूपाः, तेभ्यः भक्तान्मोचयतीति सा। मोचिन्यै इति च०३५४॥

संहृताः नाशिताः अशेषाः अखिलाः पाखण्डाः वेदार्थदूषकाः यया सा। पाखण्डायै इति च० ३५५॥

सन्तः उत्तमाः ये आचाराः, तेषां प्रवर्त्तिका प्रवर्त्तनकर्त्री। प्रवर्त्तिकायै इति च० ३५६॥७८॥

(७९)

तापत्रयाग्निसन्तप्तसमाह्लादनचन्द्रिका[३५७]।
तरुणी[३५८] तापसाराध्या[३५९] तनुमध्या[३६०] तमोपहा[३६१] ॥७९॥

आध्यात्मिकादि यत् तापानां त्रयं, तत्कर्त्ता योऽग्निः संसाररूपः, तेन सन्तप्तानां[१] समाह्लादने तापनिवारणे आनन्दोत्पादने चन्द्रिकेव स्थिता। चन्द्रिकायै इति च० ३५७॥

तरुणी जरामरणाऽभावेन नित्यतारुण्यात्। तरुण्यै इति च० ३५८॥

तापसैस्तपस्विभिराराध्या। आराध्यायै इति च० ३५९॥

तनुः कृशो मध्यो यस्याःसा। मध्यायै इति च० ३६०॥

भक्तानां तमांसि अविद्यावृत्तीर्हन्तीति सा। अपहायै इति च० ३६१॥७९॥

---

१. पु. सप्तानां।

(८०)

चितिः[३६२] तत्पदलक्ष्यार्थी[३६३] चिदेकरसरूपिणी[३६४] ।
स्वात्मानन्दलवीभूतब्रह्मानन्दसन्ततिः[३६५] ॥८०॥

चितिः ज्ञानरूपा । चित्यै इति च० ३६२॥

तत्त्वमस्यादिवाक्यस्थतत्पदलक्ष्यः अर्थः यस्याः सम्बन्धी सा । अर्थायै इति च० ३६३॥

चिदेकरसः ज्ञानघनः रूपं अस्या अस्तीति सा । रूपिण्यै इति च० ३६४॥

स्वस्य यः आत्मभूतः आनन्दः, तस्य लवीभूता ब्रह्मादीनां आनन्दानां सन्ततयः समूहाः यस्याः सा । सन्तत्यै इति च० ३६५॥८०॥

(८१)

परा[३६६] प्रत्यक्चितीरूपा[३६७] पश्यन्ती[३६८] परदेवता[३६९] ।
मध्यमा[३७०] वैखरीरूपा[३७१] भक्तमानसहंसिका[३७२]॥८१॥

परा मूलाधारोत्थितभावात्मककारणविन्दुः शब्दब्रह्मेति प्रसिद्धा, तद्रूपा । परायै इति च० ३६६॥

प्रति प्रातिलोम्येन स्वाभिमुख्येनाञ्चति गच्छति या चितिः सञ्चितिः, तद्रूपं यस्याः सा । रूपायै इति च० ३६७॥

पूर्वोक्तं शब्दब्रह्म मनोयुक्तं नाभिस्थं पश्यन्तीत्युच्यते, तद्रूपा । पश्यन्त्यै इति च० ३६८॥

परा उत्कृष्टा देवता । देवतायै इति च० ३६९॥

तदेव शब्दब्रह्म हृदि स्थितं बुद्धया युतं मध्यमेत्युच्यते, तद्रूपा । मध्यमायै इति च० ३७०॥

तदेव तत्तत्स्थानाभिघातेनाऽभिव्यक्तं श्रोत्रेन्द्रियग्रहणयोग्यं वर्णात्मकं वैखरीत्युच्यते, तद्रूपं यस्याः सा । रूपायै इति च० ३७१॥

भक्तानां मानसे मनोरूपे सरोवरे हंसीव विराजमाना । हंसिकायै इति च० ३७२॥८१॥

(८२)

कामेश्वरप्राणनाडी[३७३] कृतज्ञा[३७४] कामपूजिता[३७५] ।
शृङ्गाररससम्पूर्णा[३७६] जया[३७७] जालन्धरस्थिता[३७८] ॥८२॥

कामेश्वरस्य परमशिवस्य प्राणनाडी जीवनाडीवत्सत्वानुमायिका। नाड्यै इति च० ३७३॥

भक्तैः कृतं यदुपासनादि, तत्तेषु अनुगुणफलदानाय जानातीति सा। कृतज्ञायै इति चतुर्थ्यन्तम् ३७४॥

कामेन मन्मथेन पूजिता। पूजितायै इति चतुर्थ्यन्तम् ३७५॥

शृङ्गाराख्यो यो रसः, तेन सम्यक्पूर्णा। पूर्णायै इति चतुर्थ्यन्तम् ३७६॥

जयरूपत्वाज्जया। जयायै इति चतुर्थ्यन्तम् ३७७॥

जालन्धराख्ये पीठे स्थिता। स्थितायै इति चतुर्थ्यन्तम् ३७८॥८२॥

(८३)

ओड्याणपीठनिलया[३७९] बिन्दुमण्डलवासिनी[३८०]।
रहोयागक्रमाराध्या[३८१] रहस्तर्प्पणतर्प्पिता[३८२]॥८३॥

ओड्याणाख्यं पीठं निलयो यस्याः सा। निलयायै इति चतुर्थ्यन्तम् ३७९॥

बिन्दुमण्डलं सर्वानन्दमयं बिन्दुचक्रं, तत्र वसतीति सा। वासिन्यै इति च० ३८०॥

रहसि एकान्ते उपासकैराधारादिचक्रेषु क्रियमाणो भावनामयो यागो रहोयागः, तस्य क्रमः परिपाटी, तेन आराध्या। आराध्यायै इति च० ३८१॥

तादृशपूजने नानाविधद्रव्यैर्यत्तर्प्पणं, तेन तर्प्पिता। तर्प्पितायै इति च० ३८२॥८३॥

(८४)

सद्यःप्रसादिनी[३८३] विश्वसाक्षिणी[३८४] साक्षिवर्ज्जिता[३८५]।
षडङ्गदेवतायुक्ता[३८६] षाड्गुण्यपरिपूरिता[३८७]॥८४॥

तादृशोपासकेषु सद्यस्तत्काल एव प्रसादं करोतीति सा। प्रसादिन्यै इति च० ३८३॥

विश्वस्याऽखिलस्य प्रपञ्चस्य साक्षाद् द्रष्ट्री। साक्षिण्यै इति च० ३८४॥

स्वेतरसाक्षिणा वर्ज्जिता रहिता[१]। वर्ज्जितायै इति च० ३८५॥

षट्संख्याकानि हृदयादीन्यङ्गानि, तेषां देवताभिर्युक्ता। युक्तायै इति ३८६॥

षण्णामैश्वर्यादिगुणानां समूहः षाड्गुण्यं तेन परितः पूरिता। पूरितायै इति च० ३८७॥८४॥

---

१. पु. वजिता।

(८५)

नित्यक्लिन्ना[३८८] निरुपमा[३८९] निर्वाणसुखदायिनी[३९०] ।
नित्याषोडशिकारूपा[३९१] श्रीकण्ठार्द्धशरीरिणी[३९२] ।।८५।।

नित्यं क्लिन्ना दयार्द्रा । क्लिन्नायै इति च० ३८८।।

उपमा सादृश्यं, तन्निर्गतं यस्याः सा । उपमायै इति च० ३८९।।

निर्वाणं अपरिच्छिन्नं यत्सुखं, तद्ददातीति सा । दायिन्यै इति च० ३९०।।

नित्याद्याः षोडशिकाः षोडशसंख्याः, तासां रूपं यस्याः सा । रूपायै इति च० ३९१।।

श्रीकण्ठस्य गरलकण्ठस्य अर्द्धं शरीरं अस्या अस्तीति सा । शरीरिण्यै इति च० ३९२।।८५।।

(८६)

प्रभावती[३९३] प्रभारूपा[३९४] प्रसिद्धा[३९५] परमेश्वरी[३९६] ।
मूलप्रकृति[३९७] रव्यक्ता[३९८] व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी[३९९] ।।८६।।

प्रभा कान्तिरस्या अस्तीति सा । प्रभावत्यै इति च० ३९३।।

प्रकृष्टं सूर्याद्यपेक्षया भारूपं प्रकाशरूपं यस्याः सा । रूपायै इति च० ३९४।।

अत एव प्रकाशकान्तरानपेक्षणात् प्रसिद्धा । प्रसिद्धायै इति च० ३९५।।

परमेश्वरस्य स्त्री । ईश्वर्य्यै इति च० ३९६।।

मूलस्य जगत्कारणस्येश्वरस्य प्रकृतिः स्वभावभूता । प्रकृत्यै इति च० ४९७।।

अव्यक्ता मायारूपा । अव्यक्तायै इति च०३९८।।

व्यक्ताव्यक्ते कार्यकारणे, तदुभयं स्वरूपं अस्या अस्तीति सा । स्वरूपिण्यै इति च० ३९९।।८६।।

(८७)

व्यापिनी[४००] विविधाकारा[४०१] विद्याविद्यास्वरूपिणी[४०२] ।
महाकामेशनयनकुमुदाह्लादकौमुदी[४०३] ।।८७।।

व्यापिनी व्यापनशीला जगद्व्यापिकेति । व्यापिन्यै इति च० ४००।।

विविधः विचित्रः कालीतारादिभेदभिन्नः आकारः स्वरूपं यस्याः सा । आकारायै इति च० ४०१।।

विद्या मोचकं ज्ञानं, अविद्या[1] बन्धकं ज्ञानं, तदुभयं स्वरूपमस्याः। स्वरूपिण्यै इति च० ४०२॥

महाकामेश परशिवः, तस्य नयनान्येव कुमुदानि, तेषामाह्लादने कौमुदी ज्योत्स्नेव स्थिता। कौमुद्यै इति च० ४०३॥८७॥

(८८)

भक्तहार्द्दतमोभेदभानुमद्भानुसन्ततिः[४०४]।
शिवदूती[४०५] शिवाराध्या[४०६] शिवमूर्त्तिः[४०७] शिवङ्करी[४०८] ॥८८॥

भक्तानां हृदि चित्ते भवानि यानि तमांसि अज्ञानानि, तेषां भेदने ध्वंसने भानुमतो रवेर्भानूनां किरणानां सन्ततिः समूह इव स्थिता। सन्तत्यै इति च० ४०४॥

शिवः दूतः आज्ञाकारी यस्याः सा। दूत्यै इति च० ४०५॥

शिवेन आराध्या। आराध्यायै इति च० ४०६॥

शिवस्य मूर्त्तिः शरीरम्। मूर्त्यै इति च० ४०७।

भक्तेषु शिवं मङ्गलं करोतीति सा। कर्य्यै इति चतुर्थ्यन्तम् ४०८॥८८॥

(८९)

शिवप्रिया[४०९] शिवपरा[४१०] शिष्टेष्टा[४११] शिष्टपूजिता[४१२]।
अप्रमेया[४१३] स्वप्रकाशा[४१४] मनोवाचामगोचरा[४१५] ॥८९॥

शिवस्य प्रिया कान्ता। प्रियायै इति च० ४०९॥

शिवस्यापि परा उत्कृष्टा जीवभूता। परायै इति च० ४१०॥

शिष्टाः इष्टाः यस्याः। इष्टायै इति च० ४११॥

शिष्टैः पूजिता। पूजितायै इति च० ४१२॥

न प्रमातुं योग्या अपरिच्छिन्ना। अप्रमेयायै इति च० ४१३॥

स्वः प्रकाशो यस्याः सा परप्रकाश्यत्वात्। प्रकाशायै इति च० ४१४॥

मनसां वचसां अगोचरः अविषयः स्वरूपं यस्याः सा। अगोचरायै इति च० ४१५॥८९॥

---

१. पु. आविद्या।

(९०)

चिच्छक्ति[416] श्चेतनारूपा[417] जडशक्ति[418] र्जडात्मिका[419] ।
गायत्री[420] व्याहृतिः[421] सन्ध्या[422] द्विजवृन्दनिषेविता[423] ।।९०।।

चितेः ज्ञानात्मनः शक्तिः चैतन्यरूपा । शक्त्यै इति च० ४१६।।

चेतना चैतन्यं, तत् रूपं यस्याः सा । रूपायै इति च० ४१७।।

जडस्य पृथिव्यादेः शक्तिः धारणादाहनादि, तद्रूपा । शक्त्यै इति च० ४१८।।

जडस्य दृश्यस्य आत्मैवाऽऽत्मिका चिदतिरेकेण जडस्य रूपाभावात् । आत्मिकायै इति च० ४१९।।

गायन्तं त्रायते इति गायत्री । गायत्र्यै इति च० ४२०।।

व्याहृतिः व्याहरणरूपा । व्याहृत्यै इति च० ४२१।।

सन्धिः कालो यस्याः सा । सन्ध्यायै इति च० ४२२।।

द्विजानां वृन्देन समूहेन निषेविता नितरामुपासिता । सेवितायै इति च० ४२३।।६४।।

(९१)

तत्वासना[424] तत्[425] त्व[426]मयी[427] पञ्चकोशान्तरस्थिता[428] ।
निःसीममहिमा[429] नित्ययौवना[430] मदशालिनी[431] ।।९१।।

तत्त्वानि शिवादिक्षित्यन्तानि आसनं आसनवदधः स्थितानि यस्याः सा । आसनायै इति च० ४२४।।

तत् ईश्वररूपा । तस्मै इति च० ४२५।।

त्वं जीवरूपा । तुभ्य इति च० ४२६।।

अयः शुभावहो विधिः, तद्रूपस्य शिवस्य स्त्री । अय्यै इति च० ४२७।।

पञ्चानां अन्नमयादिकोशानां अन्तःसाक्षित्वेन स्थिता । स्थितायै इति च० ४२८।।

नि.सीमो[1] निरवधिको महिमा यस्याः सा । महिम्ने इति च० ४२९।।

नित्य यौवनं यस्याः सा । यौवनायै इति च० ४३०।।

स्वात्मानन्दानुभवजन्यमदयुक्ता । शालिन्यै इति च० ४३१।।९१।।

(९२)

मदघूर्णितरक्ताक्षी[432] मदपाटलगण्डभूः[433] ।
चन्दनद्रवदिग्धाङ्गी[434] चाम्पेयकुसुमप्रिया[435] ।।९२।।

---

१. पु० निः सीमा ।

तेनैव मदेन घूर्णितानि चञ्चलानि अक्षीणि यस्याः सा । अक्ष्यै इति च० ४३२॥

तेनैव मदेन पाटला श्वेतरक्ता गण्डभूः कपोलप्रदेशो यस्याः सा । भुवे इति च० ४३३॥

चन्दनस्य द्रवेण पङ्केन दिग्धानि लिप्तानि अङ्गानि यस्याः सा । अङ्ग्यै इति च० ४३४॥

चाम्पेयं चम्पासम्बन्धि कुसुमं प्रियं यस्याः सा । प्रियायै इति च० ४३५॥९२॥

(९३)

कुशला[४३६] कोमलाकारा[४३७] कुरुकुल्ला[४३८] कुलेश्वरी[४३९] ।

कुलकुण्डालया [४४०] कौलमार्गतत्परसेविता [४४१] ॥९३॥

कुशला सृष्ट्यादिकर्मचतुरा । कुशलायै इति च० ४३६॥

कोमलाः सुकुमाराः आकाराः अवयवा यस्याः सा । आकारायै इति च० ४३७॥

कुरुकुल्लाख्यदेवीरूपा । कुरुकुल्लायै इति च० ४३८॥

कुलं सजातीयसमूहः[१], तस्य ईश्वरी स्वामिनी । ईश्वर्य्यै इति च० ४३९॥

कुलकुण्डं मूलाधारकर्णिकारस्य छिद्रं, तद्देवालयः स्थानं यस्याः सा । कुलकुण्डलिनीरूपायाः सा । आलयायै इति च० ४४०॥

कुले वंशे भवः कौलो मार्गः कुलाचारः, तस्मिन् तत्परैरासक्तैः सेविता । सेवितायै इति च० ॥४४१॥

(९४)

कुमारगणनाथाम्बा[४४२] तुष्टिः[४४३] पुष्टि[४४४]र्मति[४४५]र्धृतिः[४४६] ।

शान्तिः[४४७] स्वस्तिमती[४४८]कान्ति[४४९] र्नन्दिनी[४५०]विघ्ननाशिनी[४५१]।९४

कुमारगणनाथयोः स्कन्दगणेशयोरम्बा माता । अम्बायै इति च० ४४२॥

तुष्टिः तोषरूपा । तुष्ट्यै इति चतुर्थ्यन्तम् ४४३॥

पुष्टिः पोषरूपा । पुष्ट्यै इति च० ४४४॥

मतिर्ज्ञानरूपा । मत्यै इति० च० ४४५॥

धृतिर्धैर्यरूपा । धृत्यै इति चतुर्थ्यन्तम् ४४६॥

शान्तिः शमरूपा । शान्त्यै इति च० ४४७॥

---

१. पु० सजातोय सजातीय समूहः ।

स्वस्ति कल्याणमस्या अस्तीति सा । मत्यै इति च० ४४८॥

कान्तिद्युतिरूपा । कान्त्यै इति च० ४४९॥

भक्तान्नन्दयतीति सा । नन्दिन्यै इति च० ४५०॥

भक्तानां विघ्नं नाशयतीति सा । नाशिन्यै इति च० ४५१॥९४॥

(९५)

तेजोवती[४५२] त्रिनयना[४५३] लोलाक्षीकामरूपिणी[४५४] ।
मालिनी[४५५] हंसिनी[४५६] माता[४५७] मलयाचलवासिनी[४५८] ॥९५॥

तेजः अस्या अस्तीति सा । तेजोवत्यै इति च० ४५२॥

त्रीणि नयनानि यस्याः सा । त्रिनयनायै इति च० ४५३॥

लोलाक्षीणां सुन्दरस्त्रीणामपि कामः दर्शनाभिलाषो यस्य, ईदृशं रूपमस्या इति सा[१] । रूपिण्यै इति च० ४५४॥

मालिनी मालायुतत्त्वात् । मालिन्यै इति च० ४५५॥

वाहने हंसवत्त्वाद् हंसिनी । हंसिन्यै इति च० ४५६॥

माता मातृकारूपा । मात्रे इति च० ४५७॥

मलयाचले वसतीति सा । वासिन्यै इति च० ४५८॥९५॥

(९६)

सुमुखी[४५९] नलिनी[४६०] सुभ्रूः[४६१] शोभना[४६२] सुरनायिका[४६३] ।
कालकण्ठी[४६४] कान्तिमती[४६५] क्षोभिणी[४६६] सूक्ष्मरूपिणी[४६७] ॥९६॥

शोभनं मुखं यस्याः सा । मुख्यै इति च० ४५९॥

नेत्रादीनां पद्मवत्त्वात् नलिनी । नलिन्यै इति च० ४६०॥

शोभने भ्रुवौ यस्याः सा । सुभ्रुवे इति च० ४६१॥

शोभना सौन्दर्य्यशीला । शोभनायै इति च० ४६२॥

सुराणां नायिका ईश्वरी । नायिकायै इति च० ४६३॥

कालः कण्ठे यस्य, तस्य स्त्री । कण्ठ्यै इति च० ४६४॥

कान्तिरस्या अस्तीति सा । मत्यै इति च० ४६५॥

---

१. पु० मस्येति सा ।

दुष्टान् क्षोभयतीति सा । क्षोभिण्यै इति च० ४६६॥

सूक्ष्मं दुर्ज्ञेयं रूपं अस्याः सा । रूपिण्यै इति च० ४६७॥६६॥

(९७)

वज्रेश्वरी[४६८] वामदेवी[४६९] वयोऽवस्थाविवर्जिता[४७०] ।
सिद्धेश्वरी[४७१] सिद्धविद्या[४७२] सिद्धमाता[४७३] यशस्विनी[४७४] ॥९७॥

वज्रेश्वरी देवीरूपा । ईश्वर्यै इति च० ४६८॥

वामा सुन्दरी चाऽसौ देवी च । देव्यै इति च० ४६९॥

वयसां याः अवस्थाः बाल्यादिरूपाः, ताभिर्विशेषेण वर्जिता । वर्जितायै इति च० ४७०॥

सिद्धानां ईश्वरी स्वामिनी । ईश्वर्यै इति च० ४७१॥

सिद्धानां विद्यामन्त्ररूपेण जप्या । विद्यायै इति च० ४७२॥

सिद्धानां मातेव रक्षणकर्त्री । मात्रे इति चतुर्थ्यन्तम् ४७३॥

यशः अस्या अस्तीति सा । यशस्विन्यै इति चतुर्थ्यन्तम् ४७४॥९७॥

(९८)

विशुद्धिचक्रनिलया[४७५] रक्तवर्णा[४७६] त्रिलोचना[४७७] ।
खट्वाङ्गादिप्रहरणा[४७८] वदनैकसमन्विता[४७९] ॥९८॥

विशुद्धिचक्रं षोडशदलं कण्ठस्थं निलयः स्थानं यस्याः सा । निलयायै इति च० ४७५॥

आरक्तः लोहितो वर्णो यस्याः सा । वर्णायै इति च० ४७६॥

त्रीणि लोचनानि यस्याः सा । लोचनायै इति च० ४७७॥

खट्वाङ्गः खट्वापादः, तदादीनि प्रहरणानि यस्याः सा । प्रहरणायै इति च० ४७८॥

वदनैकेन समन्विता । समन्वितायै इति चतु० ४७९॥९८॥

(९९)

पायसान्नप्रिया[४८०] त्वक्स्था[४८१] पशुलोकभयङ्करी[४८२] ।
अमृतादिमहाशक्तिसंवृता[४८३] डाकिनीश्वरी[४८४] ॥९९॥

पायसान्नं पयोविकारं अन्नं प्रियं यस्याः सा । प्रियायै इति च० ४८०॥

त्वचि धातौ तिष्ठतीति सा । त्वक्स्थायै इति च० ४८१॥

पशवः दुष्टचित्ता ये लोकास्तेषां भयं करोतीति सा। कर्यै इति च० ४८२॥

अमृता आदिर्यासां, तादृशीभिर्महाशक्तिभिः समन्ताद्वृता। वृतायै इति च० ४८३॥

डाकिन्याख्या ईश्वरी, तच्चक्राधिष्ठात्री। ईश्वर्यै इति च० ४८४॥९९॥

(१००)

अनाहताब्जनिलया[४८५] श्यामाभा[४८६] वदनद्वया[४८७] ।
दंष्ट्रोज्ज्वला[४८८]ऽक्षमालादिधरा[४८९] रुधिरसंस्थिता[४९०] ॥१००॥

अनाहताब्जं हृदिस्थितं द्वादशदलं, तन्निलयो यस्याः सा। निलयायै इति च० ४५८॥

श्यामा आभा कान्तिर्यस्या सा। आभायै इति च० ४८६॥

वदनयोर्द्वयं यस्याः सा। द्वयायै इति च० ४८७॥

दंष्ट्राभिर्वराहसमानदन्तैः उज्ज्वला शोभमाना। उज्ज्वलायै इति च० ४८८॥

अक्षमाला[1] जपमाला तदाद्यानामायुधानां धरा। धरायै इति च० ४८९॥

रुधिरे रक्तधातौ संस्थिता। संस्थितायै इति च० ४९०॥१००॥

(१०१)

कालरात्र्यादिशक्त्योघवृता[४९१] स्निग्धौदनप्रिया[४९२] ।
महावीरेन्द्रवरदा[४९३] राकिन्यम्बास्वरूपिणी[४९४] ॥१०१॥

कालरात्रिरादौ यासां, तादृशशक्त्योघेन वृता। वृतायै इति च० ४९१॥

स्निग्धं[2] घृतप्लुतं यदोदनं, तत्प्रियं यस्याः सा। प्रियायै इति च० ४९२॥

वीरेन्द्राः अन्तर्मुखाः, तेषु महान्तः श्रेष्ठाश्च ये विश्वाहन्ताभावनाशीलाः, तेभ्यो वरान्ददातीति सा। वरदायै इति च० ४९३॥

राकिन्यम्बायाः स्वरूपमस्याः सा। स्वरूपिण्यै इति च० ४९४॥१०१॥

(१०२)

मणिपूराब्जनिलया[४९५] वदनत्रयसंयुता[४९६] ।
वज्रादिकायुधोपेता[४९७] डामर्यादिभिरावृता[४९८] ॥१०२॥

---

१. पुस्तके-अक्षमा। २. पु० सिग्धं।

मणिपूराब्जं नाभिस्थं दशदलं, तन्निलयो यस्याः सा। निलयायै इति च० ४९५॥

वदनानां त्रयेण संयुता संयुतायै इति च० ४९६॥

वज्रादिकानि यान्यायुधानि, तैरुपेता। उपेतायै इति च० ४९७॥

डामरी आदिर्यासां शक्तीनां, ताभिरावृता। आवृतायै इति च० ४९८॥१०२॥

(१०३)

रक्तवर्णा[४९९] मांसनिष्ठा[५००] गुडान्नप्रीतमानसा[५०१] ।

समस्तभक्तसुखदा[५०२] लाकिन्यम्बास्वरूपिणी[५०३] ॥१०३॥

रक्तो वर्णः अङ्गकान्तिर्यस्याः सा। वर्णायै इति च० ४९९॥

मांसे नितरां तिष्ठतीति सा। निष्ठायै इति च० ५००॥

गुडेन मिश्रितान्नेन प्रीतं सुतुष्टं मानसं यस्याः सा। मानसायै इति च० ५०१॥

समस्तेभ्यो भक्तेभ्यः सुखं ददातीति सा। सुखदायै इति च० ५०२॥

लाकिन्यम्बायाः स्वरूपं अस्याः सा। स्वरूपिण्यै इति चतुर्थ्यन्तम् ५०३॥१०३॥

(१०४)

स्वाधिष्ठानाम्बुजगता[५०४] चतुर्व्वक्त्रमनोहरा[५०५] ।

शूलाद्यायुधसम्पन्ना[५०६] पीतवर्णा[५०७] ऽतिगर्व्विता[५०८] । १०४॥

स्वाधिष्ठानाम्बुजं लिङ्गदेशस्थितं षड्दलं, तद्गता प्राप्ता। गतायै इति च० ५०४॥

चतुः संख्यैर्वदनैर्मनोहरा शोभना। मनोहरायै इति च० ५०५॥

शूलं आदिर्येषां, तैरायुधैः सम्पन्ना युता। सम्पन्नायै इति च० ५०६॥

पीतो वर्णः अङ्गकान्तिर्यस्याः सा। वर्णायै इति च० ५०७॥

अत्यन्तं सौन्दर्य्यादिना गर्व्वोऽभिमानो यस्यां सञ्जातः इति सा। गर्व्वितायै इति च० ५०८॥१०४॥

(१०५)

मेदोनिष्ठा[५०९] मधुप्रीता[५१०] बन्धिन्यादिसमन्विता[५११] ।

दध्यन्नासक्तहृदया[५१२] काकिनीरूपधारिणी[५१३] ॥१०५॥

मेदसि मेदोधातौ नितरां तिष्ठतीति सा। [निष्ठायै इति च०] ५०९॥

मधुना प्रीता सन्तुष्टा। प्रीतायै इति च० ५१०॥

बन्धिनी आदिर्यासां, ताभिः शक्तिभिः समन्विता। अन्वितायै इति च० ५११॥

दध्ना सहिते ओदने आसक्तं हृदयं मनो यस्याः सा। हृदयायै इति च० ५१२॥

काकिन्या रूपं धारयतीति सा। धारिण्यै इति चतुर्थ्यन्तम् ५१३॥१०५॥

(१०६)

मूलाधाराम्बुजारूढा[५१४] पञ्चवक्त्रा[५१५] ऽस्थिसंस्थिता[५१६] ।
अङ्कुशादिप्रहरणा[५१७] वरदादिनिषेविता[५१८] ॥१०६॥

मूलाधाराम्बुजे स्वाधिष्ठानाधोविद्यमाने चतुर्द्दले आरूढा स्थिता। आरूढायै इति च० ५१४।

पञ्चसंख्यानि वक्त्राणि यस्याः सा। वक्त्रायै इति च० ५१५॥

अस्थिनि अस्थिधातौ संस्थिता। संस्थितायै इति च० ५१६॥

अङ्कुश आदौ येषां, तानि प्रहरणान्यायुधानि यस्याः सा। प्रहरणायै इति च० ५१७॥

वरदा आदिर्यासां, ताभिः शक्तिभिर्निरन्तरं सेविता। सेवितायै इति च० ५१८॥१०६॥

(१०७)

मुद्गौदनासक्तचित्ता[५१९] साकिन्यम्बास्वरूपिणी[५२०] ।
आज्ञाचक्राब्जनिलया[५२१] शुक्लवर्णा[५२२] षडानना[५२३] ॥११७॥

मुद्गमिश्रितौदने आसक्तं चित्तं यस्याः सा। चित्तायै इति च० ५१९॥

साकिन्यम्बायाः स्वरूपं यस्याः सा। स्वरूपिण्यै इति च० ५२०॥

आज्ञाचक्राब्जं भ्रूमध्यस्थं द्विदलं, तन्निलयं यस्याः सा। निलयायै इति च० ५२१।

शुक्लवर्णः अङ्गकान्तिर्यस्याः सा। वर्णायै इति च० ५२२॥

षट्संख्यान्याननानि यस्याः सा। आननायै इति च० ५२३॥१०७॥

(१०८)

मज्जासंस्था[५२४] हंसवतीमुख्यशक्तिसमन्विता[५२५] ।
हरिद्रान्नैकरसिका[५२६] हाकिनीरूपधारिणी[५२७] ॥१०८॥

मज्जात्मकधातौ आ समन्तात् तिष्ठतीति सा। संस्थायै इति च० ५२४॥

हंसवतीमुख्या मुखे भवा ययोः शक्त्योः, तादृशाभ्यां समन्विता। समन्वितायै[१] इति च० ५२५॥

१. पु० सन्निमन्वितायै।

हरिद्रामिश्रितान्नस्य एका मुख्या रसिका रसज्ञा। रसिकायै इति च० ५२६॥

हाकिन्याः रूपं धारयतीति सा धारिण्यै इति च० ५२७॥१०८॥

(१०९)

सहस्रदलमध्यस्था[५२८] सर्ववर्णोपशोभिता[५२९] ।
सर्वायुधधरा[५३०] शुक्लसंस्थिता[५३१] सर्वतोमुखी[५३२] ॥१०९॥

सहस्रदलं पद्मं ब्रह्मरन्ध्रस्थं, तत्र तिष्ठतीति सा। स्थायै इति च० ५२८॥

सर्वैर्वर्णैरुक्तै रारक्तादिभिः उपशोभिता शोभमाना। शोभितायै इति च० ५२९॥

सर्वेषामुक्तानां खट्वाङ्गादीनामायुधानां धरा। धरायै इति० ५३०॥

शुक्ले शुक्लधातौ सम्यक् स्थिता। स्थितायै इति च० ५३१॥

सर्वतः सर्वदिक्षु मुखानि यस्याः सा। मुख्यै इति च० ५३२॥५०९॥

(११०)

सर्वौदनप्रीतचित्ता[५३३] याकिन्यम्बास्वरूपिणी[५३४] ।
स्वाहा[५३५] स्वधा[५३६] ऽमति[५३७] र्मेधा[५३८] श्रुतिः[५३९] स्मृति[५४०]
रनुत्तमा[५४१] ॥११०॥

सर्वैः पायसादिभिरुक्तैरोदनैः प्रीतं सन्तुष्टं चित्तं यस्याः सा। चित्तायै इति च० ५३३॥

याकिन्यम्बायाः स्वरूपमस्याः स्वरूपिण्यै इति च० ५३४॥

देवपित्रुद्देश्येन हव्यकव्यत्यागार्थकौ स्वाहास्वधाशब्दौ, तादृशार्थरूपत्वाद् देव्यास्तद्वाच्यत्वं, तयोरव्ययत्वात् स्वाहा, स्वधा इति चतुर्थ्यन्तम्। स्वाहा इति च० ५३५॥

स्वधा इति च० ५३६॥

अमतिरविद्या, तद्रूपा। अमत्यै इति च० ॥५३७॥

मेधा धारणावती बुद्धिः, तद्रूपा। मेधायै इति च० ५३८॥

श्रुतिः श्रुतिरूपा। श्रुत्यै इति च० ५३९॥

स्मृतिः स्मृतिरूपा। स्मृत्यै इति च० ५४०॥

न उत्तमं वस्तु यस्याः सकाशात् सा। अनुत्तमायै इति च० ५४१॥११४॥

(१११)

पुण्यकीर्त्तिः[५४२] पुण्यलभ्या[५४३] पुण्यश्रवणकीर्त्तना[५४४] ।
पुलोमजार्चिता[५४५] बन्धमोचिनी[५४६] बन्धुरालका*[५४७] ॥१११॥

पुण्या पुण्यप्रदा कीर्त्तिर्यस्याः सा । कीर्त्त्यै इति च० ५४२॥

पुण्यैः सुकृतैर्लभ्या प्राप्या । लभ्यायै इति च० ५४३॥

पुण्य पुण्यप्रदं नामादीनां श्रवण कीर्त्तनं यस्याः सा । कीर्त्तनायै इति च० ५४४॥

पुलोमजा इन्द्राणी, तया अर्च्चिता । अर्च्चितायै इति च० ५४५॥

बन्धं आणवादिरूपं मोचयतीति सा । मोचिन्यै इति च० ५४६॥

बन्धुराः उन्नतानताः अलकाश्चूर्णकुन्तलाः यस्याः सा । अलकायै इति च० ५४७॥१११॥

(११२)

विमर्शरूपिणी[५४८] विद्या[५४९] वियदादिजगत्प्रसूः[५५०] ।
सर्वव्याधिप्रशमनी[५५१] सर्वमृत्युनिवारिणी[५५२] ॥११२॥

विमर्शः प्रकाशरूपस्य चिदात्मनः अन्तः संरम्भरूपा क्रियाशक्तिः, सः स्वरूपं स्वभावः अस्याः सा । स्वरूपिण्यै इति च० ५४८॥

विद्या मोक्षसाधनज्ञानरूपिणी । विद्यायै इति च० ५४९॥

वियदाकाश आदिर्यस्य, तस्य जगतः प्रसूर्जननी । प्रसुवे इति च० ५५०॥

भक्तानां सर्वान् व्याधीन् प्रशमयतीति सा । प्रशमन्यै इति च० ५५१॥

सर्वान् मृत्यून् मृत्युतत्कारणकामादींश्च निवारयतीति सा । निवारिण्यै इति च० ५५२॥११२॥

(११३)

अग्रगण्या[५५३] ऽचिन्त्यरूपा[५५४] कलिकल्मषनाशिनी[५५५] ।
कात्यायनी[५५६] कालहन्त्री[५५७]कमलाक्षनिषेविता[५५८] ॥११३॥

अग्रे वस्तूनां गणनारम्भे सर्वोत्कृष्टत्वान्मूलकारणत्वाच्च गण्या गणयितुं योग्या । गण्यायै इति च० ५५३॥

---

*. पु० बुधुरालका ।

मलिनचित्तैश्चिन्तितुमशक्यं रूपं यस्याः सा। रूपायै इति च० ५५४॥

कलियुगस्य सम्बन्धिकल्मषं पातकं अतिप्रबलमपि नाशयतीति सा। नाशिन्यै इति च० ५५५॥

ओड्याणपीठाभिमानिनी कात्यायनी, तद्रूपा। कात्यायन्यै[1] इति च० ५५६॥

कालस्य मृत्योर्हन्त्री नाशिनी। हन्त्र्यै इति च० ५५७॥

कमलाक्षो विष्णुस्तेन नितरां सेविता। सेवितायै इति च० ५५८॥११३॥

(११४)

ताम्बूलपूरितमुखी[५५९] दाडिमीकुसुमप्रभा[५६०]।
मृगाक्षी[५६१] मोहिनी[५६२] मुख्या[५६३] मृडानी[५६४] मित्ररूपिणी[५६५]॥११४॥

ताम्बूलेन पूरितं (मुखं यस्याः सा। मुख्यै इति च० ५५९॥

दाडिमस्य यत्कुसुमं, तस्येव प्रकृष्टाभा अङ्गकान्तिर्यस्या सा। प्रभायै इति च० ५६०

मृगस्य हरिणस्येवाक्षिणी यस्याः सा। अक्ष्यै इति च० ५६१॥

दुष्टान् मोहयति भ्रामयतीति[2] सा। मोहिन्यै इति च० ५६२॥

मुखे सर्वादौ भवा मुख्या। मुख्यायै इति च० ५६३॥

मृडस्य शिवस्य स्त्री इति। मृडान्यै[3] इति च० ५६४॥

मित्रस्य सूर्य्यस्येव रूपं अस्याः सा। रूपिण्यै इति च० ५६५॥११४॥

(११५)

नित्यतृप्ता[५६६] भक्तनिधि[५६७] नियन्त्री[५६८] निखिलेश्वरी[५६९]।
मैत्र्यादिवासनालभ्या[५७०] महाप्रलयसाक्षिणी[५७१] ॥११५॥

नित्यं सर्व्वदा तृप्ता तृप्तिमती। तृप्तायै इति च० ५६६॥

भक्तानां निधिः शेवधिः। निधये इति च० ५६७॥

जगन्नियामकत्वान्नियन्त्री। नियन्त्र्यै इति च० ५६८॥

निखिलस्य जगत ईश्वरी स्वामिनी। ईश्वर्य्यै इति च० ५६९॥

---

१. पु० कात्यायिन्यै। २. पु० भ्रायतीति। ३. पु० मृन्यै।

मैत्री आदिर्यासां करुणा[1]-मुदिता-शान्तानां वासनानां चित्तवृत्तीनां, ताभिरम्य-स्ताभिर्लभ्या । लभ्यायै इति च० ५७०॥

महाप्रलयस्य आत्यन्तिकजगन्नाशस्य साक्षीभूता[2] । साक्षिण्यै इति च० ५७१॥११५॥

(११६)

पराशक्तिः[५७२] परानिष्ठा[५७३] प्रज्ञानघनरूपिणी[५७४] ।
माध्वीपानालसा[५७५] मत्ता[५७६] मातृकावर्णरूपिणी[५७७] ॥११६॥

परा उत्कृष्टा शक्तिः । परस्यै शक्त्यै इति च० ५७२॥

परा उत्कृष्टा निष्ठा स्वरूपे स्थितिः, तद्रूपा । परस्यै निष्ठायै इति च० ५७३॥

प्रज्ञानस्य शुद्धसंविदो घनं एकरसं रूपं अस्याः । रूपिण्यै इति च० ५७४॥

माध्व्या मदिरासदृशानन्दरसस्य पानेनाऽऽस्वादनेन अलसा बाह्यव्यापाररहिता । अलसायै इति च० ५७५॥

अत एव मत्ता मदवती स्थिता । मत्तायै इति च० ५७६॥

मातृकावर्णानां अक्षराणां रूपं स्वरूपं अस्याः । रूपिण्यै इति च० ५७७॥११६॥

(११७)

महाकैलाशनिलया[५७८] मृणालमृदुदोर्ल्लता[५७९] ।
महनीया[५८०] दयामूर्त्ति[५८१] र्महासाम्राज्यशालिनी[५८२] ॥११७॥

महाकैलाशः परशिवस्थानं, स निलयो यस्याः सा । निलयायै इति च ५७८॥

मृणालं विसं, तदिव मृद्व्यः दोर्ल्लताः भुजलताः यस्याः सा । लतायै इति च० ५७९॥

महनीया सर्वपूज्या । महनीयायै इति च० ५८०॥

दयैव मूर्त्तिः शरीरं यस्याः सा । मूर्त्यै इति च० ५८१॥

महासाम्राज्यं अखिलजगदैश्वर्यं, तच्छालिनी तद्वती । शालिन्यै इति च० ५८२॥११७॥

(११८)

आत्मविद्या[५८३] महाविद्या[५८४] श्रीविद्या[५८५] कामसेविता[५८६] ।
श्रीषोडशाक्षरीविद्या[५८७] त्रिकूटा[५८८] कामकोटिका[५८९] ॥११८॥

---

१. पु० कारुणा । २. पु० साक्षिभूता ।

आत्मनो विद्या विज्ञानरूपा । विद्यायै इति च० ५८३॥

अत एव महती सर्वोत्कृष्टा विद्या । विद्यायै इति च० ५८४॥

श्रीविद्या सौभाग्यविद्यारूपा । विद्यायै इति च० ५८५॥

कामेन मन्मथेन सेविता । सेवितायै इति च० ५८६॥

श्रीमती षोडशाक्षरीरूपा विद्या यस्याः सा । विद्यायै इति च० ५८७॥

त्रीणि वाग्भवादिकूटानि यस्याः सा । कूटायै इति च० ५८८॥

कामानां कोटिः सौन्दर्य्योपमाभूता सा । कोटिकायै इति च० ५८९॥११८॥

(११९)

कटाक्षकिङ्करीभूतकमलाकोटिसेविता[५९०] ।
शिरःस्थिता[५९१] चन्द्रनिभा[५९२] भालस्थे[५९३]न्द्रधनुःप्रभा[५९४]॥११९॥

कटाक्षस्य दृगेकदेशपातस्य किङ्करीभूताः आज्ञाकराः कमलाकोटिभिः सेविताः सदाशिवादयो यस्याः सा । सेवितायै इति चतुर्थ्यन्तम् ५९०॥

विद्यायाः वाग्भवादिकूटत्रयं तुरीयकूटञ्च मूलाधारानाहताज्ञाब्रह्मरन्ध्रेषु क्रमेण अग्निसूर्य्येन्द्रधनुः पूर्णचन्द्रनिभं भावनीयमिति तन्त्रप्रसिद्धम् । तदेतत्सप्तभिर्नामभिराह— शिरःस्थिता ब्रह्मरन्ध्रे स्थिता । स्थितायै इति च० ५९१॥

पूर्णस्य चन्द्रस्येव नितरां भा कान्तिर्यस्याः सा । निभायै इति च० ५९२॥

भाले आज्ञाचक्रे तिष्ठतीति सा । भालस्थायै इति च० ५९३॥

इन्द्रधनुरिव प्रभा यस्याः सा । प्रभायै इति च० ५९४॥११९॥

(१२०)

हृदयस्था[५९५] रविप्रख्या[५९६] त्रिकोणान्तरदीपिका[५९७] ।
दाक्षायणी[५९८] दैत्यहन्त्री[५९९] दक्षयज्ञविनाशिनी[६००] ॥१२०॥

हृदये अनाहते तिष्ठतीति सा । हृदयस्थायै इति च० ५९५॥

रविरिव प्रकर्षेण ख्यानं प्रकाशो यस्याः सा । प्रख्यायै इति च० ५९६॥

त्रिकोणस्य मूलाधारमध्यस्थितस्य अन्तरे मध्ये दीपिकेव स्थिता । दीपिकायै इति च० ५९७॥

दक्षस्याऽपत्यं स्त्री । दाक्षायण्यै इति च० ५९८॥

दैत्यानां हननकर्त्री । हन्त्र्यै इति च० ५९९॥

दक्षस्य यज्ञो मखस्तं विनाशयतीति सा। विनाशिन्यै इति च० ६००॥१२०॥

(१२१)

दरान्दोलितदीर्घाक्षी[६०१] दरहासोज्ज्वलन्मुखी[६०२]।
गुरुमूर्त्ति[६०३] र्गुणनिधि[६०४] र्गोमाता[६०५] गुहजन्मभूः[६०६] ॥१२१॥

दरमीषदान्दोलितानि चपलानि अक्षीणि यस्याः सा। अक्ष्यै इति च० ६०१॥

दरहासेन मन्दस्मितेन उज्ज्वलच्छोभमानं मुखं यस्याः सा। मुख्यै इति च० ६०२॥

गुरुरेव मूर्त्तिः शरीरं यस्याः सा। मूर्त्यै इति च० ६०३॥

गुणानां सौन्दर्य्यशीलादीनां निधिः शेवधिः। निधये इति च० ६०४॥

गवां वाचां वेदादीनां माता जननी। मात्रे इति च० ६०५॥

गुहस्य स्कन्दस्य जन्मन उत्पतेर्भूः स्थानं। भुवे इति च० ॥६०६॥१२१॥

(१२२)

देवेशी[६०७] दण्डनीतिस्था[६०८] दहराकाशरूपिणी[६०९]।
प्रतिपन्मुख्यराकान्ततिथिमण्डलपूजिता[६१०] ॥१२२॥

देवानां ब्रह्मादीनां ईशः शिवः, तस्य स्त्री। ईश्यै इति च० ६०७॥

दण्डनीतिः नीतिशास्त्रं, तत्राऽऽज्ञारूपेण तिष्ठतीति सा। स्थायै इति च० ६०८॥

दहराकाशो हृदयकमलान्तर्वर्त्त्यवकाशः[1] स रूपं अस्याः इति। रूपिण्यै इति च० ६०९॥

प्रतिपन्मुखे भवा[2] यासां, ईदृशः राका पूर्णिमा अन्ते यासां तिथीनां यन्मण्डलं, तस्मिंस्तत्तन्नित्यारूपेण[3] पूजिता। पूजितायै इति च० ६१ ॥१२२॥

(१२३)

कलात्मिका[६११] कलानाथा[६१२] काव्यालापविनोदिनी[६१३]।
सचामररमावाणीसव्यदक्षिणसेविता[६१४] ॥१२३॥

कला अग्न्यादीनां कलाः तदात्मिका। आत्मिकायै इति च० ६११॥

तासामेव नाथा स्वामिनी। नाथायै इति च० ६१२॥

---

१. पु० न्तरवृत्यवकाशः। २. पु० भावा। ३. पु० तस्मिन्ततन्नित्या०।

SANSKRIT SANSTHAN DEEMED UNIVERSITY UNDER MINISTRY OF H.R.D. GOVT. OF INDIA
ACCESSION NO 21638
DATE 21/4/04

काव्यानां कविकृतप्रबन्धानां आलापेन यो विनोदः, तद्वती । विनोदिन्यै इति च० ६१३॥

चामराभ्यां सहितरमावाणीभ्यां लक्ष्मीसरस्वतीभ्यां सव्यदक्षिणभागयोः सेविता । सेवितायै इति च० ६१४॥१२३॥

(१२४)

आदिशक्ति[६१५] **रमेया**[६१६] **ऽऽत्मा**[६१७] **परमा**[६१८] **पावनाकृतिः**[६१९] **।**
अनेककोटिब्रह्माण्डजननी[६२०] **दिव्यविग्रहा**[६२१] **॥१२४॥**

आदिः सर्वकारणभूता च सा शक्तिश्च । शक्त्यै इति च० ६१५॥

न मातुं शक्या । अमेयायै इति च० ६१६।

आत्मा जीवः, तद्रूपा सा । आत्मने इति च० ६१७॥

परमा उत्कृष्टा । परमायै इति च० ६१८॥

पावना पवित्रकर्त्री आकृतिर्मूर्त्तिर्यस्याः सा । आकृत्यै इति च० ६१९॥

अनेकानां ब्रह्माण्डकोटीनां जननी । जनन्यै इति च० ६२०॥

दिव्यः सुन्दरो विग्रहो यस्याः सा । विग्रहायै इति च० ६२१॥१२४॥

(१२५)

क्लींकारी[६२२] **केवला**[६२३] **गुह्या**[६२४] **कैवल्यपददायिनी**[६२५] **।**
त्रिपुरा[६२६] **त्रिजगद्वन्द्या**[६२७]**त्रिमूर्त्ति**[६२८] **स्त्रिदशेश्वरी**[६२९] **॥१२५॥**

क्लींकारी कामबीजरूपा । कार्य्यै इति च० ६२२॥

गुणदोषादिरहितत्वात् केवला । केवलायै इति च० ६२३॥

गुह्या अतिरहस्यरूपा । गुह्यायै इति च० ६२४॥

कैवल्यं मोक्षपदं स्वर्गादिस्थानञ्च ददातीति सा । दायिन्यै इति च० ६२५॥

त्रिभ्यः ज्ञातृज्ञानज्ञेयादित्रिभेदनियतवस्तुभ्यः पुरा पुरातनरूपा । पुरायै इति च० ६२६॥

त्रयाणां जगतां वन्दितुं योग्या । वन्द्यायै इति च० ६२७॥

त्रयाणां त्रिभेदनियतानां मूर्त्तिर्यस्याः सा । मूर्त्यै इति च० ६२८॥

तिसृणां दशानां जाग्रदादीनां ईश्वरी अधिष्ठात्री । ईश्वर्य्यै इति च० ६२९॥१२५॥

(१२६)

त्र्यक्षरी[६३०] दिव्यगन्धाढ्या[६३१] सिन्दूरतिलकाञ्चिता[६३२] ।
उमा[६३३] शैलेन्द्रतनया[६३४] गौरी[६३५] गन्धर्व्वसेविता[१] [६३६] ॥१२६॥

त्र्यक्षरी अक्षरत्रयरूपा । त्र्यक्षर्य्यै इति च० ६३०॥
दिव्यो यो गन्धः सुगन्धः, तेन आढ्या सम्पन्ना । आढ्यायै इति च० ६३१ ।
सिन्दूरस्य यत्तिलकं, तेन अञ्चिता युता । अञ्चितायै इति च० ६३२॥
उं परशिवं माति परिच्छिनत्तीति सा । उमायै इति च० ६३३॥
शैलेन्द्रस्य हिमवतः तनया । तनयायै इति च० ६३४॥
गौरी गौरवर्णत्वात् । गौर्य्यै इति च० ६३५॥
गन्धर्वैः सेविता । सेवितायै इति च० ६३६॥१२६॥

(१२७)

विश्वगर्भा[६३७] स्वर्णगर्भा[६३८] ऽवरदा[६३९] वागधीश्वरी[६४०] ।
ध्यानगम्या[६४१] ऽपरिच्छेद्या[६४२] ज्ञानदा[६४३] ज्ञानविग्रहा[६४४] ॥१२६॥

विश्वं जगद् गर्भे यस्याः सा । गर्भायै इति च० ६३७॥
शोभना वर्णा मातृकारूपा गर्भे यस्याः सा । गर्भायै इति च० ६३८॥
अः विष्णुः, तस्मै वरं ददातीति सा । अवरदायै इति च० ६३९॥
वाचां अधीश्वरी स्वामिनी । ईश्वर्य्यै इति च० ६४०॥
ध्यानेन भावेन गम्या ज्ञेया । गम्यायै इति च० ६४१॥
न देशकालाकारैः परिच्छेतुं योग्या । अपरिच्छेद्यायै इति च० ६४२॥
भक्तानां[२]ज्ञानं स्वात्मविषयकं ददातीति सा । ज्ञानदायै इति च० ६४३॥
ज्ञानमेव विग्रहः शरीरं यस्याः सा । विग्रहायै इति च० ६४४॥१२७॥

(१२८)

सर्ववेदान्तसंवेद्या[६४५] सत्यानन्दस्वरूपिणी[६४६] ।
लोपामुद्रार्चिता[६४७] लीलाक्लृप्तब्रह्माण्डमण्डला[६४८] ॥१२८॥

---

१. पु० गान्धर्वं० । २. पु० भाक्तानां ।

सर्वबेदान्तैरुपनिषद्भागैः सम्यग्वेद्या । वेद्यायै इति च० ।।६४५।।

सत्याऽऽत्मकानन्दः स्वरूपमस्याः । रूपिण्यै इति च० ।।६४६।।

लोपामुद्रया अगस्त्यपत्न्या अर्च्चिता । अर्च्चितायै इति च० ।।६४७।।

लीलया क्लृप्तानि ब्रह्माण्डानां मण्डलानि यया सा । मण्डलायै इति च० ६४८।।१२८।।

(१२९)

अदृश्या[६४९] दृश्यरहिता[६५०] विज्ञात्री[६५१] वेद्यवर्ज्जिता[६५२] ।
योगिनी[६५३]योगदा[६५४]योग्या[६५५]योगानन्दा[६५६]युगन्धरा[६५७]।।१२९।।

न दृश्या अदृश्या । अदृश्यायै इति च० ।।६४९।।

दृश्यैः रहिता चिद्घनत्वात् । रहितायै इति च० ।।६५०।।

विशेषेण जानातीति सा । ज्ञात्र्यै इति च० ।।६५१।।

वेद्यैर्वर्जिता रहिता । वर्जितायै इति च० ।।६५२।।

योगः शिवसम्बन्धः, तद्वती । योगिन्यै इति च० ।।६५३।।

भक्तेभ्यो योगं चित्तनिरोधात्मकं ददातीति सा । योगदात्र्यै इति च० ।।६५४।।

योग्या योगसाध्या । योग्यायै इति च० ।।६५५।।

योगिनो योगेन आनन्दो यस्याः सम्बन्धी सा । आनन्दायै इति च० ।।६५६।।

युगस्य कार्य्यकारणात्मकस्य युगलस्य धरा । धरायै इति च० ।।६५७।।१२९।।

(१३०)

इच्छाशक्तिर्ज्ञानशक्तिक्रियाशक्तिस्वरूपिणी[६५८] ।
सर्व्वाधारा[६५९] सुप्रतिष्ठा[६६०] सदसद्रूपधारिणी[६६१] ।।१३०।।

इच्छाशक्त्यादीनां स्वरूपमस्याः सा । स्वरूपिण्यै इति चतुर्थ्यन्तम् ।।६५८।।

सर्वस्य जगत आधारा आश्रयरूपा । आधारायै इति च० ।।६५९।।

शोभना च सा प्रतिष्ठा अधिष्ठानं वा । प्रतिष्ठायै इति च० ।।६६०।।

सदसतोर्ब्रह्मजगतो रूपं धारयतीति सा । धारिण्यै इति च० ।।६६१।।१३०।।

(१३१)

अष्टमूर्त्ति[६६२] रजाजैत्री[६६३] लोकयात्राविधायिनी[६६४] ।
एकाकिनी[६६५] भूमरूपा[६६६] निर्द्वैता[६६७] द्वैतवर्ज्जिता[६६८] ॥१३१॥

अष्टौ मूर्त्तयः पृथ्व्यादिपञ्चभूतानां सूर्य्यचन्द्रयज्वनां [रूपं] यस्याः सा । मूर्त्त्यै इति च० ॥६६२॥

अजाया अविद्याया जैत्री नाशिका । जैत्र्यै इति च० ॥६६३॥

लोकानां भूरादीनां यात्रा गतिः व्यवहरणं, तां विधत्ते इति सा । विधायिन्यै इति च० ॥६६४॥

एकाकिनी द्वितीयराहित्यात् । एकाकिन्यै इति च० ॥६६५॥

भूमा ब्रह्म रूपं यस्याः सा । रूपायै इति च० ॥६६६॥

निर्गतं द्वैतं यस्याः सा । निर्द्वैतायै इति च० ॥६६७॥

द्वैतेन रहिता । वर्ज्जितायै इति च० ॥६६८॥१३१॥

(१३२)

अन्नदा[६६८] वसुदा[६७०] वृद्धा[६७१] ब्रह्मात्मैक्यस्वरूपिणी[६७१] ।
बृहती[६७३]ब्राह्मणी[६७४]ब्राह्मी[६७५]ब्रह्मानन्दा[६७६]बलिप्रिया[६७७] ॥१३२॥

अन्नं सेवकेभ्यो ददातीति सा । अन्नदायै इति च० ॥६२९॥

वसु धनं ददातीति सा । वसुदायै इति च० ॥६७०॥

वृद्धा सकलज्येष्ठत्वात् । वृद्धायै इति च० ॥६७१॥

ब्रह्मात्मनोः शिवजीवयोर्यदैक्यं अनुस्यूतैकरूपता, तत्स्वरूपमस्याः सा । रूपिण्यै इति च ॥६७२॥

बृहती महीयसी । बृहत्यै इति च० ॥६७३॥

ब्राह्मणस्य शिवस्य स्त्री । ब्राह्मण्यै इति च० ॥६७४॥

ब्राह्मी ब्रह्मशक्तिरूपा । ब्राह्म्यै इति च० ॥६७५॥

ब्रह्मण आनन्दो यस्याः सा । आनन्दायै इति च० ॥६७६॥

बलिः पूजोपहारादिः प्रियो यस्याः सा । प्रियायै इति च० ॥६७७॥१३२॥

(१३३)

भाषारूपा[६७८] बृहत्सेना[६७९] भावाऽभावविवर्जिता[१][६८०] ।
सुखाराध्या[६८१] शुभकरी[५८२] शोभनासुलभागतिः[६८३] ॥१३४॥

संस्कृतादिभाषाः रूपं यस्याः सा । रूपायै इति च० ॥६७८॥

बृहती सेना चतुरङ्गं बलं यस्याः सा । सेनायै इति च० ॥६७९॥

भावाऽभावाभ्यां सदसद्भ्यां विशेषेण वर्जिता । वर्जितायै इति च० ॥६८०॥

सुखेन कायाक्लेशराहित्येन आराध्या आराध्यायै इति चतुर्थ्यन्तम् ॥६८१॥

भक्तानां शुभं करोतीति सा । कर्य्यै इति च० ॥६८२॥

मोक्षादिपुरुषार्थरूपत्वात् शोभना, सुखोपास्यत्वात् सुलभा, प्राप्तव्यस्थानरूपत्वाद् गति । पदत्रयात्मकमेकं नाम । शोभनायै सुलभायै गत्यै चतुर्थ्यन्तम् ॥६८३ ॥१३३॥

(१३४)

राजराजेश्वरी[६८४] राज्यदायिनी[६८५] राज्यवल्लभा[६८६] ।
राजत्कृपा[६८७] राजपीठनिवेशितनिजाश्रिता[६८८] ॥१३४॥

राज्ञां देवराजादीनां राजानः ब्रह्मादयः, तेषामीश्वरः परशिवः, तस्य स्त्री । ईश्वर्य्यै इति च० ॥६८४॥

सेवकानां राज्यदायं शीलं यस्याः सा । दायिन्यै इति च० ॥६८५॥

राज्यं जगत्साम्राज्यं वल्लभं प्रियं यस्याः सा । वल्लभायै इति च० ॥६८६॥

राजन्ती कृपा यस्याः सा । कृपायै इति च० ॥६८७॥

राज्ञां इन्द्रादीनां पीठेषु राज्यासनेषु निवेशिताः निजाश्रिताः यया सा । आश्रितायै इति च० ॥६८८॥१३४॥

(१३५)

राज्यलक्ष्मीः[६८९] कोशनाथा[६९०] चतुरङ्गबलेश्वरी[६९१] ।
साम्राज्यदायिनी[६९२] सत्यसन्धा[६९३] सागरमेखला[६९४] ॥१३५॥

---

१. पु. भावविर्जिता ।

राज्यसम्बन्धिनी या लक्ष्मीस्तद्रूपा । लक्ष्म्यै इति च० ।।६८९।

कोशानां भाण्डागाराणां धनसञ्चयानां नाथा स्वामिनी । नाथायै इति च० ।।६९०।।

हस्त्यश्वरथपदात्यात्मकचतुरङ्गयुतबलस्येश्वरी मियन्त्री । ईश्वर्य्यै इति च० ।।६९१।।

साम्राज्यं सार्वभौमत्वं ददातीति सा । दायिन्यै इति च० ।।६९२।।

सत्ये अनुल्लङ्घ्ये सन्धे प्रतिज्ञामर्य्यादे यस्याः सा । सन्धायै इति च० ।।६९३।।

सागराः मेखलाः परिधिरूपाः यस्या भूमेस्तद्रूपा । मेखलायै इति च० ।।६९४ ।।१३५।।

(१३६)

दीक्षिता[६९५] दैत्यशमनी[६९६] सर्वलोकवशङ्करी[६९७] ।
सर्वार्थदात्री[६९८] सावित्री[६९९] सच्चिदानन्दरूपिणी[७००] ।।१३६।।

मन्त्रादिदानेन पापादि क्षपयतीति दीक्षा, सा अस्यां सञ्जातेति सा । दीक्षितायै इति च० ।।६९५।।

दैत्यानां शमनी नाशिका । शमन्यै इति च० ।।६९६।।

सर्वेषां लोकानां वशङ्करोतीति सा । कर्य्यै इति च० ।।६९७।।

सर्वेषां अर्थानां पुरुषार्थान दानकर्त्री । दात्र्यै इति च० ।।६९८।।

सवितुर्जगज्जनकस्येयं सावित्री । सावित्र्यै इति च० ।।६९९।।

सत् चित् आनन्दश्च रूपं यस्या इति । रूपिण्यै इति चतुर्थ्यन्तम् ।।७००।।१३६।।

(१३७)

देशकालापरिच्छिन्ना[७०१] सर्वगा[७०२] सर्वमोहिनी[७०३] ।
सरस्वती[७०४] शास्त्रमयी[७०५] गुहाम्बा[७०६] गुह्यरूपिणी[७०७] ।।१३७।।

देशकालाभ्यां न परिच्छिन्ना । अपरिच्छिन्नायै इति च० ।।७०१।।

सर्वं जगत् प्रकाश्यत्वेन गच्छतीति सा । सर्वगायै इति च० ।।७०२।।

सर्वान् ब्रह्मादीनपि मोहयतीति सा । मोहिन्यै इति च० ।।७०३।।

सरस्वती ज्ञानाभिमानिनी, तद्रूपा । सरस्वत्यै इति च० ।।७०४।।

शास्त्रमयी प्रतिपाद्यत्वसम्बन्धेन शास्त्रप्रचुरा । मय्यै इति च० ।।७०५।।

गुहस्य स्कन्दस्य अम्बा माता । अम्बायै इति च० ॥७०६॥

गुह्यं अतिगुप्तं रूपं यस्याः सा । रूपिण्यै इति च० ॥७०७ ॥१३७॥

(१३८)

सर्वोपाधिविनिर्मुक्ता[७०८] **सदाशिवपतिव्रता**[७०९] ।
सम्प्रदायेश्वरी[७१०] **साध्वी**[७११-७१२] **गुरुमण्डलरूपिणी**[७१३] ॥१३८॥

सर्वैरुपाधिभिर्विशेषेण निर्मुक्ता । मुक्तायै इति च० ॥७०८॥

सदाशिवस्य पतिव्रता । व्रतायै इति च० ॥७०९॥

सम्यक् प्रदीयते शिष्येभ्यः । तस्य सम्प्रदायस्येश्वरी स्वामिनी । ईश्वर्य्यै इति च० ॥७१०॥

साधु उचितरूपा नपुंसकं नाम । साधुने इति च०॥७११॥

अस्य परशिवस्य स्त्री ई । यै इति च० ॥७१२॥

गुरूणां यन्मण्डलं ओघत्रयरूपं, तस्य रूपं अस्याः । रूपिण्यै इति च० ७१३॥१३८॥

(१३९)

कुलोत्तीर्णा[७१४] **भगाराध्या**[७१५] **माया**[७१६] **मधुमती**[७१७] **मही**[७१८] ।
गणाम्बा[७१९] **गुह्यकाराध्या**[७२०] **कोमलाङ्गी**[७२१] **गुरुप्रिया**[७२२]॥१३९॥

कुलं सजातिसमूहो जगत्, तदुत्तीर्णा अतिक्रान्ता । उत्तीर्णायै इति च० ॥७१४॥

भगे सूर्यमण्डले आराध्या । आराध्यायै इति च० ॥७१५॥

शिवस्य दुर्घटस्य सम्पादने शक्तिर्माया । मायायै इति च० ॥७१६॥

मधुवत्प्रियैकरसत्वान्मधु आत्मरूपं, तद्विमर्शविषये नास्या अस्तीति सा । मत्यै इति च० ॥७१७॥

पृथ्वीवत्सर्वाधारत्वान्मही । मह्यै इति च० ॥७१८॥

गणस्य गजाननस्याऽम्बा । अम्बायै इति च० ॥७१९॥

गुह्यकैर्निधिरक्षकैर्यक्षैराराध्या । आराध्यायै इति च० ॥७२०॥

कोमलान्यङ्गानि यस्याः सा । अङ्ग्यै इति च० ॥७२१॥

गुरोर्जगद्गुरोः शिवस्य प्रिया । प्रियायै इति च० ॥७२२॥१३९॥

(१४०)

स्वतन्त्रा[७२३] सर्वतन्त्रेशी[७२४] दक्षिणामूर्त्तिरूपिणी[७२५] ।
सनकादिसमाराध्या[७२६] शिवज्ञानप्रदायिनी[७२७] ॥१४०॥

सृष्टयादावनन्यमुखप्रेक्षितत्वात् स्वतन्त्रा । स्वतन्त्रायै इति च० ॥७२३॥

सर्वेषां वैष्णवशैवादीनां तन्त्राणां ईशी प्रणेत्री । ईश्यै इति च० ॥७२४॥

दक्षिणामूर्त्तेः शिवावतारस्य रूपमस्याः । रूपिण्यै इति च० ॥७२५॥

सनकादिभिः सम्यगात्माभेदभावनेनाराध्या । आराध्यायै इति च० ॥७२६॥

शिवविषयकं ज्ञानं प्रददातीति सा । प्रदायिन्यै इति च० ॥७२७॥१४०॥

(१४१)

चित्कला[७२८] ऽऽनन्दकलिका[७२९] प्रेमरूपा[७३०] प्रियङ्करी[७३१] ।
नामपारायणप्रीता[७३२] नन्दिविद्या[७३३] नटेश्वरी[७३४] ॥१४१॥

चितः ज्ञानरूपिणः शिवस्य कलेव कला शक्तिः । कलायै इति च० ॥७२८॥

आनन्दमयी कलिका कोरकः । कलिकायै इति च० ॥७२९॥

प्रेम प्रीतिस्तद्रूपं यस्याः सा, भक्तविषयकप्रेममयीति भावः । रूपायै इति च० ॥७३०॥

भक्तेषु प्रियं करोतीति सा । कर्य्यै इति च० ॥७३१॥

षट्त्रिंशदुत्तरसप्तशताधिकसहस्रमन्त्रावृत्तिरूपं यन्नामपारायणं, तेन प्रीता । प्रीतायै इति च० ॥७३२॥

नन्दिना नन्दिकेश्वरेण उपासिता या विद्या, तद्रूपा । विद्यायै इति च० ॥७३३॥

नट परमशिवः, तस्येयम् । ईश्वर्य्यै इति च० ॥७३४॥१४१॥

(१४२)

मिथ्याजगदधिष्ठाना[७३५] मुक्तिदा[७३६] मुक्तिरूपिणी[७३७] ।
लास्यप्रिया[७३८] लयकरी[७३९] लज्जा[७४०] रम्भादिवन्दिता[७४१] ॥१४२॥

मिथ्यारूपजगतः अधिष्ठानं भानाधिकरणं चैतन्यं यस्याः सा । अधिष्ठानाय इति च० ॥७३५॥

भक्तानां मुक्ति ददातीति सा । मुक्तिदायै इति च० ॥७३६॥

मुक्तिरेव रूपमस्याः सा । रुपिण्यै इति च० ॥७३७॥

लास्यं नृत्यं प्रियं यस्याः सा । प्रियायै इति चतुर्थ्यन्तम् ॥७३८॥

लयं तालविशेषं करोतीति सा । कर्य्यै इति चतुर्थ्यन्तम् ॥७३९॥

लज्जारूपा । लज्जायै इति चतुर्थ्यन्तम् ॥७४०॥

रम्भाद्यप्सरोभिर्वन्दिता । वन्दितायै इति चतुर्थ्यन्तम् ॥७४१॥१४२॥

(१४३)

भवदावसुधावृष्टिः[७४२] पापारण्यदवानला[७४३] ।
दौर्भाग्यतूलवातूला[७४४] जराध्वान्तरविप्रभा[७४५] ॥१४३॥

भवः संसारः, तद्रूपो दावो वनाग्निः भक्तानां, तन्निवारणे सुधावृष्टिरूपा । वृष्टयै इति चतुर्थ्यन्तम् ॥७४२॥

भक्तानां पापात्मकारण्यस्य नाशने दवानला दवाग्निरूपा । अनलायै इति चतुर्थ्यन्तम् ॥७४३॥

दौर्भाग्यं दुरदृष्टं, तदेव तूलं कार्पासं, तस्य दूरीकरणे वातूला वायुसमूहरूपा । वातूलायै इति च० ॥७४४॥

जरा वार्द्धक्यं, तद्रूपध्वान्तस्याऽन्धकारस्य नाशने रवेः प्रभारूपा । प्रभायै इति च० ॥७४५॥१४३॥

(१४४)

भाग्याब्धिचन्द्रिका[७४६] भक्तचित्तकेकिघनाघना[७४७] ।
रोगपर्वतदम्भोलि[७४८] र्मृत्युदारुकुठारिका[७४९] ॥१४४॥

भाग्यरूपसमुद्रस्योत्सेधकरीत्वाच्चन्द्रिकेव चन्द्रिकायै इति च० ॥७४६॥

भक्तानां चित्तात्मककेकिनां मयूराणां हर्षकत्वाद्घनाघना मेघस्वरूपा । घनाघनायै इति च० ॥७४७॥

रोगरूपपर्व्वतभेदने दम्भोलिरशनिरूपा । दम्भोलये इति च० ॥७४८॥

मृत्युरूपदारुण छेदने कुठारिकेव । कुठारिकायै इति च० ॥७४९॥१४४॥

(१४५)

महेश्वरी[७५०] महाकाली[७५१] महाग्रासा[७५२] महाशना[७५३] ।
अपर्णा[७५४] चण्डिका[७५५] चण्डमुण्डासुरनिषूदिनी[७५६] ॥१४५॥

महती चाऽसावीश्वरी चेति । ईश्वर्य्यै इति च० ॥७५०॥

महाकालस्य स्त्री । काल्यै इति च० ॥७५१॥

महानपरिमितः जगद्रूपो ग्रासो यस्याः सा । ग्रासायै इति च० ॥७५२॥

महज्जगद्रूपमशनं आहारः यस्याः सा । अशनायै इति च० ॥७५३॥

भक्तानामपगतं ऋणं यस्याः प्रसादात् । अपर्णायै इति च० ॥७५४॥

चण्डिका दुष्टेषु क्रोधिनीत्वात् । चण्डिकायै इति च० ॥७५५॥

चण्डमुण्डाख्यावसुरौ निषूदयतीति सा । निषूदिन्यै[१] इति च० ॥७५६॥१४५॥

(१४६)

क्षराऽक्षरात्मिका[७५७] सर्वलोकेशी[७५८] विश्वधारिणी[७५९] ।
त्रिवर्गदात्री[७६०] सुभगा[७६१] त्र्यम्बका[७६२] त्रिगुणात्मिका[७६३] ॥१४६॥

क्षराऽक्षरात्मिका क्षराक्षरौ अनित्यनित्यवस्तुनी, तदात्मिका तद्रूपा । आत्मिकायै इति च० ॥७५७॥

सर्वेषां लोकानां ईशी ईश्वरी । ईश्यै इति च० ॥७५८॥

विश्वं जगद्धारयतीति सा । धारिण्यै इति चतुर्थ्यन्तम् ॥७५९॥

त्रयाणां धर्म्मार्थकामानां वर्गस्समूहः, तस्य दात्री । दात्र्यै इति च० ॥७६०॥

शोभनं भगं ऐश्वर्य्यं यस्याः सा । सुभगायै इति च० ॥७६१॥

त्रीण्यम्बकानि नेत्राणि यस्याः सा । त्र्यम्बकायै इति च० ॥७६२॥

सत्त्वादित्रिगुणरूपा । आत्मिकायै इति च० ॥७६३॥१४६॥

(१४७)

स्वर्गापवर्गदा[७६४] शुद्धा[७६५] जपापुष्पनिभाकृतिः[७६६] ।
ओजस्वती[७६७] द्युतिधरा[७६८] यज्ञरूपा[७६९] प्रियव्रता[७७०] ॥१४७॥

---

१. पु० निषूनिन्यै :

स्वर्गापवर्गौ कर्म्मज्ञानफले, तौ ददातीति सा । दायै इति च० ॥७६४॥

शुद्धा आणवादिमलरहिता । शुद्धायै इति च० ॥७६५॥

जपापुष्पेण तुल्या आकृतिः अङ्गवर्णो यस्याः सा । आकृतये इति च० ॥७६६॥

ओजस्स्नेहस्तद्वती । ओजस्वत्यै इति च० ॥७६७॥

द्युतेः कान्तेर्धरा । धरायै इति च० ॥७६८॥

यज्ञा एव रूपं यस्याः सा । रूपायै इति च० ॥७६९॥

प्रियाणि व्रतानि यस्याः सा । प्रियव्रतायै इति चतुर्थ्यन्तम् ॥७७०॥१४७॥

(१४८)

दुराराध्या[771] दुराधर्षा[772] पटलीकुसुमप्रिया[773] ।
महती[774] मेरुनिलया[775] मन्दारकुसुमप्रिया[776] ॥१४८॥

बहिर्मुखैर्दुःखेन आराधयितुं शक्या । आराध्यायै इति च० ॥७७१॥

आधर्षः स्वाधीनीकरणं असति दुःखसाध्यो यस्याः सा । आधर्षायै इति च० ॥७७२॥

पटल्यभिधं कुसुमं प्रियं यस्याः । प्रियायै इति च० ॥७७३॥

महती सर्वोत्कृष्टत्वात् । महत्यै इति इति च० ॥७७४॥

मेरौ निलयः स्थानं यस्याः सा । निलयायै इति च० ॥७७५॥

मन्दारकुसुमं प्रियं यस्याः सा । प्रियायै इति च० ॥७७६॥१४८॥

(१४९)

वीराराध्या[777] विराड्रूपा[778] विरजा[779] विश्वतोमुखी[780] ।
प्रत्यग्रूपा[781] पराकाशा[782] प्राणदा[783] प्राणरूपिणी[784] ॥१४९॥

वीरैरन्तर्मुखैराराध्या । आराध्यायै इति च० ॥७७७॥

विराट् स्थूलसमष्टिः रूपं यस्याः सा । रूपायै इति च० ॥७७८॥

विगतं रजः मलो यस्याः सा । विरजसे इति च० ॥७७९॥

विश्वतः सर्वतो मुखं यस्याः सा । मुख्यै इति चतुर्थ्यन्तम् ॥७८०॥

प्रत्यगन्तर्मुखसंवित्, तद्रूपं यस्याः सा । रूपायै इति च० ॥७८१॥

पर उत्कृष्टः स्वात्मविषयत्वादाकाशो विमर्शशक्तिर्यस्याः सा । आकाशायै इति च० ॥७८२॥

प्राणं ब्रह्मस्वरूपं ददातीति सा । दायै इति च० ॥७८३॥

प्राणः रूपं यस्याः सा । रूपिण्यै इति च० ॥७८४॥१४९॥

(१५०)

मार्त्तण्डभैरवाराध्या[७८५] मन्त्रिणीन्यस्तराजधूः[७८६] ।
त्रिपुरेशी[७८७] जयत्सेना[७८८] निस्त्रैगुण्या[७८९] परापरा[७९०] ॥१५०॥

मार्त्तण्डभैरवः सूर्य्यमण्डलाभिमानिनी देवता, तेनाराध्या । आराध्यायै इति च० ॥७८५॥

मन्त्रिण्यां श्यामलायां[1] न्यस्ता संस्थापिता, राजधूः[2] राज्यभारो यया । धुरे इति च० ॥७८६॥

त्रयाणां स्थूलसूक्ष्मकारणात्मकानां पुराणां शरीराणां ईशी अधिष्ठात्री । ईश्यै इति च० ॥ ७८७॥

जयन्ती जयशीलिनी सेना बलं यस्याः सा । सेनायै इति च० ॥७८८॥

निर्गतं त्रैगुण्यं त्रिगुणसम्बन्धः यस्याः सा त्रैगुण्यायै इति च० ॥७८९॥

पराः लोकोत्कृष्टाः ब्रह्मादयः, अपरा निकृष्टाः यस्याः सा । अपरायै इति च० ॥७९०॥१५०॥

(१५१)

सत्यज्ञानानन्दरूपा[७९१] सामरस्यपरायणा[७९२] ।
कपर्द्दिनी[७९३] कलामाला[७९४] कामधुक्[७९५] कामरूपिणी[७९६] ॥१५१॥

सत्यज्ञानात्मकानन्दः स्वरूपं यस्याः सा । परायणायै इति च० ॥७९१॥

सामरस्यमैक्यं, तदेव परमुत्कृष्टमयनं स्थानं यस्याः सा । परायणायै इति च० ॥७९२॥

---

१ पु० राजश्यामलायां । २. पु० धूः ।

कपर्द्दिनः शिवस्य स्त्री कपर्द्दिनी । कपर्द्दिन्यै इति च० ॥७९३॥

कलानां चतुष्षष्टिसंख्यानां माला परम्परा यस्याः सा । मालायै इति च० ॥७९४॥

भक्तानां कामानभीष्टान्दोग्धीति सा । दुहे इति च० ॥७९५॥

कामः कामेश्वरः स एव रूपं स्वरूपमस्याः सा । रूपिण्यै इति च० ॥७९६।१५१॥

(१५२)

कलानिधिः[797] काव्यकला[798] रसज्ञा[799] रसशेवधिः[800] ।
पुष्टा[801] पुरातना[802] पूज्या[803] पुष्करा[804] पुष्करेक्षणा[805] ॥१५२॥

कलानां पूर्वोक्तानां निधिः शेवधिः । निधये इति च० ॥७९७॥

काव्यात्मककलारूपा । कलायै इति चतुर्थ्यन्तम् ॥७९८॥

रसान् शृङ्गारादीन् जानातीति सा । ज्ञायै इति चतुर्थ्यन्तम् ॥७९९॥

रसानां पूर्वोक्तानां शेवधिः । शेवधये इति चतुर्थ्यन्तम् ॥८००॥

पुष्टा पुष्टिमती सर्वात्मकत्वात् । पुष्टायै इति च० ॥८०१॥

सर्वजगतामादिभवत्वात् पुरातना । पुरातनायै इति च० ॥८०२॥

सर्वेषां पूजनयोग्या । पूज्यायै इति च० ॥८०३॥

पुष्कराख्यतीर्थरूपा । पुष्करायै इति च० ॥८०४॥

पुष्कराणीव कमलानीव ईक्षणानि नेत्राणि यस्याः सा । ईक्षणायै इति च० ॥८०५॥१५२॥

(१५३)

परंज्योतिः[806] परन्धाम[807] परमाणुः[808] परात्परा[809] ।
पाशहस्ता[810] पाशहन्त्री[811] परमन्त्रविभेदिनी[812] ॥१५३॥

परं सर्वप्रकाशकत्वादुत्कृष्टं ज्योतिः प्रकाशः । परस्मै ज्योतिषे इति च० ॥८०६॥

धाम्नो जाग्रदाद्यवस्थातः परं तत्साक्षिभूतम् । परस्मै धाम्ने इति च० ॥८०७॥

परमा चाऽसौ अण्वी च, इदमिति बहिष्ट्वेन ज्ञातुमशक्यत्वात् । अणवे इति च० ॥८०८॥

पराज्जगत्पूज्याद् ब्रह्मादेरपि परा उत्कृष्टा । परायै इति च० ॥८०९॥

पाशः हस्ते यस्याः सा । हस्तायै इति च० ॥८१०॥

भक्तानां आत्मादिपाशानां हन्त्री नाशिका । हन्त्र्यै इति च० ॥८११॥

परेषां स्वभक्तवैरिणां आभिचारिका ये मन्त्राः, तान् विभेदयतीति सा । विभेदिन्यै इति च० ॥८१२॥१५३॥

(१५४)

मूर्त्ता[८१३] ऽमूर्त्ता[८१४] नित्यतृप्ता[८१५] मुनिमानसहंसिका[८१६] ।
सत्यव्रता[८१७] सत्यरूपा[८१८] सर्वान्तर्यामिणी[८१९] सती[८२०] ॥१५४॥

मूर्त्ता बाह्येन्द्रियगोचरजगद्रूपा । मूर्त्तायै इति च० ॥८१३॥

न मूर्त्ता अमूर्त्ता, तद्भिन्नसुखादिरूपा । अमूर्त्तायै इति च० ॥८१४॥

भक्तकृतैर्गन्धादिरूपनित्योपचारैरपि तृप्ता । नित्यतृप्तायै[1] इति च० ॥८१५॥

मुनीनां मननशीलानां यन्मानसं गम्भीरनैर्मल्यादिगुणेन मानसरस्तुल्य तत्र हंसिकेव नित्यसम्बद्धा । हंसिकायै इति च० ॥८१६॥

सत्यं अवश्यफलदायकं व्रतं यस्याः सा । व्रतायै इति च० ॥८१७॥

सत्यमबाधितं रूपं यस्याः सा । रूपायै इति च० ॥८१८॥

सर्वेषां अन्तः अन्तकरणानि यमयतीति सा । यामिण्यै इति च० ॥८१९॥

सती पतिव्रता । सत्यै इति च० ॥७२०॥१५४॥

(१५५)

ब्रह्माणी[८२१] ब्रह्म[८२२] जननी[८२३] बहुरूपा[८२४] बुधार्चिता[८२५] ।
प्रसवित्री[८२६] प्रचण्डा[८२७] ऽऽज्ञा[८२८] प्रतिष्ठा[८२९] प्रकटाकृतिः[८३०] ॥१५५॥

ब्रह्मणः परशिवस्य स्त्री ब्रह्माणी । ब्रह्माण्यै इति च० ॥८२१॥

सत्यमुक्तप्राप्यरूपा । ब्रह्मणे इति च० ॥८२२॥

जननी जगन्माता । जनन्यै इति च० ॥८२३॥

बहूनि रूपाणि यस्याः सा । रूपायै इति च० ॥८२४॥

---

१ पु० अनित्यतृप्तायै ।

विबुधैर्विद्वद्भिरर्चिता । अर्चितायै इति च० ॥८२५॥

प्रकर्षेण जगत् सूते इति सा । प्रसवित्र्यै इति च० ॥८२६॥

प्रकृष्टा चण्डा दुष्टेष्वतिकोपना । प्रचण्डायै इति च० ॥८२७॥

आज्ञा प्रवृत्तिनिवृत्तिकारणभगवंदिच्छारूपा । आज्ञायै इति च० । ८२८॥

प्रतितिष्ठत्यस्यां सर्वमिति सा । प्रतिष्ठायै[1] इति च० ॥८२९।

प्रकटा ब्रह्मादिस्तम्बान्तेषु अहमित्येवं प्रसिद्धा आकृतिः स्वरूपं यस्याः सा । आकृतये इति च० ॥८३०॥१५५॥

(१५६)

प्राणेश्वरी[८३१] प्राणदात्री[८३२] पञ्चाशत्पीठरूपिणी[८३३] ।
विशृङ्खला[८३४] विविक्तस्था[८३५] वीरमाता[८३६] वियत्प्रसूः[८३७] ॥१५६॥

प्राणानां इन्द्रियाणामीश्वरी अधिष्ठात्री । ईश्वर्य्यै इति च० ॥८३१॥

प्राणानां दात्री सर्वजगज्जीवयित्री । दात्र्यै इति च० ॥८३२॥

पञ्चाशदित्येकपञ्चाशत्परं कामरूपादिछायाछत्रान्तैकपञ्चाशतां पीठानां रूपमस्याः सा । रूपिण्यै इति च० ॥८३३॥

शृङ्खला बन्धकत्वेन निगडतुल्यत्वात् कर्म्मबन्धः, सा विगता यस्याः सा । विशृङ्खलायै इति च० ॥८३४॥

विविक्ते पवित्रैकान्तदेशे तिष्ठतीति सा । विविक्तस्थायै इति च० ॥८३५॥

वीराः अन्तर्मुखा जनास्तेषां रक्षणकर्त्रीति माता । मात्रे इति च० ॥८३६॥

वियतः आकाशस्य प्रसूः जननी । प्रसुवे इति च० ॥८३७॥१५६॥

(१५७)

मुकुन्दा[८३८] मुक्तिनिलया[८३९] मूलविग्रहरूपिणी[८४०] ।
भावज्ञा[८४१] भवरोगघ्नी[८४२] भवचक्रप्रवर्त्तिनी[८४३] ॥१५७॥

मुकुन्दो विष्णुस्तद्रूपा । मुकुन्दायै इति च० ॥८३८॥

---

१. पु० प्रतिष्ठितायै ।

मुक्तेः मोक्षस्य निलयः स्थानं यस्यां सा । निलयायै इति च० ॥८३९॥

मूलभूतः जगत्कारणीभूतो विग्रहः शरीरं ऐश्वरं, स रूपमस्याः । रूपिण्यै इति च० ॥८४०॥

भावान् सर्वजनाशयान् जानातीति सा । भावज्ञायै इति च० ॥८४१॥

भवः संसारः, स एव दुःखप्रदत्वाद्रोगः, तं हन्तीति सा । रोगघ्न्यै इति च० ॥८४२॥

भवं संसारं चक्रवत्पुनः पुनः प्रवर्त्तयतीति सा । प्रवर्त्तिन्यै इति च० ॥८४३॥१५७॥

(१५८)

छन्दःसारा[८४४] शास्त्रसारा[८४५] मन्त्रसारा[८४६] तलोदरी[८४७] ।
उदारकीर्त्ति[८४८] रुद्दामवैभवा[८४९] वर्णरूपिणी[८५०] ॥१५८॥

छन्दस्सु वेदेषु सारं निष्कर्षो यस्याः सा । सारायै इति च० ॥८४४॥

एवमेव शास्त्रेषु सारं यस्याः सा । सारायै इति च० ॥८४५॥

मन्त्रेषु सारं यस्याः सा । सारायै इति च० ॥८४६॥

तलं करतलं, तदिव कृशं समञ्चोदरं यस्याः सा । उदर्य्यै इति च० ॥८४७॥

उदाराः सुन्दराः कीर्त्तयो यस्याः सा । कीर्त्यै इति च० ॥८४८॥

उद्दामं अपरिच्छिन्नं वैभवं यस्याः सा । वैभवायै इति च० ॥८४९॥

वर्णाः आदिक्षान्ताः रूपमस्याः । रूपिण्यै इति च० ॥८५०॥१५८॥

(१५९)

जन्ममृत्युजरातप्तजनविश्रान्तिदायिनी[८५१] ।
सर्वोपनिषदुद्घुष्टा[८५२] शान्त्यतीताकलात्मिका[८५३] ॥१५९॥

जन्ममृत्युजराद्युपद्रवतप्तानां सेवकजनानां विश्रान्तिं स्वात्मलाभसुखं ददातीति सा । दायिन्यै इति च० ॥८५१॥

सर्वासूपनिषत्सु उत्कर्षेण घुष्टा प्रतिपादिता । घुष्टायै इति च० ॥८५२॥

कला ध्वनिः पञ्चमी कला शान्त्यतीतेत्युच्यते, सा शिवपरिनिष्ठिता, तदात्मिका तदभिन्ना । आत्मिकायै इति च० ॥८५३॥१५९॥

(१६०)

गम्भीरा[८५४] गगनान्तस्था[८५५] गर्व्विता[८५६] गानलोलुपा[८५७] ।
कल्पनारहिता[८५८] काष्ठा[८५९]ऽकान्ता[८६०]कान्तार्द्ध विग्रहा[८६१]।।१६०।।

समुद्र इवातिविततैकरसान्तरत्वाद् गम्भीरायै इति च० ।।८५४।।

गगनस्य चिदाकाशस्याऽन्तःसारवत्तिष्ठतीति सा । अन्तस्थायै इति च० ।।८५५।।

गर्व्वो विश्वास्मितारूपाऽभिमानः, सोऽस्यां सञ्जात इति च० ।।८५६।।

गाने गान्धर्व्वे लोलुपा आसक्ता । लोलुपायै इति च० ।।८५७।।

कल्पना भ्रान्त्यनुभवः, तया रहिता सत्यानुभवरूपत्वात् । रहितायै इति च० ।।८५८।।

अत एव काष्ठा योगिनां परागतिरूपा । काष्ठायै इति च० ।।८५९।।

अकं पापं, तस्य अन्तो यस्याः सा । अकान्तायै इति च० ।।८६०।।

कान्तः शिवः, स अर्द्धं विग्रहः अर्द्धं शरीरं यस्याः सा । विग्रहायै इति च० ।।८६१।।१६०।।

(१६१)

कार्य्यकारणनिर्म्मुक्ता[८६२] कामकेलितरङ्गिता[८६३] ।
कनत्कनकताटङ्का[८६४] लीलाविग्रहधारिणी[८६५] ।।१६१।।

कार्य्यकारणाभ्यां स्थूलसूक्ष्माभ्यां निर्म्मुक्ता रहिता । मुक्तायै इति चतुर्थ्यन्तम् ।।८६२।।

कामः कामेश्वरः, तस्य केलीनां क्रीडाविलासानां तरङ्गाः परम्पराः सञ्जाता अस्यां । तरङ्गितायै इति च० ।।८६३।।

कनती दीप्यमाने कनकमये ताटङ्के यस्याः सा । ताटङ्कायै इति च० ।।८६४।।

लीलार्थं विग्रहं धारयतीति सा । धारिण्यै इति च० ।।८६५।।१६१।।

(१६२)

अजा[८६६] क्षयविनिर्म्मुक्ता[८६७] मुग्धा[८६८] क्षिप्रप्रसादिनी[८६९] ।
अन्तर्मुखसमाराध्या[८७०] बहिर्म्मुखसुदुर्ल्लभा[८७१] ।।१६२।।

न जायते सा जन्मरहितत्वात् । अजायै इति च० ।।८६६।।

क्षयेन नाशेन विशेषतो निर्म्मुक्ता । मुक्तायै इति च० ।।८६७।।

मुग्धा सौन्दर्य्यवती । मुग्धायै इति च० ॥८६८॥

भक्तेषु शीघ्रं प्रसीदतीति । प्रसादिन्यै इति च० ॥८६९॥

अन्तर्म्मुखैः विषयवासनाविमुखान्तःकरणैः सम्यगाराधयितुं शक्या । आराध्यायै इति च० ॥८७०॥

बहिर्म्मुखानामुक्तविपरीतानां सुतरां दुर्ल्लभायै इति च० ॥८७१॥१६२॥

(१६३)

त्रयी[८७२] त्रिवर्गनिलया[८७३] त्रिस्था[८७४] त्रिपुरमालिनी[८७५] ।
निरामया[८७६]निरालम्बा[८७७]स्वात्मारामा[८७८]सुधास्रुतिः[८७९] ॥१६३॥

त्रयी वेदत्रयरूपा । त्रय्यै इति च० ॥८७२॥

त्रिवर्गो धर्म्मादित्रयं, तस्य निलयं स्थानं यस्यां सा । निलयायै इति च० ॥८७३॥

त्रिषु मातृमानमेयादित्रित्रिभेदनियतेषु तिष्ठतीति सा । त्रिस्थायै इति च० ॥८७४॥

त्रयाणां स्थूलसूक्ष्मकारणदेहानां माला परम्परा अस्यां अस्तीति सा । मालिन्यै इति च० ॥८७५॥

भक्तानां निर्गता आमया रोगा यस्याः कृपया । निरामयायै इति च० ॥८७६॥

निर्गत आलम्ब आश्रयो यस्याः सा । आलम्बायै इति च० ॥८७७॥

स्वात्मन्यारामः क्रीडा यस्याः सा । आरामायै इति च० ॥८७८॥

सुधायाः ज्ञानामृतस्य स्रुतिः स्रवणं यस्याः सा । स्रुत्यै इति च० ॥८७९॥१६३॥

(१६४)

संसारपङ्कनिर्म्मग्नसमुद्धरणपण्डिता[८८०] ।
यज्ञप्रिया[८८१] यज्ञकर्त्री[८८२] यजमानस्वरूपिणी[८८३] ॥१६४॥

संसाररूपे कर्द्दमे नितरां मग्नानां सेवकजनानां सम्यगुद्धरणे पण्डिता अभिज्ञा । पण्डितायै इति च० ॥८८०॥

यज्ञः प्रियो यस्याः सा । प्रियायै इति च० ॥८८१॥

यज्ञानां कर्त्री सर्वकर्मकारकत्वात् । कर्त्र्यै इति च० ॥८८२॥

अत एव यजमानस्य स्वरूपं अस्याः सा । स्वरूपिण्यै इति च० ॥८८३॥१६४॥

(१६५)

धर्म्माधारा[८८४] धनाध्यक्षा[८८५] धनधान्यविवर्द्धिनी[८८६] ।
विप्रप्रिया[८८७] विप्ररूपा[८८८] विश्वभ्रमणकारिणी[८८९] ॥१६५॥

धर्म्माणां शास्त्रीयाचाराणां आधारा प्रवर्त्तकत्वात् । आधारायै इति च० ॥८८४॥

धनानामध्यक्षा स्वामिनी । अध्यक्षायै इति च० ॥८८५॥

धनानि धान्यानि च सेवकेषु विशेषेण वर्द्धयतीति । वर्द्धिन्यै इति च० ॥८८६॥

विप्राणां विदुषां प्रिया आत्मरूपत्वात् । प्रियायै इति च० ॥८८७॥

विप्रा एव रूपं स्वरूपं यस्याः सा । रूपायै इति च० ॥८८८॥

विश्वेषां सर्वेषां भ्रमणं भ्रमः मिथ्याज्ञानं, तत्करोतीति सा । कारिण्यै इति च० ॥८८९॥१६५॥

(१६६)

विश्वग्रासा[८९०] विद्रुमाभा[८९१] वैष्णवी[८९२] विष्णुरूपिणी[८९३] ।
अयोनि[८९४] र्योनिनिलया[८९५] कूटस्था[८९६] कुलरूपिणी[८९७] ॥१६६॥

विश्वं ग्रसति संहरतीति सा । ग्रासायै इति च० ॥८९०॥

विद्रुमः प्रवालः, तद्वदाभा कान्तिर्यस्याः सा । आभायै इति च० ॥८९१॥

विष्णुशक्तिरूपा । वैष्णव्यै इति च० ॥८९२॥

विष्णोः रूपं अस्याः सा रूपिण्यै इति चतुर्थ्यन्तम् ॥८९३॥

नास्ति योनिः कारणं यस्याः सा । अयोन्यै इति च० ॥८९४॥

योनावन्तस्त्रिकोणे निलयो यस्याः सा । निलयायै इति च० ॥८९५॥

कूटवदचलभावेन तिष्ठतीति सा । कूटस्थायै इति च० ॥८९६॥

कुलं सजातीयसमूहो जगत् तद्रूपमस्याः सा । रूपिण्यै इति च० ॥८९७॥१६६॥

(१६७)

वीरगोष्ठीप्रिया[८९८] वीरा[८९९] नैष्कर्म्या[९००] नादरूपिणी[९०१] ।
विज्ञानकलना[९०२] कल्या[९०३] विदग्धा[९०४] वैन्दवासना[९०५] ॥१६७॥

वीराणामन्तर्मुखानां गोष्ठी सभा प्रिया यस्याः सा । प्रियायै इति च० ॥८९८॥

अन्तर्मुखसंविद्रूपत्वात् । वीरायै इति च० ॥॥८६६॥

नैष्कर्म्या कर्म्मरहिता । नैष्कर्म्यायै इति च० ॥६००॥

नादः शक्तिः, स रूपं अस्याः । रूपिण्यै इति च० ॥६०१॥

विज्ञाने स्वात्मानुभवे कलनं विमर्शनं स्फुरणं यस्याः सा । कलनायै इति च० ॥६०२॥

कल्या तुं ज्ञातुं योग्या कल्यायै इति च० ॥६०३॥

विदग्धा चतुरा । विदग्धायै इति च० ॥६०४॥

वैन्दवे चक्रे आसनं यस्याः सा । आसनायै इति चतुर्थ्यन्तम् ॥६०५॥१६७॥

(१६८)

तत्त्वाधिका[६०६] तत्त्वमयी[६०७] तत्त्वमर्थस्वरूपिणी[६०८] ।
सामगानप्रिया[६०९] सौम्या[६१०] सदाशिवकुटुम्बिनी[६११] ॥१६८॥

तत्त्वेभ्यः शिवादिक्षित्यन्तेभ्योऽधिका । अधिकायै इति च० ॥६०६॥

तत्त्वैः प्रचुरा । तत्त्वमय्यै इति च० ॥६०७॥

तत्त्वमर्थो महावाक्यार्थः स स्वरूपं अस्याः । स्वरूपिण्यै इति च० ॥६०८॥

सामगानं प्रियं यस्याः सा । प्रियायै इति च० ॥६०९॥

सौम्या शान्तरूपा । सौम्यायै इति च० ॥६१०॥

सदाशिवस्य कुटुम्बिनी[1] गृहिणी[2] । कुटुम्बिन्यै इति च० ॥६११॥१६८॥

(१६९)

सव्यापसव्यमार्ग्गस्था[६१२] सर्व्वापद्विनिवारिणी[६१३] ।
स्वस्था[६१४] स्वभावमधुरा[६१५] धीरा[६१६] धीरसमर्चिता[६१७] ॥१६९॥

सव्यापसव्यमार्ग्गयोर्दक्षवाममार्ग्गयोराराध्यत्वेन स्थिता । मार्गस्थायै इति च० ॥६१२॥

सेवकानां सर्वाः आपदो विशेषेण निवारयतीति । विनिवारिण्यै इति च० ॥६१३॥

क्लेशलेशस्याऽप्यभावात् स्वस्था । स्वस्थायै इति च० ॥६१४॥

---

१ पु० कुटुम्बीनी । २ पु० गृहीणी ।

स्वभावतो निसर्गेणैव मधुरा सर्वाभिलषणीया । मधुरायै इति च० ॥६१५॥

धीरा धैर्य्यवती । धीरायै इति ॥६१६॥

धीरैः सम्यगर्च्चिता । अर्च्चितायै इति च० ॥६१७॥१६९॥

(१७०)

चैतन्यार्घ्यसमाराध्या[६१८] चैतन्यकुसुमप्रिया[६१९] ।
सदोदिता[६२०] सदातुष्टा[६२१] तरुणादित्यपाटला[६२२] ॥१७०॥

चैतन्यमयैरर्घ्यैर्योगिचित्तवृत्तिरूपैः पूजोपकरणैः समाराध्या । आराध्यायै इति च० ॥६१८॥

चैतन्यकुसुमं नित्यस्वरूपं प्रियं यया सा । प्रियायै इति च० ॥६१९॥

सदा नित्यमुदिता अनस्तमितसंविद्रूपत्वात् । उदितायै इति च० ॥६२०॥

सदातुष्टा नित्यानन्दरूपत्वात् । तुष्टायै इति च० ॥६२१॥

तरुणो य आदित्यः मध्याह्नार्कः, तद्वत्पाटला श्वेतरक्तवर्णा । पाटलायै इति च० ॥६२२॥१७०॥

(१७१)

दक्षिणादक्षिणाराध्या[६२३] दरस्मेरमुखाम्बुजा[६२४] ।
कौलिनीकेवला[६२५] ऽनर्घ्यकैवल्यपददायिनी[६२६] ॥१७१॥

दक्षिणादक्षिणाभ्यां कर्म्मिज्ञानिभ्यां आराध्या । आराध्यायै इति च० ॥६२३॥

दरस्मेरं ईषत्स्मितयुतं मुखाम्बुजं यस्याः सा । अम्बुजायै इति च० ॥६२४॥

कौलिनीति सृष्टिक्रमेण कौलिन्यादिवशिन्यन्ता वाग्देवताः, ताभिः केवला निर्णीता । केवलायै इति च० ॥६२५॥

अनर्घ्यमपरिच्छिन्नं यत्कैवल्यपदं, तद्ददातीति सा । दायिन्यै इति च० ॥६२६॥१७१॥

(१७२)

स्तोत्रप्रिया[६२७] स्तुतिमती[६२८] श्रुतिसंस्तुतवैभवा[६२९] ।
मनस्विनी[६३०] मानवती[६३१] महेशी[६३२] मङ्गलाकृतिः[६३३] ॥१७२॥

स्तोत्रं गुणानुवादः प्रियं यस्याः सा । प्रियायै इति च० ॥६२७॥

स्तुतिरस्या अस्तीति सा । मत्यै इति च० ॥६२८॥

श्रुतिभिर्वेदैः सम्यक् स्तुतं वैभवं विभुत्वं यस्याः सा । विभवायै इति च० ॥६२९॥

मनस्विनी स्वतन्त्रा । मनस्विन्यै इति च० ॥६३०॥

मान आदरणं अस्या अस्तीति सा । मानवत्यै इति चतुर्थ्यन्तम् ॥६३१॥

महेशस्य स्त्री । महेश्यै इति चतुर्थ्यन्तम् ॥६३२॥

मङ्गलप्रदा आकृतिः स्वरूपं यस्याः । सा । आकृतये इति चतुर्थ्यन्तम् ॥६३३॥१७२॥

(१७३)

विश्वमाता[६३४] जगद्धात्री[६३५] विशालाक्षी[६३६] विरागिणी[६३७] ।
प्रगल्भा[६३८] परमोदारा[६३९] परामोदा[६४०] मनोमयी[६४१] ॥१७३॥

विश्वस्य जगतो माता । मात्रे इति च० ॥६३४॥

जगतो धात्री पालनकर्त्री । धात्र्यै इति च० ॥६३५॥

विशालान्यक्षीणि यस्याः सा । अक्ष्यै इति च० ॥६३६॥

विरागः अस्या अस्तीति सा । विरागिण्यै इति च० ॥६३७॥

प्रगल्भा समर्था । प्रगल्भायै इति च० ॥६३८॥

परमा उत्कृष्टा, उदारा दानशीला । उदारायै इति च० ॥६३९॥

परः उत्कृष्टः आमोदः सन्तोषो यस्याः सा । आमोदायै इति च० ॥६४०॥

मनोमयी मनःप्रधाना । मय्यै इति च० ॥६४१॥१७३॥

(१७४)

व्योमकेशी[६४२] विमानस्था[६४३] वज्रिणी[६४४] वामकेश्वरी[६४५] ।
पञ्चयज्ञप्रिया[६४६] पञ्चप्रेतपञ्चाधिशायिनी[६४७] ॥१७४॥

व्योमैव केशा यस्य, तस्य स्त्री । केश्यै इति च० ॥६४२॥

विमाने तिष्ठतीति सा । स्थायै इति च० ॥६४३॥

वज्रिण इन्द्रस्य स्त्री शक्तिः । वज्रिण्यै इति च० ॥६४४॥

वामः सुन्दरः, स एव वामकः, स चाऽसौ ईश्वरश्च वामेश्वर इति यावत्, तस्य स्त्री । ईश्वर्य्यै इति च० ॥६४५॥

पञ्चसंख्याका यज्ञाः महायज्ञाः प्रियाः यस्याः सा । प्रियायै इति च० ॥६४६॥

पञ्चप्रेतात्मको यो मञ्चः पर्य्यङ्कः, तमधिशेते इति सा । शायिन्यै इति च० ॥६४७॥१७४॥

(१७५)

पञ्चमी[६४८] पञ्चभूतेशी[६४९] पञ्चसंख्योपचारिणी[६५०] ।
शाश्वती[६५१] शाश्वतैश्वर्या[६५२] शर्म्मदा[६५३] शम्भुमोहिनी[६५४] ॥१७५॥

पञ्चमी तुरीयातीतरूपा । पञ्चम्यै इति च० ॥६४८॥

पञ्चभूतानां पृथ्व्यादीनामीशी अधिष्ठात्री । ईश्यै इति च० ॥६४९॥

पञ्चसंख्या गन्धाद्युपचाराः यस्याः सा । उपचारिण्यै इति च० ॥६५०॥

शाश्वती नाशरहिता । शाश्वत्यै इति च० ॥६५१॥

शाश्वतमुक्तरूपमैश्वर्य्यं यस्याः सा । ऐश्वर्य्यायै इति च० ॥६५२॥

भक्तेभ्यः शर्म सुखं ददातीति सा । शर्म्मदायै इति च० ॥६५३॥

शम्भुं मोहयतीति सा । मोहिन्यै इति च० ॥६५४॥

(१७६)

धरा[६५५] धरसुता[६५६] धन्या[६५७] धर्म्मिणी[६५८] धर्म्मवर्द्धिनी[६५९] ।
लोकातीता[६६०] [१] गुणातीता[६६१] [१]सर्वातीता[६६२][२]शमात्मिका[६६३]॥१७६॥

धरा पृथ्वीरूपा । धरायै इति च० ॥६५५॥

धरस्य हिमवतः सुता । सुतायै इति च० ॥६५६॥

धन्या कृतार्था । धन्यायै इति च० ॥६५७॥

धर्म्मिणी धर्म्मवती । धर्म्मिण्यै इति च० ॥६५८॥

धर्म्मं वर्द्धयतीति सा । वर्द्धिन्यै इति च० ॥६५९॥

लोकानतीता अतिक्रम्य परपदेन स्थिता । अतीतायै इति च० ॥६६०॥

गुणान् सत्त्वादीनतिक्रम्य स्थिता । अतीतायै इति च० ॥६६१॥

---

१. पु० ७६० । २. पु० ७६० ।

सर्वं षट्त्रिंशत्तत्त्वमतीता । अतीतायै इति च० ।।६६२।।

शमः संसारक्षोभराहित्यं, तदात्मिका । आत्मिकायै इति च० ।।६६३।।

(१७७)

बन्धूककुसुमप्रख्या[६६४] बाला[६६५] लीलाविनोदिनी[६६६] ।
सुमङ्गली[६६७] सुखकरी[६६८] सुवेषाढ्या[६६९] सुवासिनी[६७०] ।।१७७।।

बन्धूककुसुमस्येव प्रख्या कान्तिर्यस्याः सा । प्रख्यायै इति च० ।।६६४।।

बाला ललिता कुमारी, तद्रूपा । बालायै इति च० ।।६६५।।

लीलायां क्रीडायां विनोदः हर्षः अस्याः अस्तीति सा । विनोदिन्यै इति च० ।।६६६।।

सुमङ्गली शोभनं मङ्गलं अस्या इति । सुमङ्गली इति च० ।।६६७।।

सेवकानां सुखं करोतीति सा । कर्य्यै इति च० ।।६६८।।

शोभनवेषेणाऽऽढ्या युता । आढ्यायै इति च० ।।६६९।।

सुवासिनीरूपा । सुवासिन्यै इति च० ।।६७०।।१७७।।

(१७८)

सुवासिन्यर्चनप्रीता[६७१] ऽऽशोभना[६७२] शुद्धमानसा[६७३] ।
बिन्दुतर्प्पणसन्तुष्टा[६७४] पूर्वजा[६७५] त्रिपुराम्बिका[६७६] ।।१७८।।

सुवासिनीनां अर्च्चनेन प्रीता । प्रीतायै इति च० ।।६७१।।

आशोभना समन्तात्सौन्दर्य्यवती । आशोभनायै इति च० ।।६७२।।

शुद्धं रागादिरहितं मानसं यस्याः सा । मानसायै इति च० ।।६७३।।

बिन्दौ बिन्दुचक्रे तर्प्पणेन पूजनेन सन्तुष्टा । सन्तुष्टायै इति च० ।।६७४।।

पूर्वजा सर्वकारणरूपा । पूर्व्वजायै इति च० ।।६७५।।

त्रयाणां पुरुषाणां लोकानां अम्बिका जननी । अम्बिकायै इति च० ।।६७६।।१७८।।

(१७९)

दशमुद्रासमाराध्या[६७७] त्रिपुराश्रीवशङ्करी[६७८] ।
ज्ञानमुद्रा[६७९] ज्ञानगम्या[६८०] ज्ञानज्ञेयस्वरूपिणी[६८१] ।।१७९।।

दशभिः मुद्राभिः संक्षोभिण्यादित्रिखण्डान्ताभिः सम्यगाराध्या । आराध्यायै इति च० ॥९७७॥

तिसृभ्यः जाग्रदाद्यवस्थाभ्यः पुरा पुरातनी आत्मशक्तिः, तां श्रियं लक्ष्मीञ्च भक्तानां वशीभूतां करोतीति भोगमोक्षप्रदेति भावः । कर्य्यै इति च० ॥९७८॥

ज्ञानमेव मुद्रास्वरूपं लक्षणं यस्याः सा । मुद्रायै इति च० ॥९७९॥

ज्ञानेन गम्या प्राप्या । गम्यायै इति च० ॥९८०॥

ज्ञानमेव ज्ञेयस्वरूपं अस्याः सा । रूपिण्यै इति च० ॥९८१॥१७९॥

(१८०)

योनिमुद्रा[९८२] त्रिखण्डेशी[९८३] त्रिगुणा[९८४] ऽम्बा[९८५] त्रिकोणगा[९८६] ।
अनघा[९८७] द्भुतचारित्रा[९८८] वाच्छितार्थप्रदायिनी[९८९] ॥१८०॥

योनिमुद्रा नवममुद्रारूपा । मुद्रायै इति च० ॥९८२॥

त्रिखण्डाख्यमुद्राधिष्ठात्री । ईश्यै इति च० ॥९८३॥

त्रयो गुणाः यस्याः सा । त्रिगुणायै इति च० ॥९८४॥

अम्बा सर्वमाता । अम्बायै इति चतुर्थ्यन्तम् ॥९८५॥

त्रिकोणचक्रं गच्छतीति सा । त्रिकोणगायै इति चतुर्थ्यन्तम् ॥९८६॥

अघं पापं, तन्नाऽस्ति यस्यां सा । अनघायै इति च० ॥९८७॥

अद्भुतानि चारित्राणि यस्याः सा । चारित्रायै इति च० ॥९८८॥

भक्तेभ्यः वाञ्छितार्थान् प्रददातीति सा । प्रदायिन्यै इति च० ॥९८९॥१८०॥

(१८१)

अभ्यासातिशयज्ञाता[९९०] षडध्वातीतरूपिणी[९९१] ।
अव्याजकरुणामूर्ति[९९२] रज्ञानध्वान्तदीपिका[९९३] ॥१८१॥

अभ्यासः स्वरूपानुसन्धानं, तस्यातिशयः स्थिरीभावः, तेन ज्ञातायै इति च० ॥९९०॥

वर्णपदमन्त्रकलातत्त्वभुवनाख्याः षडध्वानः, तेभ्यः अतिक्रान्तं रूपमस्याः । रूपिण्यै इति च० ॥९९१॥

अव्याजकरुणा नैसर्गिकी दया, सैव मूर्त्तिर्यस्याः सा । मूर्त्यै इति च० ।।९९२।।

अज्ञानान्धकारस्य दीपिकेव नाशिका । दीपिकायै इति च० ।।९९३।।१८१।।

(१८२)

आबालगोपविदिता[९९४] सर्व्वानुल्लङ्घ्यशासना[९९५] ।।

श्रीचक्रराजनिलया[९९६] श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी[९९७] ।।१८२।।

बालगोपपर्य्यन्तैः सर्वैर्ज्ञाता । विदितायै इति च० ।।९९४।।

सर्व्वैर्ब्रह्मादिभिरप्यनुल्लङ्घ्यं शासनं आज्ञा यस्याः सा । शासनायै इति च० ।।९९५।।

श्रीचक्रराजः निलयो गृहं यस्याः सा । निलयायै इति च० ।।९९६।।

श्रीमती त्रिपुरेशी जाग्रदादिषु सुन्दरी सर्वस्पृहणीया । सुन्दर्य्यै इति च० ।।९९७।।१८२।।

श्रीशिवा[९९८] शिवशक्त्यैक्यरूपिणी[९९९] ललिताम्बिका[१०००] ।

इति श्रीवाग्देवीविरचितं
श्रीललितायाः
सहस्रनामस्तोत्रम्
समाप्तम् ।।

श्रीशिवः परशिवः, तद्रूपा । शिवायै इति च० ।।९९८।।

शिवशक्त्योरैक्यं सामरस्यं, तदेव वास्तवं रूपं अस्याः । रूपिण्यै इति च० ।।९९९।।

ललते अविशेषात् सदा सर्वत्र शोभतेऽसौ ललिता, सा चाऽसौ अम्बिका चेति । ललिताम्बिकायै नमः इति चतुर्थ्यन्तम् ।।१०००।।

ललितासहस्रनामसु वाग्देवीविरचितेषु नामैकम्
व्याख्यातुं कः प्रभवति ललितादेवीकटाक्षमृते ।।१।।
सन्ति हि सहस्रनामस्तात्राण्यन्यानि तानि विविधानि ।
व्याख्यातानि तथान्यैरेतन्नाम्नः कलासमानि किम् ।।२।।

बहुजन्मसुकृतसेवनसम्प्राप्तश्रीशिवाकटाक्षकणैः ।
भास्कररायैर्भाषितमेतद्भाष्यम्महार्थसिद्धान्तम् ॥३॥
पदवाक्यमानकापिलपातञ्जलशैवतन्त्रनिगमानाम् ।
सौभाग्यभास्कराख्यं सिद्धान्तानामतिप्रकाशकरम् ॥४॥
श्रीसाधकेन्द्रमुख्यास्तद्भाष्याब्धिं विशुद्धया बुद्ध्या ।
निर्म्मथ्य नोतनामार्थामृततृप्ताः स्वतन्त्रविश्रान्ताः ॥५॥
तद्भास्करवाक्यार्थप्रोढमयूखच्छटासु गतिहीनाः ।
ये बाला मन्दधियस्तेषां नामार्थपरिचयायैषः ॥६॥
श्रीभाष्यकथितनामार्थानां संक्षेपसङ्ग्रहो ग्रन्थः ।
सर्वजनसेवनीयो भास्करबालातपाभिधः सुगमः ॥७॥
नागरवंशाब्धिमणिश्रीशिवनाथात्मजेन तेन मया ।
शम्भूनाथाख्येन श्रीदेवीचरणकमलदासेन ॥८॥
श्रीमाधवपदपङ्कजमधुमधुपायितनिजान्तरङ्गानाम् ।
अमृताख्यानां श्रीगुरुनाथानामाज्ञया कृपाकृतया ॥९॥
आरचितः श्रीललिताचरणद्वन्द्वे समर्प्पितः सोऽयम् ।
तेन श्रीगुरुरूपा प्रीणातु श्रीपराम्बिका सततम् ॥१०॥
मम बुद्धेरतिमान्द्यान्नामार्थस्याऽतीवगाम्भीर्यात् ।
स्यादत्र वचनदोषः क्षन्तव्यो मयि कृपाकरैर्विबुधैः ॥११॥

इति श्रीसौभाग्यभास्करभाष्यसारोद्धारे नागरवंश्यश्रीशिवनाथजशम्भूनाथविरचिते
श्रीबालातपाख्यं भाष्यं सम्पूर्णम् ॥

धृत्यतिधृतिमितवर्षे१९१८ शुचिमासे शुचितिथौ च ।
भौमे कृष्णो व्यलिखद् भाष्यम्बालातपाख्यमिदम् ॥१॥

गजग्लौनन्देन्दुप्रमितशरदि प्रावृषि ऋतौ.
शुभे मास्याषाढे धवलदलजायाम्प्रतिपदि ।
तिथौ भौमे कृष्णोऽलिखदमलबालातपमिदं.
सुभाष्यं श्रीश्रीमज्जयपुरपतेः प्रीतिजनकम् ॥२॥

॥ ॐ नमश्श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्य्यै ॥

फलश्रुतिः

इत्येतन्नामसाहस्रं कथितन्ते घटोद्भव ।
रहस्यानां रहस्यञ्च ललिताप्रीतिदायकम् ॥१॥
अनेन सदृशं स्तोत्रन्न भूतन्न भविष्यति ।
सर्वरोगप्रशमनं सर्वसम्पत्प्रवर्द्धनम् ॥२॥
सर्वापमृत्युशमनङ्कालमृत्युनिवारणम् ।
सर्वज्वरार्तिशमनन्दीर्घायुष्यप्रदायकम् ॥३॥
पुत्रप्रदमपुत्राणाम्पुरुषार्थप्रदायकम् ।
इदं विशेषाच्छ्रीदेव्याः स्तोत्रम्प्रीतिविधायकम् ॥४॥
जपेन्नित्यम्प्रयत्नेन ललितोपास्तितत्परः ।
प्रातः स्नात्वा विधानेन सन्ध्याकर्म समाप्य च ॥५॥
पूजागृहन्ततो गत्वा चक्रराजं समर्चयेत् ।
विद्यां जपेत्सहस्रं वा त्रिशतं शतमेव वा ॥६॥
रहस्यनामसाहस्रमिदम्पश्चात्पठेन्नरः ।
जन्ममध्ये सकृच्चापि य एतत्पठते सुधीः ॥७॥
तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये शृणु त्वं कुम्भसम्भव ।
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु यः स्नायात्कोटिजन्मसु ॥८॥
कोटिलिङ्गप्रतिष्ठान्तु यः कुर्यादविमुक्तके ।
कुरुक्षेत्रे तु यो दद्यात्कोटिवारं रविग्रहे ॥९॥
कोटिं सौवर्णभाराणां श्रोत्रियेषु द्विजन्मसु ।
यः कोटिं हयमेधानामाहरेद्गाङ्गरोधसि ॥१०॥
आचरेत्कूपकोटीर्यो निर्जले मरुभूतले ।
दुर्भिक्षे यः प्रतिदिनं कोटिब्राह्मणभोजनम् ॥११॥
श्रद्धया परया कुर्यात्सहस्रपरिवत्सरान् ।
तत्पुण्यकोटिगुणितं लभेत्पुण्यमनुत्तमम् ॥१२॥
रहस्यनामसाहस्रे नाम्नोऽप्येकस्य कीर्तनात् ।
रहस्यनामसाहस्रे नामैकमपि यः पठेत् ॥१३॥

तस्य पापानि नश्यन्ति महान्त्यपि न संशयः ।
नित्यकर्माननुष्ठानान्निषिद्धीकरणादपि ॥१४॥
यत्पापञ्जायते पुंसां तत्सर्वन्नश्यति द्रुतम् ।
बहुनाऽत्र किमुक्तेन शृणु त्वं कलशीसुत ॥१५॥
अत्रैकनाम्नो या शक्तिः पातकानां निवर्तने ।
तन्निवर्त्यमघं कर्तुं नालं लोकाश्चतुर्दश ॥१६॥
यस्त्यक्त्वा नामसाहस्रं पापहानिमभीप्सति ।
स हि शीतनिवृत्यर्थं हिमशैलं निषेवते ॥१७॥
भक्तो यः कीर्तयेन्नित्यमिदं नामसहस्रकम् ।
तस्मै श्रीललितादेवी प्रीताऽभीष्टम्प्रयच्छति ॥१८॥
अकीर्तयन्निदं स्तोत्रं कथं भक्तो भविष्यति ।
नित्यं संकीर्तनाशक्तः कीर्तयेत्पुण्यवासरे ॥१९॥
संक्रान्तौ विषुवे चैव स्वजन्मत्रितयेऽयने ।
नवम्यां वा चतुर्दश्यां सितायां शुक्रवासरे ॥२०॥
कीर्तयेन्नामसाहस्रं पौर्णमास्यां विशेषतः ।
पौर्णमास्यां चन्द्रबिम्बे ध्यात्वा श्रीललिताम्बिकाम् ॥२१॥
पञ्चोपचारैः सम्पूज्य पठेन्नामसहस्रकम् ।
सर्वे रोगाः प्रणश्यन्ति दीर्घमायुश्च विन्दति ॥२२॥
अयमायुष्करो नाम प्रयोगः कल्पनोदितः ।
ज्वरार्तं शिरसि स्पृष्ट्वा पठेन्नामसहस्रकम् ॥२३॥
तत्क्षणात्प्रशमं याति शिरस्तोदो ज्वरोऽपि च ।
सर्वव्याधिनिवृत्यर्थं स्पृष्ट्वा भस्म जपेदिदम् ॥२४॥
तद्भस्मधारणादेव नश्यन्ति व्याधयः क्षणात् ।
जलं सम्मन्त्र्य कुम्भस्थं नामसाहस्रतो मुने ॥२५॥
अभिषिञ्चेद् ग्रहग्रस्तान् ग्रहा नश्यन्ति तत्क्षणात् ।
सुधासागरमध्यस्थां ध्यात्वा श्रीललिताम्बिकाम् ॥२६॥
यः पठेन्नामसाहस्रं विषं तस्य विनश्यति ।
वन्ध्यानां पुत्रलाभाय नामसाहस्रमन्त्रितम् ॥२७॥

नवनीतम्प्रदद्यात्तु पुत्रलाभो भवेद् ध्रुवम् ।
देव्याः पाशेन सम्बद्धामाकृष्टामङ्कुशेन च ॥२८॥
ध्यात्वाऽभीष्टां स्त्रियं रात्रौ जपेन्नामसहस्रकम् ।
आयाति स्वसमीपं सा यद्यप्यन्तःपुरं गता ॥२९॥
राजाकर्षणकामश्चेद्राजावसथदिङ्मुखः ।
त्रिरात्रं यः पठेदेतच्छ्रीदेवीध्यानतत्परः ॥३०॥
स राजा पारवश्येन तुरङ्गं वा मतङ्गजम् ।
आरुह्य याति निकटं दासवत्प्रणिपत्य च ॥३१॥
तस्मै राज्यञ्च कोशञ्च दद्यादेव वशं गतः ।
रहस्यनामसाहस्रं यः कीर्तयति नित्यशः ॥३२॥
तन्मुखालोकमात्रेण मुह्येल्लोकत्रयं मुने ।
यस्त्विदं नामसाहस्रं सकृत्पठति भक्तिमान् ॥३३॥
तस्य ये शत्रवस्तेषां निहन्ता शरभेश्वरः ।
यो वाऽभिचारं कुरुते नामसाहस्रपाठके ॥३४॥
निवर्त्य तत्क्रियां हन्यात्तं वै प्रत्यङ्गिरा स्वयम् ।
ये क्रूरदृष्टया वीक्षन्ते नामसाहस्रपाठकम् ॥३५॥
तानन्धान्कुरुते क्षिप्रं स्वयम्मार्तण्डभैरवः ।
धनं यो हरते चोरैर्नामसाहस्रजापिनः ॥३६॥
यत्र कुत्र स्थितं वाऽपि क्षेत्रपालो निहन्ति तम् ।
विद्यासु कुरुते वादं यो विद्वान्नामजापिनः ॥३७॥
तस्य वाक्स्तम्भनं सद्यः करोति नकुलेश्वरी ।
यो राजा कुरुते वैरं नामसाहस्रजापिना ॥३८॥
चतुरङ्गबलन्तस्य दण्डिनी संहरेत्स्वयम् ।
यः पठेन्नामसाहस्रं षण्मासं भक्तिसंयुतः ॥३९॥
लक्ष्मीश्चाञ्चल्यरहिता सदा तिष्ठति तद्गृहे ।
मासमेकं प्रतिदिन त्रिवारं यः पठेन्नरः ॥४०॥
भारती तस्य जिह्वाग्रे रङ्गे नृत्यति नित्यशः ।
यस्त्वेकवारं पठति पक्षमेकमतन्द्रितः ॥४१॥

मुह्यन्ति कामवशगा मृगाक्ष्यस्तस्य वीक्षणात् ।
यः पठेन्नामसाहस्रं जन्ममध्ये सकृन्नरः ॥४२॥
तद्दृष्टिगोचराः सर्वे मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः ।
यो वेत्ति नामसाहस्रं तस्मै देयं द्विजन्मने ॥४३॥
अन्नं वस्त्रं धनं धान्यं नान्येभ्यस्तु कदाचन ।
श्रीमन्त्रराजं यो वेत्ति श्रीचक्रं यः समर्चति ॥४४॥
यः कीर्तयति नामानि तं सत्पात्रं विदुर्बुधाः ।
तस्मै देयम्प्रयत्नेन श्रीदेवीप्रीतिमिच्छता ॥४५॥
न कीर्त्तयति नामानि मन्त्रराजन्न वेत्ति यः ।
पशुतुल्यः स विज्ञेयस्तस्मै दत्तं निरर्थकम् ॥४६॥
परीक्ष्य विद्याविषये तेभ्यो दद्याद्विचक्षणः ।
श्रीमन्त्रराजसदृशो यथा मन्त्रो न विद्यते ॥४७॥
देवता ललितातुल्या यथा नास्ति घटोद्भव ।
रहस्यनामसाहस्रतुल्या नाऽस्ति तथा स्तुतिः ॥४८॥
लिखित्वा पुस्तके यस्तु नामसाहस्रमुत्तमम् ।
समर्चयेत्सदा भक्त्या तस्य तुष्यति सुन्दरी ॥४९॥
बहुनाऽत्र किमुक्तेन शृणु त्वं कुम्भसंभव ।
नाऽनेन सदृशं स्तोत्रं सर्वतन्त्रेषु विद्यते ॥५०॥
तस्मादुपासको नित्यं कीर्तयेदिदमादरात् ।
एभिर्नामसहस्रैस्तु श्रीचक्रं योऽर्चयेत् सकृत् ॥५१॥
पद्मैर्वा तुलसीपुष्पैः कल्हारैर्वा कदम्बकैः ।
चम्पकैर्जातिकुसमैर्मल्लिकाकरवीरकैः ॥५२॥
उत्पलैर्बिल्वपत्रैर्वा कुन्दकेसरपाटलैः ।
अन्यैः सुगन्धिकुसुमैः केतकी माधवीमुखैः ॥५३॥
तस्य पुण्यफलं वक्तुन्न शक्नोति महेश्वरः ।
सा वेत्ति ललितादेवी स्वचक्रार्चनजम्फलम् ॥५४॥
अन्ये कथं विजानीयुर्ब्रह्माद्याः स्वल्पमेधसः ।
प्रतिमासम्पौर्णमास्यामेभिर्नामसहस्रकैः ॥५५॥

रात्रौ यश्चक्रराजस्थामर्चयेत्परदेवताम् ।
स एव ललितारूपस्तद्रूपा ललिता स्वयम् ॥५६॥
न तयोर्विद्यते भेदो भेदकृत्पापकृद्भवेत् ।
महानवम्यां यो भक्तः श्रीदेवीं चक्रमध्यगाम् ॥५७॥
अर्चयेन्नामसाहस्रैस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता ।
यस्तु नामसहस्रेण शुक्रवारे समर्चयेत् ॥५८॥
चक्रराजे महादेवीं तस्य पुण्यफलं शृणु ।
सर्वान्कामानवाप्येह सर्वसौभाग्यसंयुतः ॥५९॥
पुत्रपौत्रादिसंयुक्तो भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान् ।
अन्ते श्रीललितादेव्याः सायुज्यमतिदुर्लभम् ॥६०॥
प्रार्थनीयं शिवाद्यैश्च प्राप्नोत्येव न संशयः ।
यः सहस्रं ब्राह्मणानामेभिर्नामसहस्रकैः ॥६१॥
समर्च्य भोजयेद्भक्त्या पायसापूपषड्रसैः ।
तस्मै प्रीणाति ललिता स्वसाम्राज्यम्प्रयच्छति ॥६२॥
न तस्य दुर्लभं वस्तु त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
निष्कामः कीर्तयेद्यस्तु नामसाहस्रमुत्तमम् ॥६३॥
ब्रह्मज्ञानमवाप्नोति येन मुच्येत बन्धनात् ।
धनार्थी धनमाप्नोति यशोऽर्थी प्राप्नुयाद्यशः ॥६४॥
विद्यार्थी चाऽप्नुयाद्विद्यां नामसाहस्रकीर्त्तनात् ।
नाऽनेन सदृशं स्तोत्रं भोगमोक्षप्रदम्मुने ॥६५॥
कीर्त्तनीयमिदं तस्माद्भोगमोक्षार्थिभिर्नरैः ।
चतुराश्रमनिष्ठैश्च कीर्त्तनोयमिदं सदा ॥६६॥
स्वधर्मसमनुष्ठानवैकल्यपरिपूर्तये ।
कलौ पापैकबहुले धर्मानुष्ठानवर्जिते ॥६७॥
नामानुकीर्त्तनम्मुक्त्वा नृणां नान्यत्परायणम् ।
लौकिकाद्वचनान्मुख्यं विष्णुनामानुकीर्तनम् ॥६८॥
विष्णुनामसहस्राच्च शिवनामैकमुत्तमम् ।
शिवनामसहस्राच्च देव्या नामैकमुत्तमम् ॥६९॥

देवीनामसहस्राणि कोटिशः सन्ति कुम्भज ।
तेषु मुख्यं दशविधं नामसाहस्रमुच्यते ॥७०॥
रहस्यनामसाहस्रमिदं शस्तं दशस्वपि ।
तस्मात्संकीर्त्तयेन्नित्यं कलिदोषनिवृत्तये ॥७१॥
मुख्यं श्रीमातृनामेति न जानन्ति विमोहिताः ।
विष्णुनामपराः केचिच्छिवनामपराः परे ॥७२॥
न कश्चिदपि लोकेषु ललितानामतत्परः ।
येनाऽन्यदेवतानाम कीर्तितं जन्मकोटिषु ॥७३॥
तस्यैव भवति श्रद्धा श्रीदेवीनामकीर्तने ।
चरमे जन्मनि यथा श्रीविद्योपासको भवेत् ॥७४॥
नामसाहस्रपाठश्च तथा चरमजन्मनि ।
यथैव विरला लोके श्रीविद्याचारवेदिनः ॥७५॥
तथैव विरलो गुह्यनामसाहस्रपाठकः ।
मन्त्रराजजपश्चैव चक्रराजार्चनन्तथा ॥७६॥
रहस्यनामपाठश्च नाऽल्पस्य तपसः फलम् ।
अपठन्नामसाहस्रम्प्रीणयेद्यो महेश्वरीम् ॥७७॥
स चक्षुषा विना रूपम्म पश्येदेव विमूढधीः ।
रहस्यनामसाहस्रं त्यक्त्वा यः सिद्धिकामुकः ॥७८॥
स भोजनं विना नूनं क्षुन्निवृत्तिमभीप्सति ।
यो भक्तो ललितादेव्याः स नित्यं कीर्तयेदिदम् ॥७९॥
नाऽन्यथा प्रीयते देवी कल्पकोटिशतैरपि ।
तस्माद्रहस्यनामानि श्रीमातुः प्रयतः पठेत् ॥८०॥
इति ते कथितं स्तोत्रं रहस्यं कुम्भसंभव ।
माऽविद्यावेदिने ब्रूयान्नाऽभक्ताय कदाचन ॥८१॥
यथैव गोप्या श्रीविद्या तथा गोप्यमिदम्मुने ।
पशुतुल्येषु न ब्रूयाज्जनेषु स्तोत्रमुत्तमम् ॥८२॥
या ददाति विमूढात्मा श्रीविद्यारहिताय तु ।
तस्मै कुप्यन्ति योगिन्यः सोऽनर्थः सुमहान् स्मृतः ॥८३॥

रहस्यनामसाहस्रन्तस्मात् सङ्गोपयेदिदम् ।
स्वतन्त्रेण मया नोक्तन्तवाऽपि कलशीभव ।।८४।।
ललिताप्रेरणादेव मयोक्तं स्तोत्रमुत्तमम् ।
कीर्त्तनीयमिदम्भक्त्या कुम्भयोने निरन्तरम् ।।८५।।
तेन तुष्टा महादेवी तवाऽभीष्टम्प्रदास्यति ।

श्रीसूत उवाच—

इत्युक्त्वा श्रीहयग्रीवो ध्यात्वा श्रीललिताम्बिकाम् ।।८६।।
आनन्दमग्नहृदयः सद्यः पुलकितोऽभवत् ।

।। श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

ॐ श्रीगणेशाय नमः

अथ - श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रम्

श्रीमाता श्रीमहाराज्ञी श्रीमत्सिंहासनेश्वरी।
चिदग्निकुण्डसम्भूता देवकार्यसमुद्यता॥ १॥

हिन्दी -

भारती एवं गौरी की माता, श्रीयुत महारानी, सम्पूर्ण सृष्टि-साम्राज्य की शोभा से युक्त सिंहासन की अधिष्ठात्री, चिद्रूप अग्नि के कुण्ड से प्रादुर्भूत हुई तथा भण्डासुरादि के वधरूपी कार्य हेतु समुद्यत होने के कारण देवताओं के कार्य के लिए प्रकट हुई श्रीललिता देवी को नमस्कार है॥१॥

विमर्श -

श्लोक में श्री शब्द भारती एवं गौरी के अर्थ को भी बता रहा है। अत एव श्रीमाता शब्द से परब्रह्म की शक्ति का बोध होता है। भारती आदि रानियाँ हैं। उनकी माता होने के कारण ही इन्हें श्री महारानी पद से सम्बोधित किया गया है। राजा से सुशोभित आसन सिंह के समान श्रेष्ठ होने के कारण सिंहासन कहलाता है। श्री का अर्थ है समस्त सृष्टि की शोभा, अत एव "श्रीमत्-सिंहासनेश्वरी" का अर्थ हुआ "सम्पूर्ण सृष्टि जगत् की शोभा से युक्त सिंहासन की स्वामिनी"। चिदग्निकुण्डसम्भूता का अर्थ है - चिद्रूप जो अग्नि, उस अग्नि के कुण्ड से निकली हुई, यह पद श्रीललिता का ही विशेषण है। भण्डासुर आदि असुरों के उत्पात से त्रस्त देवताओं को भयमुक्त करने हेतु ही उन असुरों का वध श्रीललिता जी ने किया था। अतएव उनको देव कार्यों के लिए प्रादुर्भूत माना गया है॥ १॥

उद्यद्भानुसहस्राभा चतुर्ब्बाहुसमन्विता।
रागस्वरूपपाशाढ्या क्रोधाकाराङ्कुशोज्वला ॥२ ॥

हिन्दी -

उगते हुए हजारों सूर्य की रक्तिम आभा के समान आभा वाली, चार भुजाओं से युक्त, इच्छारूपधारी पाश के कारण सम्पन्न, तथा क्रोधाकृति वाले अंकुश से शोभायमान भगवती त्रिपुरसुन्दरी = ललिता को नमस्कार है।

विमर्श -

उदय कालीन सूर्य रक्त आभा वाला होता है। भगवती त्रिपुरसुन्दरी को उगते हुए हजारों सूर्यों की आभा के समान आभावाली बताया गया है। चार भुजाओं के होने पर भी वे अत्यन्त सुन्दर हैं क्योंकि वे भुजाएँ समन्वित = अत्यन्त सुन्दरता से जुड़ी हुई हैं। उनका पाश इच्छा रूपधारी है, (वाम भाग में नीचे के हाथ में पाश है) अत एव ऐसे पाश से युक्त होने के कारण ललिता जी धनी हैं, अपने भक्तों को अभिलषित देने में समर्थ हैं। उनके अंकुश का स्वरूप ही क्रोध है, दुष्टों के लिए वही पर्याप्त है, वह अंकुश भी उज्ज्वल वर्ण का है जिससे भगवती की उज्ज्वलता और अधिक भासित होती है। (दक्षिण भाग का नीचे वाला हाथ अंकुश युक्त है)

मनोरूपेक्षुकोदण्डा पञ्चतन्मात्रसायका।
निजारुणप्रभापूरमज्जद्ब्रह्माण्डमण्डला ॥३ ॥

हिन्दी -

गन्ने के दण्ड से बना उनका धनुष मनोरूप ही है। शब्द, रूप, रस, गन्ध एवं स्पर्श ये पाँच तन्मात्रायें उनके बाण हैं तथा भगवती त्रिपुरसुन्दरी के स्वकीय अरुण कान्ति के प्रवाह में समग्र ब्रह्माण्ड मण्डल लीन हैं।

विमर्श -

पूर्व श्लोक में श्रीललिता जी के दो हाथों में पाश एवं अंकुश धारण करने की बात की गई है। इस श्लोक में कहा गया है कि संकल्प एवं विकल्प क्रिया वाला मन ही रूप है जिसका उस इक्षुरूप धनुष को वाम भाग के ऊर्ध्व कर में श्रीललिता जी ने धारण कर रखा है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, एवं शब्द रूप पञ्च तन्मात्राएँ ही उनके बाण हैं। ये तन्मात्राएँ पञ्चभूत की मूल हैं। पञ्चतन्मात्रारूप बाण भगवती के दायें भाग के ऊपर के हाथ में है। वामकेश्वर-तन्त्र में कहा भी गया है कि "शब्दस्पर्शादयो बाणा

मनस्तस्याभवद्धनुरिति"। श्रीललिता जी के अरुणकान्ति-प्रवाह में ब्रह्माण्ड के समस्त मण्डल अभिन्न रूप से भासित हो रहे हैं। अतएव उनकी रक्तिम कान्ति में ब्रह्माण्ड मण्डल को लीन माना गया है। (प्रातःकालीन सौभाग्यादि विशेष न्यासों में जैसा ध्यान किया गया है, इसमें ललिता जी का वैसा ही रूप वर्णित है) ॥ ३ ॥

चम्पकाशोकपुन्नागसौगन्धिकलसत्कचा।
कुरुविन्दमणिश्रेणी कनत्कोटीरमण्डिता॥ ४॥

हिन्दी -

चम्पक, अशोक, पुन्नाग, कह्लार आदि पुष्पों से शोभायमान केशों वाली तथा पद्मराग नामक रक्त मणियों की पंक्ति से शोभायमान जो मुकुट, उससे अलंकृत भगवती ललिता को नमस्कार है ॥ ४ ॥

विमर्श -

अग्नि कुण्ड से समुद्भूत श्रीललिता जी का शिर प्रथमतः दृष्ट हुआ, अतएव शिर से चरणकमल तक का वर्णन प्रारम्भ करते हुए कहा है कि यद्यपि उनके केश फूलों से सुशोभित हैं परन्तु वे भी उनके केश से ही सुगन्धि ग्रहण कर रहे हैं। (चम्पक आदि पद वृक्ष के वाचक हैं, किन्तु यहाँ निरुढा लक्षणा द्वारा चम्पक आदि के पुष्पों के वाचक हैं।) कुरुविन्द=पद्मराग मणि, काम = इच्छा, अनुराग आदि अनेकों गुणों वाले रत्न विशेष हैं। उनको धारण करने वाली भगवती ललिता अपने भक्तों की इच्छादि को अवश्य ही पूर्ण करती हैं, ऐसा ध्वनित होता है ॥ ४ ॥

अष्टमीचन्द्रविभ्राजदलिकस्थलशोभिता।
मुखचन्द्रकलङ्काभमृगनाभिविशेषका॥ ५॥

हिन्दी -

अष्टमी तिथि के अर्धवृत्ताकार चन्द्रमा के रूप के समान सुशोभित हो रहे ललाट प्रदेश से शोभित तथा मुखचन्द्र के कलंक के समान कस्तूरी के तिलक से युक्त भगवती श्रीललिता को नमस्कार है।

विमर्श -

चन्द्र की अष्टमी कला जिस दिन बढ़ती है या घटती है उसे अष्टमी कहते हैं। भगवती के ललाट को आठ कलाओं से युक्त चन्द्र (समचन्द्रार्ध) के समान सुशोभित बताया है। दूसरी पंक्ति में उनके मुख को ही रूपकालंकार

द्वारा चन्द्र बताया है। मुखचन्द्र का कलङ्क मृगनाभि = कस्तूरी, से रचित तिलक (विशेषक) है। जैसे चन्द्र का कलङ्क मृग है वैसे ही श्रीललिता जी के अतिसुन्दर मुख पर कलङ्क सदृश तिलक शोभावर्धक है॥ ५ ॥

वदनस्मरमाङ्गल्यगृहतोरणचिल्लिका।
वक्त्रलक्ष्मीपरीवाहचलन्मीनाभलोचना॥ ६ ॥

हिन्दी -

श्रीललिता जी का मुख ही कामदेव का मङ्गलगृह है, उस गृह का बाह्य द्वार उनकी दोनों भौंहें हैं। उनके मुख के कान्ति-रूप प्रवाह में तैरती हुई दो मछलियों के समान दोनों नेत्र हैं, ऐसी स्वरूप वाली श्री ललिता को प्रणाम है॥ ६ ॥

विमर्श -

भगवती के वदन = मुख, को कामदेव का मङ्गल-गृह माना गया है, तथा उसका बाहरी द्वार दोनों भ्रूलताओं को माना है। चिल्लिका का प्रयोग भ्रूलता के लिए 'नामकल्पद्रुम' में आया है। यहाँ परम्परित रूपक-अलंकार है। द्वितीय पंक्ति में भगवती की वक्त्रकान्ति = मुखशोभा, को जल प्रवाह के समान मानकर उनके नेत्रों को उस प्रवाह में तैरती हुई दो मछलियों के समान माना गया है। अर्थात् उनकी मीन जैसी दृष्टिं मानी गई है। मछलियों के देखने मात्र से उनके शिशुओं की वृद्धि होती है, उसी प्रकार श्रीललिता जी की दृष्टि मात्र से भक्तों की पुष्टि-समृद्धि होती है॥ ६ ॥

नवचम्पकपुष्पाभनासादण्डविराजिता।
ताराकान्तितिरस्कारिनासाभरणभासुरा॥ ७ ॥

हिन्दी -

अर्ध विकसित चम्पक पुष्प की आभा के समान नासिका-दण्ड से सुशोभित तथा तारा देवी की कान्ति को जीतने वाली नासिका के माणिक्य मौक्तिक की आभा से युक्त श्रीललिता जी को (प्रणाम) नमस्कार है।

विमर्श -

इस पद्य में भगवती की नासिका का वर्णन है। नव-चम्पक का अर्थ है ईषद् विकसित चम्पक का पुष्प, कली नहीं पूर्ण विकसित नहीं। जिस प्रकार थोड़ा विकसित चम्पक पुष्प का स्वरूप होता है वैसा ही नासिका दण्ड है श्रीललिता जी का। नासिका के मणि-मोतियों के आभरण की शोभा तारा = मंगला की, अथवा तारका देवी की कान्ति को भी तिरस्कृत कर रही है।

कदम्बमञ्जरीक्लृप्तकर्णापूरमनोहरा ।
ताटङ्कयुगलीभूततपनोडुपमण्डला ॥ ८ ॥

हिन्दी -

कदम्बपुष्प की मञ्जरी से रचित कर्णापूर (कर्ण के ऊपर भाग में रखे जा रहे शेखर) से मनोहर तथा सूर्य और चन्द्रमा (तपनोडुप) के मण्डल ही से रचित दोनों कानों के आभरण से सुशोभित श्री ललिता जी को नमस्कार है ।

विमर्श -

प्रस्तुत पद्य में श्रीललिता जी के कानों की शोभा का वर्णन है । उनके कर्णों के ऊपरी भाग कदम्ब-मञ्जरी द्वारा रचित कर्णाभूषण से मन को हरते हैं तथा सूर्य एवं चन्द्रमा के मण्डल को ही उनके दोनों कानों के आभरणद्वय (ताटङ्कयुगलीभूत) के रूप में प्रस्तुत किया है । सोने चाँदी के कर्णाभूषण का स्थान इस पद्य में सूर्य मण्डल को (सोना के लिए) तथा चन्द्रमण्डल को (चाँदी के लिए) दिया गया है । कहा भी गया है कि "सूर्यचन्द्रौ स्तनौ देव्यास्तावेव नयने स्मृतौ । उभौ ताटङ्कयुगलमित्येषा वैदिकीश्रुतिः" ।

पद्मरागशिलादर्शपरिभाविकपोलभूः ।
नवविद्रुमबिम्बश्रीन्यक्कारिदशनच्छदा ॥ ९ ॥

हिन्दी -

पद्मरागमणि रूप (आदर्श) दर्पण को भी तिरस्कृत करने वाले कपोल प्रदेश की शोभा से युक्त तथा नव नव विद्रुम (प्रवाल) तथा बिम्बफल की शोभा को भी तिरस्कृत करने वाले ओष्ठों की शोभावाली भगवती ललिता को नमस्कार है ।

विमर्श -

प्रस्तुत पद्य में श्रीललिताम्बा के कपोल प्रदेश एवं ओष्ठों का वर्णन किया गया है । उनके कपोलप्रदेश का लालित्य पद्मराग-मणिरूप दर्पण को भी तिरस्कृत कर रहा है । वस्तुतः श्री ललिता का कपोल प्रदेश कामेश्वर के प्रतिबिम्ब का व्यञ्जक होने तथा रक्तवर्ण का होने से पद्मराग मणि के आदर्श से श्रेष्ठ माना गया है । उनके होठों की छटा अपनी लालिमा के कारण नव पल्लव के लालित्य की शोभा को तथा बिम्ब फल की शोभा को भी तिरस्कृत करते हैं ।

शुद्धविद्यांकुराकारद्विजपंक्तिद्वयोज्ज्वला।
कर्पूरवीटिकामोदसमाकर्षिदिगन्तरा॥ १०॥

हिन्दी -

दोषरहित शुद्ध मोक्ष के साधनभूत वेदादि विद्याओं के अंकुर के समान आकार वाले दाँतों की दो पंक्तियों से उज्ज्वल तथा कर्पूर-युक्त ताम्बूल की सुगन्धि से अपनी ओर दिशाओं की देवताओं को आकर्षित करने वाली श्रीललिता जी को नमस्कार है।

विमर्श -

ललिताम्बा के मूलाधार में परारूपेण स्थिता विद्या जो शब्द ब्रह्म के नाम से भी जानी जाती है, शुद्ध विद्या कहलाती है। वही परा पश्यन्ती वैखरी आदि क्रम से मुख से निकलती हुई षोडशी-विद्या कहलाती है। अंकुर पद से परा विद्या गृहीत होती है। मानो ललिताम्बा के मूर्तिमान् दाँत ही वे अंकुर हैं जिन दाँतों की दो पंक्तियों से वे शोभायमान हैं। भगवती के मुख में स्थित कर्पूर की सुगन्धि से युक्त ताम्बूल के गन्ध से दिग्देवता चारों ओर से आकृष्ट हो रही हैं। अर्थात् मानो वे ललिता देवी का परिधान बन गई हैं। (यहाँ उत्प्रेक्षा के ध्वनन से अलंकार—ध्वनि है।)

निजसंलापमाधुर्यविनिर्भर्त्सितकच्छपी।
मन्दस्मितप्रभापूरमज्जत्कामेशमानसा॥ ११॥

हिन्दी -

स्वतः सुन्दर निज ब्रह्मविषयक वर्णात्मक आलाप के माधुर्य से वीणा को तिरस्कृत करने वाली, तथा मन्द, ईषद्-हास के लावण्य-प्रवाह में डूबते हुए, कला-शरीर घटक अग्नीषोम नामक रविरूप राजराजेश्वर की कामना वाली श्री ललिता को नमस्कार है॥ ११॥

विमर्श -

श्रीललिता जी का ब्रह्मविषयक जो वर्णात्मक शब्दरूप उच्चारण है वह इतना माधुर्य लिए हुए है कि वीणा की ध्वनि भी उस माधुर्य के सामने तिरस्कृत है। कच्छपी का शब्दार्थ वीणा है। दूसरी पंक्ति में कहा गया है कि स्मित = स्वल्प हास, वह भी मन्द है, उस मन्दस्मित के प्रभापूर = लावण्यप्रवाह, में मज्जत् = डूब रहे, कामेश = राजराजेश्वर = परमशिव, की मनवाली श्री ललिता जी हैं। ध्येय है कि कला-शरीर के घटक बिन्दु का

नाम काम है, वह बिन्दु अग्नीषोम नामक रवि के नाम से "कामकलाविलास" ग्रन्थ में कहा गया है। वही अग्नीषोम नामक रवि राज-राजेश्वर है।

अनाकलितसादृश्यचिबुकश्रीविराजिता।
कामेशबद्धमाङ्गल्यसूत्रशोभितकन्धरा॥ १२॥

हिन्दी -

सदृश उपमान के अभाव में कवियों द्वारा ललिताम्बा के चिबुक (ठोडी) की शोभा का सादृश्य नहीं ढूँढा जा सका, इस प्रकार अपूर्व चिबुक की शोभा से सुशोभित तथा कामेश = परमशिव, के द्वारा बांधे गये माङ्गल्यसूत्र से (सौभाग्य के लिए आभरण से) सुशोभित ग्रीवावाली भगवती को नमस्कार है।

विमर्श -

प्रस्तुत पद्य में श्रीललिता जी के चिबुक एवं ग्रीवा का वर्णन करते हुए कहा है कि उनके चिबुक की सुन्दरता का सादृश्य किससे दिया जाय इसे कवियों ने नहीं जाना अर्थात् कोई प्रसिद्ध वस्तु इतनी सुन्दर नहीं थी जिससे ठोडी की सुन्दरता की तुलना की जाये तथा शिव द्वारा बान्धे गये मङ्गलप्रद आभूषणों से देवी का कण्ठ सुशोभित था। (यह आशय है दूसरी पंक्ति का)।

कनकाङ्गदकेयूरकमनीयभुजान्विता।
रत्नग्रैवेयचिन्ताकलोलमुक्ताफलान्विता॥ १३॥

हिन्दी -

सुवर्णशरीर के तुल्य सुवर्ण-रचित केयूरों (बाजूवन्द) से रमणीय भुजावाली, तथा रत्न-रचित चिन्ताक नामक कण्ठाभरण में नीचे (अर्ध चन्द्राकार पंक्ति मे) हिलते हुए सुवर्ण-निर्मित मोती के मनकों से युक्त हारवाली श्री ललिताम्बा को प्रणाम है। अथवा, —रत्नखचित कण्ठहार वाली तथा चिन्ताक ≐ ललाट पर लटकने वाले आभूषण से युक्त, एवं सुवर्ण रचित मुक्ताहार से अन्वित भगवती ललिताम्बा को प्रणाम है॥ १३॥

विमर्श -

प्रस्तुत पद्य में कनकाङ्गदम् पद द्वारा श्रीललिता के शरीर का घटक सुवर्ण है, अर्थात् उनका शरीर ही स्वर्णमय है। अत एव आभूषणों एवं शरीर में एकरूपता है ऐसा बताया गया है। शरीर के समान वर्ण वाले सुवर्णरचित बाजूवन्दों से उनकी भुजाएँ अलंकृत हैं। कण्ठ में रत्नखचित हार है, चिन्ताक

उसका नाम है, तथा उस हार के नीचे अर्धवृत्ताकार मोती के मनके हिलते हुए लटक रहे हैं। किम्वा चिन्ताक ललाट पर लटकने वाला आभूषण है। अथवा रत्नरचित ग्रीवाहार में चिन्ता = ध्यान, है जिनका ऐसे ऊपर–ऊपर ध्यान करने वालों से (मध्यम अधिकारी) युक्त तथा लोल = तृष्णायुक्त ध्यानकर्ताओं से (अधम अधिकारी) युक्त एवं मुक्ताः = गम्भीर ध्यान करने वाले, (उत्तम अधिकारी) से युक्त श्रीललिता जी हैं। उनके समीप सभी प्रकार के भक्तगण एकत्रित हैं। (यहाँ प्रकृताप्रकृतविषयक श्लेष है)॥ १३ ॥

कामेश्वरप्रेमरत्नमणिप्रतिपणस्तनी ।
नाभ्यालवालरोमालिलताफलकुचद्वयी ॥ १४ ॥

हिन्दी -

कामेश्वर = परमशिव, के प्रेमरूपी रत्न को खरीदने हेतु अपने स्तन रूपी मणियों को प्रतिपण = विनिमय, में समर्पित कर चुकी तथा नाभिरूपी आलवाल (पौधों को सींचने हेतु बनाया गया थाला) से युक्त रोमावली रूपी लता के फल जैसे स्तनद्वय से युक्त श्रीललिता को नमस्कार है॥ १४ ॥

विमर्श -

प्रस्तुत पद्य में ललिता के स्तन का वर्णन है। ललिता जी ने शिव के प्रेमरूपी रत्न को पाने हेतु उतने मूल्य के ही स्तनरूपी मणि को समर्पित किया है (कुचों की कमनीयता एवं कठोरता ध्वनित होती है) तथा नाभि आलवाल हैं, रोमावलि लताएँ हैं। उन लताओं के ही दोनों स्तन फल हैं ऐसी उत्प्रेक्षा है, परम्परित रूपक के साथ॥ १४ ॥

लक्ष्यरोमलताधारतासमुन्नेयमध्यमा ।
स्तनभारदलन्मध्यपट्टबन्धवलित्रया ॥ १५ ॥

हिन्दी -

ज्ञायमान = जानने योग्य, रोमलता के आधारभाव के रूप में अनुमान का विषय मध्यभाग है जिसका, उस देवी को, व स्तनों के भार से टूटते हुए से (शिथिल होते हुए) मध्य भाग को दृढ़ता प्रदान करने के लिए बनाई गई सोने की पट्टिका (पट्टी) के बन्धनसदृश त्रिवलि से युक्त श्रीललिता जी को नमस्कार है।

विमर्श -

नाभि के नीचे लक्षित रोमावलियों का आधार मध्य भाग है ऐसा अनुमान किया गया। "लक्ष्या = लक्षयितुं योग्या या रोमलता, तस्याः आधारता = आधारभावेनं स्थिता, तया आधारतया समुन्नेयम् = अनुमातुं योग्यं, मध्यमं = मध्यभागो यस्याः" यह व्युत्पत्ति है। कमर में पड़ी त्रिवलि ऐसी लग रही थी मानो स्तनभार से टूटती कमर को दृढ़ता प्रदान करने के लिए सोने की बनी पट्टिकाएँ हों॥ १५॥

अरुणारुणकौसुम्भवस्त्रभास्वत्कटीतटी।
रत्नकिंकिणिकारम्यरशनादामभूषिता॥ १६॥

हिन्दी -

अरुण के समान अरुण-वर्ण के कौसुम्भ से (केसर के रङ्ग से) रंगे वस्त्र से शोभायमान कटिभाग वाली तथा रत्नमयी किंकिणिका = विछुओं, से युक्त होने के कारण रमणीय करधनीरूप रज्जु से विभूषित श्रीललिताम्बा को नमस्कार है॥ १६॥

विमर्श -

कुसुम्भ नाम है केसर का, केसरिया रंग से रंगे अरुण के समान अरुण वर्ण के वस्त्रों से श्रीललिता जी का कटि भाग अलंकृत है तथा रत्नकिंकिणिका = मणियों की विछुओं, (छोटी घंटियाँ) के कारण रमणीय करधनी है, जो कमर में बाँधे जाने के कारण रज्जुवत् भी है, (दाम = रज्जु) उससे और अधिक शोभायमान हैं श्रीललिता जी।

कामेशज्ञातसौभाग्यमार्दवोरुद्वयान्विता।
माणिक्यमुकुटाकारजानुद्वयविराजिता॥ १७॥

हिन्दी -

कामेश (शिव) के द्वारा ही ज्ञात है सौभाग्य (लावण्य) एवं कोमलता जिनकी ऐसी लावण्यमयी तथा कोमल जङ्घाओं से युक्त, एवं माणिक्य-निर्मित मुकुट के आकार वाले दोनों घुटनों (जानु) से शोभित श्रीललिता जी को नमस्कार है॥ १७॥

विमर्श -

प्रस्तुत पद्य में देवी ललिता की जड्.घा तथा घुटनों का वर्णन है। सती स्त्री की जांघ परपुरुष द्वारा अदृश्य होती है, तब कवि बिना देखे उसकी सुन्दरता का वर्णन कैसे कर सकता है, इस आक्षेप से बचने हेतु कहा गया है कि शिव ही एक मात्र द्रष्टा हैं जिसकी जड्.घा के लावण्य एवं कोमलता का, उससे युक्त श्रीललिता हैं तथा उनके घुटने माणिक्य-निर्मित मुकुट के आकार जैसे हैं॥ १७॥

इन्द्रगोपपरिक्षिप्तस्मरतूणाभजड्.घिका।
गूढगुल्फा कूर्मपृष्ठजयिष्णुप्रपदान्विता॥ १८॥

हिन्दी -

वर्षाकाल में उत्पन्न रक्तवर्णी कीटों (इन्द्रगोप) से चारों ओर व्याप्त कामदेव (स्मर) के दो तूणीरों के सदृश आभावाली जड्.घाओं से युक्त, मांसल पांव के मणिबन्धों (गूढगुल्फा) वाली तथा कूर्म के पृष्ठ पर स्थिर होकर विजय प्राप्त करने वाले चरण के अग्र भाग से अन्वित देवी श्रीललिता को प्रणाम है॥ १८॥

विमर्श -

इन्द्रगोप नाम है वर्षा काल में उत्पन्न रक्तिम वर्ण की कृमि का। उनसे व्याप्त कामदेव के तूणीरों जैसी देवी की जड्.घिका (घुटने से नीचे एवं गुल्फ से ऊपर का भाग) है। लगता है यह वर्णन युद्धकालीन वेश का है अन्यथा इसमें सौन्दर्य का अभांव दिखता है। कूर्मपृष्ठ पर स्थित देवी के चरण के अग्रभाग को विजयशाली माना जाता है, अतः दूसरी पंक्ति में ऐसा वर्णन आया है। इससे भी सिद्ध होता है कि इस पद्य में देवी के युद्धकालीन स्वरूप का वर्णन है।

नखदीधितिसंछन्ननमज्जनतमोगुणा।
पदद्वयप्रभाजालपराकृतसरोरुहा॥ १९॥

हिन्दी -

चरण-नखों की प्रभा से, नमन करते हुए भक्तजनों के अज्ञान (तमोगुण) को भलीभाँति लुप्त करने वाली तथा दोनों चरणों की कान्ति से कमलों की शोभा को तिरस्कृत करने वाली देवी ललिताम्बा को प्रणाम है॥ १९॥

विमर्श -

प्रकाश अन्धकार को दूर करता है। देवी के चरणनखों की प्रभा से प्रणत-जनों तथा ब्रह्मा विष्णु आदि के अज्ञानान्धकार दूर होते हैं। या उनके पाद का ध्यान करने मात्र से अज्ञान का नाश होता है। उनके चरणों की कान्ति, कमलों की कान्ति को भी मलिन कर देती है। प्रस्तुत पद्य में चरण एवं चरणनखों का वर्णन है।

सिञ्जानमणिमञ्जीरमण्डितश्रीपदाम्बुजा।
मरालीमन्दगमना महालावण्यशेवधिः ॥ २० ॥

हिन्दी -

शब्द करते हुए मणिनिर्मित-मञ्जीर = पैजनियों, से भूषित तथा शोभायुक्त चरण-कमल वाली व हंसी के समान मन्द मन्द चलने वाली एवं अत्युत्कृष्ट लावण्य = सौन्दर्य, की निधि देवी ललिता को नमस्कार है ॥ २० ॥

विमर्श -

सिञ्जान का अर्थ है - "भूषण से उत्पन्न शब्द विशेष"। मञ्जीर कहते हैं पाद के आभूषणों को। श्रीपदाम्बुजा का अर्थ है श्री = शोभा से युक्त चरण-कमल वाली । शेवधि: का अर्थ है निधि ॥ २० ॥

सर्वारुणाऽनवद्याङ्गी सर्वाभरणभूषिता।
शिवकामेश्वराङ्कस्था शिवा स्वाधीनवल्लभा ॥ २१ ॥

हिन्दी -

वस्त्र, आभूषण, पुष्प व कान्ति आदि सभी वस्तुओं से सम्पूर्णत: अरुणवर्ण वाली, सुलक्षणयुक्त अनिन्द्य अंगों वाली एवं चूडामणि से लेकर पैरों की अंगुलियों की अंगूठी तक सभी प्रकार के आभरणों से अलंकृत, शिव-रूप कामेश्वर (परमशिव) के वाम अङ्क में स्थित, अत एव शिवा = शिवेच्छा-रूपा, अथवा शिवस्वरूपा, तथा अपने अधीन में पति कामेश्वर = शिव, को रखने वाली भगवती ललिताम्बा को नमस्कार है ॥ २१ ॥

विमर्श -

ललिता जी की शरीर-कान्ति से लेकर वस्त्राभूषण आदि भी अरुणवर्ण के हैं। सुन्दर लक्षणों से युक्त सुन्दर अवयवों को अनवद्याङ्ग कहते हैं, तादृश अंगों वाली देवी ललिता हैं। शिव ही कमनीय होने से काम हैं। या यथेच्छ

रूप धारण करने के कारण काम हैं। जगत् की सृष्टि करने की इच्छावाला ईश्वर भी काम ही है। अत एव शिव ही काम हैं, ईश्वर हैं यह ध्वनित हुआ। शिवा पद, 'वश कान्तौ' से बना है। कान्ति का अर्थ है इच्छा। अतएव ललिता जी परशिव की इच्छारूपा शक्ति हैं। या शोभा-गुण वाली होने से शिवा हैं। शिव शक्ति के अधीन होकर ही आत्मलाभ करते हैं, अत एव स्वाधीन-वल्लभा पद ललिता जी के लिए आया है। आचार्य शंकर ने भी कहा है कि "शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं, न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि"।

सुमेरुशृङ्गमध्यस्था श्रीमन्नगरनायिका।
चिन्तामणिगृहान्तःस्था पञ्चब्रह्मासनस्थिता॥ २२॥

हिन्दी -

सुमेरु (हिमालय) की मध्य चोटी पर विराजमान, श्री = लक्ष्मी, से परिपूर्ण नगर की रानी, अभीष्ट प्रदान करने वाले चिन्तामणि से निर्मित गृह के अन्दर रहने वाली तथा ब्रह्म विष्णु आदि पाँच ब्रह्म द्वारा निर्मित आसन पर स्थित भगवती ललिता को नमस्कार है॥ २२॥

विमर्श -

सुमेरु पर्वत पर शिवत्रिकोण के समान तीन शिखर और हैं। उन्हीं के मंध्य चौथा एक शिखर है। वह शिखर मनोहर-रत्नों की कान्तिवाला है, वहीं पर ललिता जी स्थित हैं। श्रीमत् का अर्थ है लक्ष्मीवान्, लक्ष्मीयुक्तनगर मेरुशृङ्ग के मध्य में स्थित है। या श्रीमन्नगर पद का अर्थ है श्रीचक्र, श्रीचक्र की स्वामिनी ललिता हैं।

महापद्माटवीसंस्था कदम्बवनवासिनी।
सुधासागरमध्यस्था कामाक्षी कामदायिनी॥ २३॥

हिन्दी -

बड़े-बड़े कमलों के वन में (महापद्म वन में) या ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रदलपद्म में सम्यक् विद्यमान, कदम्बवनों में निवास करने वाली, अमृतमय सागर के मध्य में स्थित, कमनीय नेत्रों वाली (कामेश्वर ही है नेत्र जिसका, यह भी अर्थ हो सकता है।) तथा कामनाओं को प्रदान करने वाली भगवती ललिता को प्रणाम है।

विमर्श -

ब्रह्माण्ड और पिण्ड (शरीर) में ऐक्य मानते हुए महापद्माटवी का अर्थ - "ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रदल-कमल" माना गया है। ललिता जी वहाँ पर निवास करती हैं। बिन्दु-स्थान को कदम्बवन माना जाता है। पिण्ड के अण्ड में बिन्दु-स्थान पर सहस्रारकर्णिका और चन्द्र के मध्य स्थित है सुधा-सागर, उसके भी मध्य में ललिता जी की स्थिति मानी गई है। साक्षि-भाव से सब कुछ जानने वाली, भक्तजनों के तत् तत्कामनाओं की पूर्ति करती हैं, अतः ब्रह्मा ने इनका नाम कामाक्षी रखा। काञ्चीपीठ की अधिष्ठात्री भी कामाक्षी हैं। कामनाओं की पूरिका होने से यह कामदायिनी हैं। या काम को खण्डित करने वाले, कामद, हुए शिव, उनके साथ शुभ कार्यों की प्रदात्री ललिता जी है।

देवर्षिगणसंघातस्तूयमानात्मवैभवा।
भण्डासुरवधोद्युक्तशक्तिसेनासमन्विता॥ २४॥

हिन्दी -

देवों ऋषियों तथा आदित्य विश्वावसु आदि गण-देवताओं के समूह से जिसके स्वरूप-वैभव की प्रशंसा की जा रही है, उस ललिताम्बा को, तथा भण्डासुर नामक असुर के वध के लिए उद्यत शक्ति की (स्त्रीदेवता) सेनाओं से सेना-समूह के व्यूह निर्माण में तत्पर भगवती को नमस्कार है॥ २४॥

विमर्श -

संघात पद के अर्थ-भेद से दो अन्य अर्थ भी हो सकते हैं। यथा - संघात का अर्थ नरक है। देवर्षि-गणों द्वारा नरक से बचने हेतु देवी के आत्मवैभव की स्तुति हो रही थी। अथवा सम्यक् घातः संघातः = भण्ड का वध, करने हेतु देवी की स्तुति की जा रही थी। देवर्षिगण पद में देव से ब्रह्मा आदि, ऋषि से वशिष्ठादि, देवर्षि से नारदादि, तथा गण शब्द से आदित्य विश्वावसु साध्य रुद्र आदि जाने जाते हैं।

सम्पत्करीसमारूढसिन्धुरव्रजसेविता।
अश्वारूढाधिष्ठिताश्वकोटिकोटिभिरावृता॥ २५॥

हिन्दी -

(देवी के अंकुश से प्रादुर्भूत) सम्पत्करी नामक देवताओं द्वारा गजशास्त्रोक्त विधान के अनुसार गजारूढ होने पर उनके समूहों से सेवित तथा (देवी के पाश से आविर्भूत) अश्वारूढा नामक देवताओं द्वारा अपने अधीन

किए गए घोड़ों की अनेक पंक्तियों से चारों ओर से घिरी हुई श्रीललिता को नमस्कार है ॥ २५ ॥

विमर्श -

सम्पत्करी नाम की कोई देवता (देवी-समूह) है जो त्रिपुरसुन्दरी के गजों पर आरूढ है, तथा ललिता जी के अंकुश से उत्पन्न हुई है, ऐसा वर्णन ललितोपाख्यान ग्रन्थ में आया है। गजों पर आरूढ सम्पत्करी-देवताओं के समूह से देवी आवृत हैं। अश्वारूढा नाम की देवता भी तन्त्रशास्त्र में प्रसिद्ध है। ब्रह्माण्ड-पुराण में कहा गया है कि - "अथ श्रीललितेशान्याः पाशायुधसमुद्भवा, अतित्वरितविक्रान्तिरश्वारूढा चलत्पुर इति"। कोटि कोटि अश्व पर आरूढ अश्वारूढा देवताओं से देवी चतुर्दिक् घिरी हुई हैं। अर्थात् वे उनकी सेना हैं ॥ २५ ॥

चक्रराजरथारूढसर्वायुधपरिष्कृता।
गेयचक्ररथारूढमन्त्रिणीपरिसेविता ॥ २६ ॥

हिन्दी -

श्रीदेवी के चक्रराज नामक रथ पर आरूढ देवता-स्वरूप आयुधों से अलंकृत तथा गेयचक्र नामक रथ पर सवार मन्त्रिणी-श्यामला देवी से चारों ओर से सेवित श्री ललिताम्बा को नमस्कार है।

विमर्श -

चक्रराज किरिचक्र एवं गेयचक्र आदि रथों के भेद रथशास्त्र में वर्णित हैं तथा ललितोपाख्यान में भी। रथ पर आरूढ देवी अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित हैं, तथा वे अस्त्र भी देवता-रूप ही हैं, यह अर्थ है प्रथम पंक्ति का। अथवा श्रीचक्र ही चक्रराज-रथ है, उस पर सभी आयुध = आत्मज्ञान के सभी साधन, विद्यमान हैं। अर्थात् देवी आत्मज्ञान के सभी साधनों से परिपूर्ण हैं। जहाँ गेयचक्र है वहाँ पूर्व में ही चक्रराज उपस्थित है। गेयचक्र पर देवी श्यामला = मन्त्रिणियाँ = विद्योपासिका योगिनियाँ साथ हैं। यह द्वितीय पंक्ति का आशय है।

किरिचक्ररथारूढदण्डनाथापुरस्कृता
ज्वालामालिनिकाक्षिप्तवह्निप्राकारमध्यगा ॥२७ ॥

हिन्दी -

किरिचक्र नामक रथ पर आरूढ वाराही (दण्ड-नाथा) देवी से सेवित तथा ज्वाला-समूहों से समन्तात् निर्मित (क्षिप्त) अग्निमय चिनगारियों के मध्य में स्थित श्री ललिताम्बा को नमस्कार है।

विमर्श -

किरिचक्र = किरि नाम है वराह का (सूअर का)। वराहाकृति या वराह द्वारा आकृष्ट रथ को किरिचक्र कहते हैं। देवी वाराही किरिचक्र पर स्थित होकर श्रीललिता की सेवा में विद्यमान है। अथवा किरि का अर्थ है किरण, वह स्थिति एवं लय का उपलक्षण है। स्थितिलय का समूह रथ (चक्र) है, उस पर आरूढ होने पर भी देवी यमराज (दण्डनाथ) के अधीन नहीं हैं, तथा सृष्टि स्थिति एवं लय की स्थिति में भी वे यातना के विषय नहीं हैं, ऐसा प्रथम पंक्ति से ध्वनित होता है।

भण्डसैन्यवधोद्युक्तशक्तिविक्रमहर्षिता।
नित्यापराक्रमाटोपनिरीक्षणसमुत्सुका ॥२८॥

हिन्दी -

भण्डासुर (भण्ड) के सैन्यों के वध में सन्नद्ध (तत्पर) शक्तियों के विक्रम से अत्यन्त हर्षित, तथा कामेश्वरी से लेकर चित्रा पर्यन्त पञ्चदशतिथि-रूप नित्या देवताओं के पराक्रम के विस्तार (आटोप) के सम्यक् निरीक्षण में अत्यन्त उत्सुक देवी ललिता को नमस्कार है॥२८॥

विमर्श -

नकुली आदि ललिता जी की शक्तियाँ है, वे सभी भण्डासुर के चतुरङ्गबल को नष्ट करने के लिए समृद्ध थीं। अथवा भण्ड का अर्थ है "जीवभाव", उसकी सेना हुई द्वैत-विषयक बुद्धि, उस द्वैत-बुद्धि को नष्ट करने हेतु देवी अद्वैतरूप वृत्तियों की शक्ति रखने वाली होने से हर्षित थी। "नित्यापराक्रमा" इत्यादि अंश का एक अर्थ यह भी है कि अनादिसिद्ध अपनी आत्मशक्ति को देखने के लिए देवी समुत्सुक थी।

भण्डपुत्रवधोद्युक्तबालाविक्रमनन्दिता।
मन्त्रिण्यम्बाविरचितविशुक्रवधतोषिता ॥२९॥

हिन्दी -

भण्डासुर के "चतुर्बाहु" आदि तीस पुत्रों को मारने में तत्पर अपनी पुत्री बाला के पराक्रम से हर्षित तथा मन्त्रिणी-अम्बा = राजश्यामला, द्वारा भण्डासुर के भाई विशुक्र को मारने से सन्तुष्ट देवी ललिता को नमस्कार है ॥२९॥

विमर्श -

बाला = नववर्षा, नाम की देवी की पुत्री ने भण्डासुर के चतुर्बाहु आदि तीस पुत्रों को मारा था, तथा देवी की मन्त्रिणी राजश्यामला ने भण्डासुर के दोनों भाई विषाङ्ग एवं विशुक्र को मारा था। दोनों भाईयों में विशुक्र दैत्यों का संरक्षक था तथा शुक्र के समान विचारशील भी था। अत एव उसके वध को ही प्रमुखता देकर श्लोक में बताया गया है।

विषाङ्गप्राणहरणवाराहीवीर्यनन्दिता।
कामेश्वरमुखालोककल्पितश्रीगणेश्वरा ॥३०॥

हिन्दी -

भण्डासुर के द्वितीय भ्राता विषाङ्ग के प्राणहरण में वाराही ने जो शौर्य प्रदर्शित किया था, उससे आनन्दित एवं कामेश्वर-शिव, के मुखचन्द्र के आलोक-मात्र से श्रीयुक्त गणेश्वर को उत्पन्न करने वाली देवी ललिता को नमस्कार है ॥३०॥

विमर्श -

वराह के समान मुख होने से देवी की शक्ति दण्डिनी देवी का दूसरा नाम वाराही था। इस पद्य में अर्थान्तर यह भी है कि आणव आदि मल विरुद्ध सङ्ग के कारण विषाङ्ग हैं, उन मलों को नष्ट करने वाली वाराही है। तथा कामेश्वर = केवल-निर्गुण-शिव के अनुभव मात्र से श्री गणेश्वरत्व = पुर्यष्टक के अधीश्वर भाव, को प्राप्त हो गई।

महागणेशनिर्भिन्नविघ्नयन्त्रप्रहर्षिता।
भण्डासुरेन्द्रनिर्मुक्तशस्त्रप्रत्यस्त्रवर्षिणी ॥३१॥

हिन्दी -

श्रीमहागणेश द्वारा विघ्नयन्त्र को पूर्णतः नष्ट कर देने के कारण अत्यन्त हर्षित तथा असुरराज भण्ड द्वारा प्रयुक्त शस्त्रों के प्रतिकूल (नाशक) शस्त्रों की वर्षा करने वाली देवी ललिता को नमस्कार है ॥३१॥

विमर्श -

दो कोश तक विस्तृत शिला पर जयविघ्न नामक यन्त्र को लिखकर, उसके द्वारा शत्रुसैन्य में आलस्यादि विघ्न उत्पन्न करने के लिए विशुक्र ने जो शिलायन्त्र फेंका था, उसको महागणेश ने तोड़ दिया था, इससे देवी प्रमुदित हुई तथा भण्डासुर द्वारा छोड़े गए अस्त्रों के विरुद्ध स्वयं देवी ने शस्त्रों की वर्षा की।

कराङ्‌गुलिनखोत्पन्ननारायणदशाकृतिः ।
महापाशुपतास्त्राग्निनिर्दग्धासुरसैनिका ॥३२॥

हिन्दी -

(भण्डासुर द्वारा अस्त्र प्रयोग कर उत्पन्न किए गए सोमक रावण आदि को मारने हेतु) दक्षिण एवं वाम करों की अङ्‌गुलियों के नखों से भगवान् विष्णु के दश अवतारों को उत्पन्न करने वाली देवी को, तथा महापाशुपत अस्त्र की अग्नि में भण्डासुर के सैनिकों को जला चुकी भगवती ललिता को नमस्कार है ॥३२॥

विमर्श -

भण्डासुर ने सर्वासुरास्त्र नामक दैत्योत्पादन-अस्त्र को छोड़ा था, जिससे सोमक रावण, बलि, हिरण्याक्ष आदि उत्पन्न हुए तथा युद्ध करने लगे। उनको मारने हेतु देवी ने अपनी अङ्‌गुलियों के एक—एक नख से मत्स्य, कूर्म, वराह नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, कृष्ण एवं कल्किरूप दश अवतारों को उत्पन्न किया। अथवा नारायण पद को जीव एवं ईश्वर का उपलक्षण मानें तो जीव-सम्बन्धी जाग्रत् आदि पाँच अवस्थाएँ, तथा ईश्वर सम्बन्धी सृष्टि आदि पाँच कार्यों को मिलाकर दश आकृतियां हुईं, जो नख मात्र से उत्पन्न होती हैं। शैव मत में रुद्र से लेकर पिशाच तक को पशु कहा है। उनके पति होने से शिव पशुपति कहलाते हैं। पशुपति का अस्त्र पाशुपतास्त्र है। देवी ने पाशुपतास्त्र से भण्डासुर के सैनिकों को पूर्णतः दग्ध कर दिया।

कामेश्वराग्निनिर्दग्धसभण्डासुरशून्यका।
ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्रादिदेवसंस्तुतवैभवा ॥३३॥

(कामेश्वरास्त्रनिर्दग्धसभण्डासुरंसैनिका) इति पाठान्तरम्।

हिन्दी -

महापाशुपत अस्त्र से भी अधिक प्रभावशाली कामेश्वर-अस्त्र की अग्नि से भण्डासुर सहित उसकी शून्यक नामक नगरी को जलाने वाली, तथा तदुपरान्त ब्रह्मा, विष्णु एवं इन्द्रादि देवों द्वारा जिसके पराक्रम के वैभव की स्तुति की गई, उस देवी ललिता को नमस्कार है ॥३३ ॥

विमर्श -

अथवा पूर्वोक्त अर्थ के अलावा यह भी अर्थ है - कामेश्वर नाम है चिदग्नि का, भण्ड है द्वैतबोध कराने वाला जीवभाव, (सैनिक हैं 'लिङ्ग - शरीर' आदि, (पाठान्तर में) । शून्यक का अर्थ है द्वैतभान, या शून्यवादियों का शून्य। इस तरह चिदग्नि द्वारा जीवभाव सहित शून्यभाव को दूर करने पर चिन्मात्र शेष रहता है यह ध्वनित हुआ। ब्रह्मादि द्वारा जान लिया गया है व्यापकता, अपरिमितता तथा सर्वात्मकता जिस आत्मरूप देवता का, उसको नमस्कार है, यह द्वितीय पंक्ति का आशय है।

हरनेत्राग्निसंदग्धकामसंजीवनौषधिः ।
श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपङ्कजा ॥३४ ॥

हिन्दी -

हर के तृतीय नेत्र में स्थित अग्नि से पूर्णतः भस्मसात् किए गये कामदेव को जीवन देने वाली संजीवनी औषधि के समान (विरक्त कामेश्वर को भी अपनी ओर आकृष्ट करने के कारण देवी को कामदेव के लिए संजीवनी औषधि तुल्य बताया है) तथा श्रीमद्ज्ञान-प्रदायिनी (माहात्म्ययुक्त) वाणी को उत्पन्न करने वाली वाग्भव नामक पञ्चाक्षरकूट रूप-स्वरूप है जिस मुखकमल का, उस मुखकमल वाली देवी ललिता को नमस्कार है ॥३४ ॥

विमर्श -

भण्डासुर वध के बाद ब्रह्मादि की प्रार्थना पर ललिताम्बा ने कामदेव को जीवित्र कर दिया, ऐसी कथा ब्रह्माण्डपुराण में है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में कहा गया है कि "हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन", अर्थात् हरि = उपास्य के रुष्ट होने पर गुरु रक्षा करते हैं। शिव भी श्रीविद्या के उपासक हैं। गुरु के बिना उपासना सम्भव नहीं है। अतः त्रिपुरसुन्दरी (ललिता) को ही शिव का गुरु माना है तथा काम के उपास्य शिव ने स्वयं काम को दग्ध किया, उस स्थिति में गुरुरूपा ललिता के अलावा कौन उसे पुनर्जीवन दे सकता है, यह अभिप्राय प्रकट होता है। अथवा, —हर का अर्थ है आत्मस्वरूप का अपहर्ता,

उसका नेता हुआ अग्नि, (क्योंकि अग्नि ही स्वरूप को बदल देता है)। अर्थात् मूल-ज्ञान, उस अग्निरूप मूलज्ञान से सम्यक् दग्ध, जीवभाव को प्राप्त जो काम = कामेश्वररूप आत्मा, उसके आवरणपरावृत्ति के अभाव के साथ जीवन में स्वस्वरूप की प्राप्ति में ओषधि है ललिता देवी। उसकी उपासना से (विद्यारूप से) अविद्या की निवृत्ति के साथ स्वस्वरूपप्राप्ति-रूप मोक्ष मिल जाता है। जैसे सशरीर कामदेव पश्चात् अशरीर जीवित रहा, उसी प्रकार आत्मा भी अविद्या के कारण शरीरी दिखता है, शरीर-निवृत्ति के बाद वह अशरीरी ब्रह्म से एक हो जाता है, यह भी ध्वनित होता है।

कण्ठाधःकटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिणी।
शक्तिकूटैकतापन्नकट्यधोभागधारिणी ॥३५॥

हिन्दी -

कण्ठ के नीचे से लेकर कटि भाग पर्यन्त के मध्यभाग में स्थित कामराज (षडक्षर-कूट) का स्वरूप है, वही है निजरूप जिस देवी का, उसको व सर्जनशक्ति से युक्त होने के कारण शक्ति नामक चार अक्षर-समूह रूप कूट के साथ एकीभाव को प्राप्त कटि के अधोभाग को धारण करने वाली देवी ललिता को नमस्कार है ॥३५॥

मूलमन्त्रात्मिका मूलकूटत्रयकलेवरा।
कुलामृतैकरसिका कुलसङ्केतपालिनी ॥३६॥

हिन्दी -

धर्म अर्थ काम मोक्ष, इन चारों पुरुषार्थों का मूल कारण पञ्चदशाक्षरी मन्त्रस्वरूपा, मूल का कूटत्रय (तीनों कूट = कामकला-घटक तीनों अवयवों का समूह) है कलेवर = स्थूल और सूक्ष्मरूप, जिसका, उस देवी को, तथा आधार चक्र से निकलते अमृत के रसास्वादन में तत्पर, तथा शरीर एवं आचार के सङ्केतों (रहस्यों) का पालन करने वाली देवी ललिता को नमस्कार है ॥३६॥

विमर्श -

मनन करने से जो रक्षा करे वह "मन्त्र" कहलाता है। चतुर्विध पुरुषार्थ का साधन पञ्चदशाक्षरी मन्त्र को मूल-मन्त्र माना गया है। पुरुषार्थ देने के कारण तथा रक्षा करने के कारण मूलमन्त्र ही देवी का स्वरूप है। कूट-त्रय पद का अर्थ है तीन स्वरूप में जुड़ने वाले तीन अवयव। "कुलामृतैकरसिका" पद में कुल का अर्थ है सजातीय समूह। ज्ञाता ज्ञेय और ज्ञानरूप समूह। या

मेय, माता व मिति "कुल" है। ऊपर नीचे के क्रम में बत्तीस पद्मों में सबसे नीचे का पद्म भी त्रिपुटी के सम्बन्ध से "कुल" कहलाता है। अथवा कु=पृथिवीतत्व, जिसमें लीन होता हो वह "कुल" है आधारचक्र, व उसके सम्पर्क से सुषुम्णा का मार्ग भी कुल है। अतः सहस्रार से रिसता हुआ अमृत हुआ 'कुलामृत'। या, शरीर को भी कुल कहते हैं, शरीर-सम्बन्ध से वह कुलामृत हुआ। उस कुलामृत के आस्वादन में देवी तत्पर है। कुलसङ्केतपालिनी पद में "आचार एवं शरीर" को कुल माना गया है। देवी शरीर एवं आचार सम्बन्धी रहस्यों का पालन करने वाली हैं।

कुलाङ्गना कुलान्तस्था कौलिनी कुलयोगिनी।
अकुला समयान्तस्था समयाचारतत्परा ॥३७॥

हिन्दी -

कुल = परमशिव की शक्ति, अथवा पातिव्रत्यादि गुणसमूह वाले वंश से सम्बन्धित स्त्री जिस प्रकार छिपी रहती है, उसी प्रकार यह भी अविद्यारूपी पर्दे में छिपी होने के कारण कुलाङ्गना है, उसे, तथा परमशिव के अन्तःकरण में सार-रूप में स्थित, अथवा कुल = माता और मेय के मध्य मितिरूप में, या कुलशास्त्र के मध्य ज्ञेयभाव से स्थित, परमशिव द्वारा उत्पादित संसार वाली (कौलिनी) या शिव और शक्ति के सामरस्य वाली, परमशिव के साथ नित्य-सम्बन्ध वाली (कुलयोगिनी) या बाह्याकाश में चक्र पर रेखा खींचकर की जाने वाली पूजा से सम्बद्ध, नश्वर पृथिव्यादि महाभूत में लीन नहीं होने वाली, सत्-शास्त्र में किये गए सङ्केतपूर्वक आचरण करने के बाद प्राप्यरूप में स्थित, अथवा समय = शिव, तथा समया (शक्ति) के स्वरूप में विद्यमान रहने वाली, सत् शास्त्रोक्त आचारपालन में आसक्त (तत्परा) देवी ललिता को नमस्कार है ॥३७॥

विमर्श -

प्रस्तुत पद्य में 'कुल' शब्द का पाँच बार प्रयोग है। यह अनेकार्थक है, अत एवं पाँचों पदों के दो या अधिक अर्थ दिए गये हैं। यथा कुलाङ्गना में कुल का अर्थ शिव व पातिव्रत्यादिगुण समूह वाला वंश है। कुलान्तस्थ पद में कुल का अर्थ परमशिव, माता और मेय, या कुलशास्त्र है। कौलिनी पद में कुल का अर्थ परमशिव है, उसके द्वारा उत्पादित संसार हुआ कौल, कौल है जिसमें, या कौल=जगत्, है जिसका, वह कौलिनी हुई। शिव और शक्ति की समरसता भी कौल है। कुलयोगिनी पद में कुल का अर्थ परमशिव या बाह्याकाश में चक्र बनाकर किया जाने वाला पूजन भी है। अकुला पद में

कुल का अर्थ नश्वर महाभूतादि है। कुः=पृथिवी (महाभूतादि का उपलक्षण है) उसमें जो लीन हो जाये वह कुल है।

मूलाधारैकनिलया ब्रह्मग्रन्थविभेदिनी।
मणिपूरान्तरुदिता विष्णुग्रन्थविभेदिनी ॥३८ ॥

हिन्दी -

सुषुम्णा के मूल में आधार रूप से स्थित चतुर्दल-कमल रूप मूलाधार में मुख्यतः निवास करने वाली, षट्चक्रों में प्रत्येक चक्र के आदि और अन्त की दोनों ब्रह्मग्रन्थियों को भेदने वाली, नाभि में स्थित दशदल-कमल (मणिपुर) के मध्य में प्रकट हुई तथा मणिपूर के ऊपर स्थित विष्णुग्रन्थि को भेदने वाली श्रीललिता को नमस्कार है ॥३८ ॥

विमर्श -

गुदा के ऊपर एवं लिङ्ग के नीचे विद्यमान चतुर्दल-कमल, जो सुषुम्णा का मूल-आधार होने से मूलाधार कहलाता है, वही देवी का एक मुख्य घर (आवास स्थान) है। मणिपूरान्तरुदिता = नाभि में दशदल कमल है। सामयिक पूजा के समय साधक देवी के अङ्ग को मणिमय आभूषणों से पूर्ण करते हैं, अत एव दशदल कमल के लिए मणिपूर शब्द आया है। उस के मध्य देवी प्रकट होती हैं।

आज्ञाचक्रान्तरालस्था रुद्रग्रन्थविभेदिनी।
सहस्राराम्बुजारूढा सुधासाराभिवर्षिणी ॥ ३९ ॥

हिन्दी -

आज्ञाचक्र के मध्य में रहने वाली, रुद्रग्रन्थि (हृदयस्थ अनाहत-चक्र) को भेदने वाली, सहस्रारनामक श्वेतकमल पर आरूढ, तथा अमृत-धाराओं को चारों ओर बरसाने वाली देवी ललिता को नमस्कार है ॥३९ ॥

विमर्श -

भौहों के मध्य आज्ञापक गुरु का स्थान 'द्विदल' कमल है, उसी द्विदलकमल का नाम आज्ञाचक्र है, द्विदल कमलों के मध्य देवी स्थित है। हृदय में स्थित अनाहतचक्र का नाम रुद्रग्रन्थि है, उस अनाहतचक्र को भेदने वाली देवी है। ब्रह्मरन्ध्र में अधोमुख-स्थित सहस्रदल-कमल का नाम सहस्राराम्बुज है। सुधा=चन्द्रसम्बन्धिनी, अर्थात् अमृत, अमृत का आसार = धारासम्पात, अमृतधारासम्पात को बरसाने की स्वभाव वाली देवी ललिता है।

तडिल्लतासमरुचिः षट्चक्रोपरि संस्थिता।
महासक्तिः कुण्डलिनी बिसतन्तुतनीयसी ॥४० ॥

हिन्दी -

विद्युत् लता के समान कान्तिवाली, मूलाधार आदि षट्चक्रों के ऊपर सहस्रार (कमल) पर सम्यक् स्थित, उत्सव में आसक्ति रखने वाली, आकृति से भुजङ्ग सदृश या कुण्डलिनी शक्तिरूपा, अथवा कुण्डलिनी रूप कमल-नाल के तन्तुसदृश कृश-आकृतिवाली (सूक्ष्मरूपा) श्रीललिता को नमस्कार है ॥

विमर्श -

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञाचक्र इन छः चक्रों क्रो षट्चक्र कहते हैं। उनके ऊपर सहस्रार है, उस सहस्रार पर देवी संस्थित हैं। मह का अर्थ है उत्सव, शिवशक्ति समयोग रूप उत्सव में आसक्ति रखने वाली, यह अर्थ भी "महासक्ति" पद का होता है। अथवा समग्रतः महती सक्ति = संयोग, वाली। विसतन्तुसदृश शुभशक्ति कुण्डलिनी है या कुण्डल हैं जिसके वह, आकृति से कुण्डलिनी है, भुजङ्गाकार में मूलाधार में स्थित शक्ति कुण्डलिनी है। देवी शक्तियुक्त व कमलनाल के तन्तुसदृश सूक्ष्म हैं।

भवानी भावनागम्या भवारण्यकुठारिका।
भद्रप्रिया भद्रमूर्तिर्भक्तसौभाग्यदायिनी ॥४१ ॥

हिन्दी -

संसार को उत्पन्न करने वाले भव = शिव की अर्धाङ्गिनी, सगुण निर्गुण आदि की उपासना (भावना) से जानने योग्य, संसार-रूपी अरण्य को काटने हेतु कुठारसदृश, भंद्रप्रिया = मङ्गलादिकार्यों को प्रिय मानने वाली मङ्गलस्वरूप वाली तथा भक्तों को सौभाग्य प्रदान करने वाली देवी ललिता को प्रणाम है ॥४१ ॥

विमर्श -

भवति अस्मात् सर्वम्, सब इससे उत्पन्न होता है अतः यह भव =परमशिव है। भव संसार है, भव काम है, भव की स्त्री होने से ललिता जी भवानी हैं तथा संसार या काम को जीवन देने के कारण यह भवानी है। यथा-भवम् आनयति-जीवयतिं इति भवानी। कूर्मपुराण में "ब्राह्मी माहेश्वरी तथा अक्षर भावना" ये तीन भावनाएँ मानी गई हैं। मीमांसा में शाब्दी और आर्थी ये दो भावनाएँ स्वीकृत हैं। देवी भावना का विषय होने से कर्ममार्ग का विषय नहीं

है, यह भी ध्वनित हो रहा है। भंक्तसौभाग्यदायिनी :- श्री, काम, माहात्म्य, वीर्य, यत्न, अर्क, और कीर्ति, इन को भग कहते हैं। सुन्दर भग पदार्थ हैं जिसमें वह सुभगा, ललिता है। सुभगा का भाव सौभाग्य है। देवी भक्तों को अपने से अभिन्न स्वरूप को देने वाली है, यह अर्थ भी निकलता है।

भक्तिप्रिया भक्तिगम्या भक्तिवश्या भयापहा।
शांभवी शारदाराध्या शर्वाणी शर्मदायिनी ॥४२॥

हिन्दी -

भक्तिप्रिया (ईश्वर विषयक अनुराग रखने वाला जिसे प्रिय है) तथा जो सम्यक् आराधन से प्रत्यक्ष होने योग्य है, अनुपम भक्ति से वश में रहने वाली है, जन्म मृत्यु आदि के कारणीभूत भयों को दूर करने वाली है, शम्भु से सम्बद्ध है, देवी सरस्वती से पूजित है, या शरद् ऋतु में आराध्या है, परमशिव (शर्व) की पत्नी है, तथा भक्तों को सुख देने की स्वभाव वाली है, उस श्रीललिता को नमस्कार है ॥४२॥

विमर्श -

भक्ति दो प्रकार की होती है - मुख्या तथा गौणी। "सा परानुरक्तिरीश्वरे" इस भक्तिमीमांसा सूत्र के अनुसार ईश्वर विषयक अनुराग, या ईश्वर-विषयक चित्तवृति-विशेष मुख्य भक्ति है। सेवारूपी भक्ति गौणी है। गरुड पुराण में भक्ति के आठ भेद वर्णित हैं, भागवत में नौ प्रकार की भक्ति वर्णित है, वृहद्नारदीय में दश प्रकार की भक्ति है। अथवा भक्ति लक्षणा है, लक्ष्यार्थ का बोध लक्षणा से ही होता है। ऊपर जहाँ-जहाँ भक्ति पद आया है उसे उस उस सन्दर्भों में जोड़कर अर्थ करें। शाम्भवी=मुद्रा, भी है, शाम्भवी दीक्षा भी है।

शांकरी श्रीकरी साध्वी शरच्चन्द्रनिभानना।
शातोदरी शान्तिमती निराधारा निरञ्जना॥४३॥

हिन्दी -

कल्याणकारक शंकर की स्त्री, श्री=धन, सौभाग्यादि को देने वाली, साध्वी = पतिव्रता, शरद्कालीन चन्द्र के समान मुखवाली, कृश उदर वाली, शान्तिधारण करने वाली, मूलाधार से निकली, या निराधार पूजारूप, अविद्यारूप मायासम्पर्क से रहित, या निर्मल, देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥४३॥

विमर्श - शं = कल्याणं करोति इति शंकरः, शंकर की स्त्री। अथवा शं=कल्याण है कर=हाथ में जिसके, उसकी स्त्री हुई शाङ्करी। शातोदरी - शात=कृश, है उदर जिसका, वह। शो तनूकरणे से शात पद बना है। अथवा शातोदर अनन्तगुह हिमवान् की पुत्री। निराधारा=आधार (मूलाधार) से निर्गत। अथवा संसार का आधारभूत होने से अन्य कोई आधार नहीं है। अतएव वह निराधारा है। निराधारा नाम की एक पूजा भी है। "निराधारा तु संविदि", (सूत संहिता)। निरञ्जना - अञ्जन कहते हैं कालुष्य को, माया को, तमो रूप आवरण को। वह जिससे निकल गया वह निरञ्जना=शुद्ध, मायारहित, मलरहित, आवरणरहित है। मिथ्यारूप अविद्या (माया) के सम्पर्क से रहित होने से यह निरञ्जना है।

निर्लेपा निर्मला नित्या निराकारा निराकुला।
निर्गुणा निष्कला शान्ता निष्कामा निरुपप्लवा ॥४४ ॥

हिन्दी -

कर्म-सम्बन्ध से मुक्त, आणवादि मलों से रहित या विकार रूप दोषों से रहित, नित्या=कालत्रय से अबाधित, सगुणरूपा होते हुए भी वास्तविक में निराकार, अविद्या के सम्पर्क के होने पर भी चिन्ता से रहित (निराकुला) सत्त्व रजस्, तमस् इन तीनों शरीर धर्मरूपी गुणों से रहित, (निर्गुणा) अंशों से रहित या निर्गुणचित्त, शान्तस्वरूपा, अखिल-कामनाओं से मुक्त और नाश-रहित स्वरूप वाली या पिण्ड-रूपी अण्ड में अमृत का स्रवण कराने वाली देवी ललिता को नमस्कार है ॥४४ ॥

विमर्श -

लेप का अर्थ है "कर्म के साथ सम्बन्ध"। ज्ञान के कारण जिसका कर्म-सम्बन्ध समाप्त हो गया ऐसी हैं देवी ललिता जी। अर्थात् कर्मफलों से वह लिप्त नहीं होती हैं।

आकुला का अर्थ है - सब का अभाव, या शून्य, या चिन्ता, जहाँ अभाव का अभाव है, शून्य का अभाव है या चिन्ता का अभाव है वह निराकुला है। सम्पूर्ण कामनाओं को स्वयं धारण कर चुकी देवी के लिए तृष्णा=काम, क्या है ? अत एवं उन्हें निष्कामा कहा गया है।

नित्यमुक्ता निर्विकारा निष्प्रपञ्चा निराश्रया।
नित्यशुद्धा नित्युबुद्धा निरवद्या निरन्तरा ॥४५ ॥

हिन्दी -

जिसके भक्त नित्य मुक्त हैं ऐसे मोक्षस्वरूप-वाली, महत् आदि सांख्य शास्त्रोक्त विकारों से रहित, पृथिव्यादि प्रपञ्च के संकोच विस्तार एवं नाश से रहित, सम्पूर्ण जगत् का आश्रय, जिनका स्वयं कोई आश्रय न हो ऐसे स्वरूप वाली, पापरहित भक्तों से युक्त, अथवा तीनों कालों में मालिन्य का अभाव होने से शुद्धरूप वाली, नित्यबुद्धा=चिद्रूप, या ज्ञानीजन हैं भक्त जिसके, उसे, अविद्याजनित विकारादि से मुक्त होने के कारण अनिन्दित स्वरूप वाली, तथा अन्तर=भेद, से रहित देवी ललिता को नमस्कार है।

निष्कारणा निष्कलङ्का निरुपाधिर्निरीश्वरा।
नीरागा रागमथिनी निर्मदा मदनाशिनी ॥४६॥

हिन्दी -

जो स्वयं सभी का कारण है, तथा उनका कोई कारण नहीं है, अपवाद या पाप से रहित, अविद्यारूप-उपाधि से भिन्न, स्वयं में सम्पूर्ण ऐश्वर्यवाली होने से ईश्वरत्वाभाववाली, राग=प्रीति या इच्छा, उस से रहित, भक्तों के विषयानुराग को वैराग्य प्रदान कर नष्ट करने वाली, मोह का कारण रूप या स्तब्धतारूप चित्तवृत्ति का अभाववाली (नर्मदा) तथा सेवकों के मद को नष्ट करने वाली देवी ललिता को नमस्कार है ॥४६॥

विमर्श -

देवी सभी का मूल कारण हैं, उनका कोई उपादान या निमित्तकारण नहीं है, अत एव वे निष्कारणा हैं। ईश्वर के जितने ऐश्वर्यादि हैं वे सभी उनमें समाहित हैं। वे ईश्वरों के भी ईश्वर हैं, तथा ईश्वरत्व-सामान्य उनमें नहीं है। अत एव वे निरीश्वरा हैं। रागमथिनी - भक्तों के राग को वैराग्य प्रदान कर नष्ट करने के कारण देवी रागमथिनी है। मद को नष्ट करने वाली है। "रागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः", यह सूत्र राग, द्वेष आदि में प्रवृत्ति को क्लेश मानता है। देवी, भक्तों के राग-द्वेषादि को नष्ट कर उनके क्लेश का भी शमन करती हैं।

निश्चिन्ता निरहंकारा निर्मोहा मोहनाशिनी।
निर्ममा ममताहन्त्री निष्पापा पापनाशिनी ॥४७॥

हिन्दी -

चिन्ता-मुक्त, त्रिविध अंहकार (वैकारिक, तैजस, भूतादि) से रहित, मोह से रहित, तथा भक्तों के मोह को नष्ट करने वाली, ममत्वरूप - अहङ्कार (यह मेरा है) से रहित, मेरा यह है इस अभिमानभाव (ममता) को नष्ट करने वाली, पापरहित भक्तों के पापों को नष्ट करने वाली श्रीललिता को नमस्कार है ॥४७ ॥

विमर्श -

दुःख को उत्पन्न करने वाली स्मृति को चिन्ता कहते हैं। आनन्दस्वरूपा होने के कारण वे चिन्ता से रहित हैं। मोह कहते हैं स्मृति को बान्धने वाली स्मृति को, विषयानुराग को। देवी विषयानुराग से रहित होने के कारण निर्मोहा हैं। मम=यह मेरा है, इस प्रकार के अभिमानविशेष से रहित होने के कारण देवी "निर्ममा" हैं। भक्तों के पापों का नाश करने वाली होने से यह पापनाशिनी है। कहा गया है कि - "मेरुपर्वतमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः। कात्यायनीं समासाद्य नश्यति क्षणमात्रतः।" मेरुपर्वत-सदृश पापकर्मों की राशि भी कात्यायनी को पाने पर क्षणमात्र में नष्ट हो जाती है।

निष्क्रोधा क्रोधशमनी निर्लोभा लोभनाशिनी।
निःसंशया संशयघ्नी निर्भवा भवनाशिनी ॥४८ ॥

हिन्दी -

क्रोध-रहित, भक्तों के अरिषड्वर्गान्तर्गत क्रोध को शान्त करने वाली, लोभ से सर्वथा रहित, तथा भक्तों के लोभ को नष्ट करने वाली, संशयरहित, तथा भक्तों के संशयों को नष्ट करने वाली, उत्पत्ति से रहित तथा भक्तों की उत्पत्ति को या संसारबन्धन को नष्ट करने वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है ॥४८ ॥

विमर्श -

द्वेष क्रोध का मूल है। देवी के द्वेष्य का अभाव होने से वे निष्क्रोधा हैं। अरिषड्वर्ग में क्रोध भी है। भक्तों के शत्रुरूपी क्रोध को नष्ट करने वाली देवी है, अत एव वे क्रोध शमनी हैं। लोभ सभी गुणों को नष्ट करता है। अत एव वे भक्तों के लोभ को नष्ट करती हैं। अत्यन्त उदार होने के कारण स्वयं निर्लोभा हैं। देवी अनादि परं ब्रह्म हैं, अत एव उत्पत्ति रहित=निर्भवा हैं। भक्तों के भव=उत्पत्ति, या संसारबन्ध को नष्ट कर मुक्ति देने से भवनाशिनी है।

निर्विकल्पा निराबाधा निर्भेदा भेदनाशिनी।
निर्नाशा मृत्युमथिनी निष्क्रिया निष्परिग्रहा ॥४९ ॥

हिन्दी -

सविकल्पक ज्ञान से रहित (नित्य ज्ञान का विषय) समस्त बाधाओं (वर्जनाओं) से रहित, (सर्वात्म स्वरूप होने से) भेद रहित, तथा भक्तों के भेद (द्वैतज्ञान) को नष्ट करने वाली, नाशरहित, भक्तों की मृत्यु को मथकर नष्ट करने वाली, विहित एवं निषिद्ध, दोनों प्रकार की क्रियाओं से मुक्त, तथा सभी प्रकार के परिग्रहों से रहित श्रीललिताम्बा को नमस्कार है ॥४९ ॥

विमर्श -

शून्य-विषयक शब्दजन्य ज्ञान विकल्प है। उससे रहित होने के कारण देवी नित्य ज्ञानरूपा हैं। अत एव निर्विकल्पा हैं। अथवा विरुद्ध कल्प हुआ विकल्प, उससे रहित है। अपने विरुद्ध पक्षान्तर का अभाव होने से निर्विकल्पा हैं। विहित एवं निषिद्ध क्रियाओं से रहित होने के कारण ये निष्क्रिया हैं। कहा गया है कि - "अशरीरं वावसन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः"। अथवा क्रिया में अन्वय के बिना ही कर्ता आदि कारक-भाव को प्राप्त करने से देवी निष्क्रिया हैं।

निस्तुला नीलचिकुरा निरपाया निरव्यया।
दुर्लभा दुर्गमा दुर्गा दुःखहन्त्री सुखप्रदा ॥५० ॥

हिन्दी -

उपमारहित = अनुपम, नील केशोंवाली, अपायरहित, अतिक्रम, दण्ड, विनाश, विश्लेषादि (अत्यय) रहित, बाह्य प्रयत्नों से अप्राप्य होने से दुर्लभा, कष्टपूर्वक जानने योग्य, (बाह्य ज्ञान से नहीं जानने योग्य) दुर्गदैत्य का वध करने वाली, भक्तों के सांसारिक दुखों को नष्ट करने वाली, तथा ऐहिक पारलौकिक व कैवल्यरूप सुखों को अतिशय प्रदान करने वाली देवी ललिता जी को नमस्कार है ॥५० ॥

दुष्टदूरा दुराचारशमनी दोषवर्जिता।
सर्वज्ञा सान्द्रकरुणा समानाधिकवर्जिता ॥५१ ॥

हिन्दी -

दुष्टों के लिए अप्राप्य, दुराचार (शास्त्रविरूद्ध आचरण) को दबाने वाली, राग-द्वेषादि दोषों से सर्वथा रहित, सब कुछ जानने वाली, भक्तों पर अतिशय करुणा दिखाने वाली, सर्वोत्तम होने से समान और अधिक से रहित देवी श्रीललिता को नमस्कार है।

विमर्श -

दोषयुक्त व्यक्ति दुष्ट कहलाता है। उनके लिए देवी अप्राप्य हैं। कहा गया है कि - "न भजन्ति कुतर्कज्ञा देवीं विश्वेश्वरीं शिवाम्"। शास्त्र विरुद्ध आचार या भक्तों के दुराचार को शमन करने वाली है देवी। वर्तमान, अतीत एवं भविष्यत् तीनों को जानने के कारण देवी सर्वज्ञा हैं। समानाधिक वर्जिता = उनके समान या उनसे अधिक कोई नहीं है, वे सर्वोत्तम हैं, अत एव उन्हें "समानाधिकवर्जिता" कहा है।

सर्वशक्तिमयी सर्वमङ्गला सद्गतिप्रदा।
सर्वेश्वरी सर्वमयी सर्वमन्त्रस्वरूपिणी ॥५२॥

हिन्दी -

बाला, बगला आदि सभी शक्तियों वाली, या सभी देव समूहों की शक्तिरूपा; भक्तों के लिए समग्र मङ्गल वाली, स्वर्ग से मोक्ष तक की उत्तम गति को प्रदान करने वाली, पिपीलिका से ब्रह्म पर्यन्त, सभी की स्वामिनी, पृथिवी आदि से लेकर शिव तक सभी तत्वों से अभिन्न, तथा सात करोड़ मन्त्र हैं स्वरूप जिसके, उस देवी श्रीललिता जी को नमस्कार है ॥५२॥

विमर्श -

उन्हीं की शक्ति होने के कारण बाला, बगला आदि देवियाँ ललिता जी से अभिन्न हैं। अत एव ललिता जी सर्वशक्तिमयी है। यहां मयट् प्रत्यय अभेदार्थक है। स्वर्ग से लेकर मोक्षान्त-गति सद्गति है। उनको देने वाली होने से सद्गतिप्रदा हैं देवी। सर्वमन्त्रस्वरूपिणी = मूलविद्या से उत्पन्न सात करोड़ मन्त्र हैं;- "सप्तकोटिमहामन्त्रैर्मूलविद्यासमुद्भवैः। मन्त्राध्वा सन्धिरात्मासौ विचिन्त्यः पार्वतीपतेः"। सात करोड़ मन्त्र भी इनका ही स्वरूप है।

सर्वयन्त्रात्मिका सर्वतन्त्ररूपा मनोन्मनी।
माहेश्वरी महादेवी महालक्ष्मीर्मृडप्रिया ॥५३॥

हिन्दी -

घट, अर्गला, आदि यन्त्रों के स्वरूप वाली, वामकेश्वर आदि चौंसठ भेदों वाले तन्त्र ही शरीर हैं जिसके, उसको, या तन्त्रों से जानने योग्य, विषयासक्ति रहित हृदय में निरुद्ध मनवाली, महेश्वर की शक्तिभूता, महादेवी, (महादेव की पत्नी) अम्बिका की अंशभूता महालक्ष्मी, या महाविष्णु की पत्नी, परमशिव (मृड) की प्रिया देवी ललिता को प्रणाम है ॥५३ ॥

विमर्श -

घट, अर्गला आदि यन्त्र देवी का अपना स्वरूप माना गया है तथा वामकेश्वर आदि सर्वतन्त्र जो चौंसठ प्रकार के हैं, वे भी देवी का अपना रूप है। या– उन तन्त्रों से देवी के स्वरूप का बोध होता है। अतः वे सर्वयन्त्रात्मिका व सर्वतन्त्ररूपा हैं। मनोन्मनी = विषयों की आसक्ति से रहित तथा हृदय में निरुद्ध योगियों का मन "मनोन्मनी" कहलाता है। यह पुरुषार्थ का साधन होने से आत्म-शक्तिरूप है। देवी का भी वह स्वरूप है। 'स्वच्छन्द-संग्रह' में भ्रूमध्य से आठवाँ तथा ब्रह्मरन्ध्र के नीचे के स्थान को "मनोन्मनी" कहा गया है। यह निर्विकल्पा शिवशक्ति भी है। संकल्पविकल्प से शून्य मन भी "मनोन्मनी" कहलाता है। भूतों का ईश्वर महेश्वर है। यह महेश्वर की माहेश्वरी-शक्ति, या पत्नी है। चन्द्र-मूर्ति महादेव हैं, या प्रमाणों से अज्ञेय शरीर वाला होने से महादेव हैं। महादेव की यह दयिता है। करवीर में स्थित देवी को महालक्ष्मी कहते हैं। महाविष्णु की यह पत्नी है। 'मैलार-तन्त्र' में कहा गया है कि महाल नामक दैत्य को समाप्त करने वाली महालसा, महालक्ष्मी है। यह अम्बिका के अंश से प्रादुर्भूत है। यह महालक्ष्मी शिवपुराण में 'श्यामा' एवं "सर्वमनोहरा" नाम से भी प्रसिद्ध है।

महारूपा महापूज्या महापातकनाशिनी।
महामाया महासत्त्वा महाशक्तिर्महारतिः ॥५४ ॥

हिन्दी -

चार रूपों (प्रधान, पुरुष, व्यक्त, काल) से भी उत्कृष्ट (महा) रूपवाली, पूज्यों के भी पूजनीया, (महापूज्या) ब्रह्म-हत्यादि महापातकों को भी नष्ट करने वाली, महान् ब्रह्मा आदि को मोहने वाली महामाया, या अधिक कृपा वाली, जगत् का निर्वाह करने हेतु विस्तृत एवं विविध बल वाली, महती शक्ति से युक्त, तथा ज्ञानियों की अधिक प्रीति है जिसमें; उस देवी ललिता को नमस्कार है ॥५४ ॥

विमर्श -

महारूपा - परब्रह्म का रूप महारूप है, या महत्तत्व से अपरिच्छिन्न रूप महारूप है। प्रधान, पुरुष, व्यक्त एवं काल इन चार रूपों से उत्कृष्ट रूपवाली देवी महारूपा है। ब्रह्मादि श्रेष्ठों को भी मोहने के कारण यह "महामाया" है। कहा भी गया है -"बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति"। महारति- ज्ञानियों की इस देवी में अधिक प्रीति है, या यह महाकामसुन्दरी होने से महारति है।

महाभोगा महैश्वर्या महावीर्या महाबला।
महाबुद्धिर्महासिद्धिर्महायोगेश्वरेश्वरी ॥५५ ॥

हिन्दी -

पृथिव्यादि महत्-विस्तार से युक्त, या महासुख, भोग व धन से युक्त (महोभागा) महद् = ऐश्वर्य-विभूति, से युक्त, अत्यधिक शुक्रादिवीर्य = प्रभाव, से युक्त, गन्धादि महान् सैन्यबल वाली, उत्कृष्ट बुद्धिस्वरूपा (जिस बुद्धि के उत्पन्न होने पर कुछ जानने योग्य नहीं रहता, वह बुद्धि महाबुद्धि है) अणिमादि महासिद्धि वाली (या उत्कृष्ट सिद्धि देने वाली) बड़े बड़े योगेश्वरों की भी स्वामिनी देवी ललिता को नमस्कार है ॥५५ ॥

विमर्श -

महान् आभोग = पृथिवी आदि का विस्तार, है जिससे वह, या महान् भोग, सुख, धन, जिससे मिलते हैं वह महाभोगा (देवी) है। ऐसी बुद्धि महाबुद्धि है, जिसके होने पर कुछ भी जानना शेष नहीं रहता है। या महती बुद्धि जिससे प्राप्त हो वह महाबुद्धि है।

महातन्त्रा महामन्त्रा महायन्त्रा महासना।
महायागक्रमाराध्या महाभैरवपूजिता ॥५६ ॥

हिन्दी -

महाफल देने वाले कुलार्णव, महार्णव-तन्त्रों वाली, स्वतन्त्र तन्त्रवाली, बाला; बगला आदि महामन्त्रों वाली, या श्रीविद्यारूप मन्त्रवाली, पूजाचक्र, पद्मचक्र, अमृतघट, मेरुलिङ्ग आदि महायन्त्रों वाली, या "सिद्धिवज्र" नामक सर्वोत्तम यन्त्रवाली, पृथिव्यादि छत्तीस तत्वरूप महान् आसनवाली, मातङ्गी, वाराही, बाला आदि चौंसठ योगिनियों की पूजा के क्रम से (महायागक्रम) आराधना की जाने वाली, अथवा भावनोपनिषद् द्वारा प्रतिपादित रहस्यतर याग

ही महायाग है, उस महायाग के क्रम से आराध्या, तथा सृष्टि, स्थिति, एवं संहारकारी, परमशिवरूप महाभैरव से पूजित देवी ललिता को नमस्कार है ॥५६ ॥

विर्मश -

बाला, बगला आदि मन्त्र महामन्त्र हैं। भगवती ललिता सभी छत्तीस तत्वों को आधार बनाती हैं, अतः महासना है। भरण, रमण व वमनकर्ता, सृष्टि-स्थिति-संहृतिकारी परशिव को भैरव कहते हैं। वही भैरव महान् है। महाभैरव से देवी पूजित है।

महेश्वरमहाकल्पमहाताण्डवसाक्षिणी।
महाकामेशमहिषी महात्रिपुरसुन्दरी ॥ ५७ ॥

हिन्दी -

महेश्वर द्वारा महाप्रलय की अवस्था में किए गए महा-ताण्डव नृत्त की एक मात्र साक्षी, महाकामेश=परशिव की महारानी, (पत्नी) ऊर्ध्व, मध्य, तथा अधोलोक रूपी त्रिपुर=तीन नगरियों, की एकमात्र महासुन्दरी, देवी को या माता, मान एवं मेय-रूप तीन पुरों (नगरों) की महासुन्दरी देवी ललिता को नमस्कार है ॥५७ ॥

विमर्श -

महाप्रलय की दशा में विश्व का संहार होने पर एकमात्र शिव के बचने पर महाताण्डव द्वारा स्वयं शिव उत्पन्न हुए आनन्द को प्रदर्शित करते हैं। उस समय अन्य किसी भी जीव का अभाव हो जाता है। शिव की शक्ति-रूपा देवी उन्हीं में संयुक्त व्र समाहित होकर महाताण्डव को देखती है। अतः देवी को महाताण्डव की साक्षिणी माना है। पञ्चदशीस्तव में कहा भी गया है- "कल्पोपसंहरणकल्पितताण्डवस्य देवस्य खण्डपरशोः परभैरवस्य। पाशाङ्कुशैक्षवशरासनपुष्पबाणैः सा साक्षिणी विजयते तव मूर्तिरेका"।

चतुःषष्ट्युपचाराढ्या चतुःषष्टिकलामयी।
महाचतुःषष्टिकोटियोगिनीगणसेविता ॥५८ ॥

हिन्दी -

चौंसठ प्रकार की उपासनाओं (उपचार) या अनुष्ठानों से सम्पन्न, वेद उपवेद गीतादि चौंसठ कलाओं वाली, उत्कृष्ट चौंसठ करोड़ योगिनी-गणों से सेवित देवी श्री ललिता को नमस्कार है ॥५८ ॥

विमर्श -

कल्पसूत्र में परशुराम ने चौंसठ उपचारों का वर्णन किया है। अन्य तन्त्र में आठ विशेष उपचार भी बताए गए हैं। पूजा-प्रकरण में चौंसठ उपचारों (अनुष्ठानों) के साथ देवी की पूजा की जाती है। अत एव देवी उन उपचारों के कारण धनशालिनी है। वेदादि-शास्त्र, गज-अश्वारोहणादि, गीतादि, रत्नपरीक्षा, चौर्य, धातुपरीक्षा आदि चौंसठ कलाएँ हैं। देवी चौंसठ कलास्वरूपा हैं। ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं के मध्य प्रत्येक के अंश से आठ आठ योगिनी-शक्ति प्रादुर्भूत होकर चौंसठ बनीं। उन चौंसठ योगिनियों के अपने अंशभूत करोड़-संख्या में गण प्रादुर्भूत हुए। उन विशिष्ट चौंसठ करोड़ योगिनियों के गण से देवी सेवित हैं। तन्त्रराज में कहा गया है कि - "ललिताचक्रनवके प्रत्येकं शक्तय: प्रिये। चतु:षष्टिपरिमिता: कोट्य:", इति।

मनुविद्या चन्द्रविद्या चन्द्रमण्डलमध्यगा।
चारुरूपा चारुहासा चारुचन्द्रकलाधरा ॥५९ ॥

हिन्दी -

मनु द्वारा उपासित विद्यास्वरूप वाली, तथा चन्द्र द्वारा उपासित विद्यास्वरूपा (द्वादशविद्यारूपा) चन्द्रमण्डल के मध्य में ध्येयभाव से जाने वाली, सुन्दररूप वाली, सुन्दर हासवाली, सुन्दर चन्द्र की कला (वृद्धि व क्षयरहित चन्द्र की कला) को धारण करने वाली देवी ललिता को नमस्कार है ॥५९ ॥

विमर्श -

देवी के मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, मन्मथ, अगस्ति, अग्नि, सूर्य, इन्द्र, स्कन्द, शिव, एवं क्रोधभट्टारक, ये बारह उपासक हैं। इनमें मनु एवं चन्द्र द्वारा उपासित विद्या का स्वरूप (श्रीविद्या का प्रस्तार) देवी का अपना स्वरूप है; अत एव वे मनुविद्या व चन्द्र-विद्या हैं। सायंकालीन सन्ध्यावन्दन में आयुष्कर प्रयोग में चन्द्रमण्डल में देवी का ध्यान किया जाता है। अत एव वे चन्द्र-मण्डल मध्यगा हैं। वृद्धि व क्षयरहित चन्द्र की कला को चारु=सुन्दर, माना गया है। उसको धारण करने के कारण देवी को 'चारुचन्द्रकलाधरा' कहा गया है।

चराचरजगन्नाथा चक्रराजनिकेतना।
पार्वती पद्मनयना पद्मरागसमप्रभा ॥६० ॥

हिन्दी -

चराचर (स्थावर एवं जङ्गम) संसार की स्वामिनी, त्रैलोक्य को मोहित करने वाले नये चक्रराज (श्री चक्र) पर निवास करने वाली, पर्वतराज की पुत्री

पार्वती, कमल सदृश नयनवाली, और पद्मराग-मणि के समान ईषद् रक्तकान्ति युक्त नेत्रों वाली, देवी श्रीललिता को नमस्कार है ॥६०॥

पञ्चप्रेतासनासीना पञ्चब्रह्मस्वरूपिणी।
चिन्मयी परमानन्दा विज्ञानघनरूपिणी ॥६१॥

हिन्दी -

ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर और सदाशिव ये सभी अपनी अपनी शक्ति के अभाव में धर्मी के अंश से, या कार्यक्षम न होने के कारण वामांश से प्रेत हो जाते हैं। उन ब्रह्मादि पञ्चप्रेतों से कल्पित आसन पर आसीन, ब्रह्म, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिवरूप पञ्चब्रह्मों की स्वरूपवाली, चिद्रूपा, परमानन्दस्वरूपा, तथा एकमात्र चैतन्य रूप वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है ॥६१॥

विमर्श -

"वामा शक्तिस्तु सा ज्ञेया ब्रह्मा प्रेतो न संशयः"। इस 'ज्ञानार्णव' वचन के अनुसार उपर्युक्त ब्रह्मादि-पञ्चप्रेत माने गये हैं तथा त्रिपुरसिद्धान्त के अनुसार ब्रह्म विष्णु रुद्र ईश्वर और सदाशिव का ब्रह्मकोटि में अन्तर्भाव है। ये सभी रूप देवी के हैं। यां, —शब्द आदि पञ्चतन्मात्राएँ ब्रह्मस्वरूप हैं, उनसे आकाशादि पाँच महाभूतों की उत्पत्ति देवी करती हैं। अतः वे 'पञ्च तन्मात्रा-स्वरूपा' भी हैं। विज्ञानघनरूपिणी = विज्ञान का अर्थ है चैतन्य। घन का अर्थ घना या एकरस है। चैतन्य ही एकमात्र रूप है जिसका, उस देवी को नमस्कार कहा गया है।

ध्यानध्यातृध्ययेरूपा धर्माधर्मविवर्जिता।
विश्वरूपा जागरिणी स्वपन्ती तैजसात्मिका ॥६२॥

हिन्दी -

ध्यान (मानसज्ञान) रूपा, ध्यातारूपा एवं ध्येय=विषयरूपा, धर्म और अधर्म (पापपुण्य) से वर्जित, विश्व (स्थूल उपाधि से उपहित चैतन्य) रूपवाली, बाह्येन्द्रिय-विलास-युक्त (जागरिणी) स्वप्नदशा को प्राप्त जीव से अभिन्न स्वरूपवाली, तथा जाग्रत् अवस्था को प्राप्त जीव से अभिन्न स्वरूप वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है।

विमर्श -

जागरिणी = बाह्येन्द्रिय से देखने योग्य साधारण सृष्टिं को "जागर" कहते हैं। अर्थात् स्थूल शरीराभिमानी जीव। उससे अभिन्न स्वरूप देवी का

है। अतः वे जागरिणी हैं। स्वपन्ती = स्वप्नदशा को प्राप्त तैजसनामक सूक्ष्म शरीर-व्यष्टि (एक) का अभिमानी जीव, स्वप्न पद का अर्थ है। उस जीव से अभिन्न-स्वरूप होने से वह देवी स्वपन्ती है। तैजसात्मिका = तैजस नामक सूक्ष्म-शरीर समूहधारी जीव "हिरण्यगर्भ" है। हिरण्यगर्भ है आत्मा = स्वरूप, जिस का वह देवी तैजसात्मिका हई।

सुप्तां प्राज्ञात्मिका तुर्या सर्वावस्थाविवर्जिता।
सृष्टिकर्त्री ब्रह्मरूपा गोप्त्री गोविन्दरूपिणी ॥६३ ॥

हिन्दी -

सुषुप्ति-अवस्था की अभिमानवाली, प्राज्ञ = जीवसमष्टिभूत ईश्वर-स्वरूप वाली, तुर्यावस्था-प्राप्त चैतन्यरूपा, शुद्ध संवित्-मात्र रूप होने के कारण जाग्रत्, सुषुप्ति, स्वप्न एवं तुर्यावस्था से रहित, ब्रह्मा-स्वरूप वाली तथा सृष्टि करने वाली, रक्षा करने वाली एवं विष्णुस्वरूपिणी देवी श्रीललिता को नमस्कार है ॥६३ ॥

विमर्श -

अविवेक व माया सौषुप्त है। कारणशरीर-व्यष्टि का अभिमानी जीव सुप्त है, तथा कारणशरीर की समष्टि = जीव, ईश्वररूप आत्मा है। देवी व्यष्टि एवं समष्टि उभयरूपा हैं, अतः सुप्ता व प्राज्ञात्मिका हैं। जाग्रत्, सुषुप्ति व स्वप्नावस्था से भिन्न शुद्धविद्योदय की अवस्था तुर्य है। ‌या तीनों अवस्थाओं वाला महाकारण-शरीर का अभिमानी जीव तुर्य है। उस तुर्य की व्यष्टि एवं समष्टि से अभिन्न होने के कारण देवी तुर्या हैं। ब्रह्मरूपा, गोप्त्री एवं गोविन्दरूपिणी पदों के द्वारा देवी को सृष्टि-कारक ब्रह्मा, रक्षणकारक शिव, तथा विष्णु इन सभी का सम्मिलित-स्वरूप वाली बताया गया है।

संहारिणी रुद्ररूपा तिरोधानकरीश्वरी।
सदाशिवाऽनुग्रहदा पञ्चकृत्यपरायणा ॥६४ ॥

हिन्दी -

जगत् का संहार करने वाली, रुद्र (पशुपति) स्वरूप वाली, तिरोधान (परमाणु आदि का प्रकृति में लय) करने वाली शक्तिरूपा (तिरस्करिणी नामक विशेष शक्ति-स्वरूप वाली) शुद्ध सत्व-प्रधान ईश्वर (सदाशिव) स्वरूपवाली, या सदा कल्याणकारिणी, ध्वंस हुए संसार की पुनः सृष्टि के लिए प्रारम्भिक चेष्टारूप अनुग्रह (कृपा) करने वाली, तथा उक्त पाँच कृत्यों की आश्रयभूता देवी श्रीललिता को नमस्कार है ॥६४ ॥

भानुमण्डलमध्यस्था भैरवी भगमालिनी।
पद्मासना भगवती पद्मनाभसहोदरी ॥६५ ॥

हिन्दी -

भानु-मण्डल के मध्य में स्थित भैरव = परमशिव की स्त्री, या बारह वर्षीय कन्यारूपा, षड्गुणों को (भग) धारण करने वाली, पद्मासन वाली, या भक्तों को बाँट कर लक्ष्मी देने वाली, ऐश्वर्यशालिनी (भगवती) तथा पद्मनाभ = विष्णु, की सहोदरी = भगिनी, श्रीललिता को नमस्कार है ॥६५ ॥

विमर्श -

संध्या करते समय देवी का ध्यान भानुमण्डल पर होता है, अतः उन्हें भानुमण्डलमध्यस्था कहा है। भैरवी शिवानी है, तथा द्वादशवर्षीय कन्या भी, "द्वादशाब्दा तु भैरवी"। भग नाम है ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, और ज्ञान-विज्ञान का। इनको धारण करने के कारण देवी को भगमालिनी कहा है। पद्मासना = पद्मां सनति, विभज्य ददाति, षणु संभक्तौ से सना बना है। लक्ष्मी को बाँट कर अपने भक्तों को देने वाली देवी पद्मासना है। एक ही ब्रह्म धर्म तथा धर्मी इन दो रूपों को प्राप्त हुआ। धर्म पुमान् और स्त्री के रूप में दो भागों में बँटा। पुमान् विष्णु हुए, तथा परमशिव का महिषी-भाव हुआ स्त्री। अतः ललिता जी को विष्णु की "सहोदरी" बताया गया है।

उन्मेषनिमिषोत्पन्नविपन्नभुवनावली।
सहस्रशीर्षवदना सहस्राक्षी सहस्रपात् ॥६६ ॥

हिन्दी -

नेत्र के खोलने एवं बन्द करने के क्रम से भुवनों (लोको) की पंक्ति को उत्पन्न करने वाली तथा नष्ट करने वाली, अनन्त (सहस्र) मस्तकों एवं मुखों वाली, अनन्त नेत्रों वाली एवं अनन्त चरणों वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है ॥६६ ॥

विमर्श -

देवी के नेत्र खोलने मात्र से सभी लोक उत्पन्न होते हैं, तथा नेत्र बन्द करने मात्र से सभी लोक विनष्ट हो जाते हैं। इच्छा-मात्र ही उत्पत्ति एवं नाश का कारण है। श्लोक में सहस्र पद अनन्त अर्थ का उपलक्षक है।

आब्रह्मकीटजननी वर्णाश्रमविधायिनी।
निजाज्ञारूपनिगमा पुण्यापुण्यफलप्रदा ॥६७ ॥

हिन्दी -

हिरण्यगर्भ से लेकर अतीन्द्रिय कीटों की भी जननी, वर्ण और आश्रम की तथा वर्णधर्म एवं वर्णाश्रमधर्म की व्यवस्था करने वाली, तथा वेदादि शास्त्र जिनकी स्वकीय आज्ञारूप हैं उसे, व विहित तथा निषिद्धकर्म से उत्पन्न होने वाले सुख व दुःख-रूप अदृष्ट फल को देने वाली देवी ललिता जी को नमस्कार है ॥६७ ॥

विमर्श -

सभी जीवों की समष्टि-स्थूलरूप हिरण्यमर्भ नामक जीव ब्रह्मा कहलाता है। उसी ब्रह्मा से लोकसृष्टि प्रारम्भ होती है। सृष्टि के कारणीभूत ब्रंह्मादि से लेकर कीट तक की जननी देवी ललिता हैं, क्योंकि ब्रह्मादि भी उन्हीं की आज्ञा से सृष्टि में प्रवृत्त होते हैं। पुण्य = विहित कर्म, अपुण्य = निषिद्ध कर्म, उन दोनों के फल सुख-दुःख हैं, जो अदृष्ट हैं। स्वर्ग और नरक-प्राप्ति रूप फल भी अदृष्ट ही हैं। उसको प्रदान करने वाली देवी पुण्यापुण्यफलप्रदा हैं।

श्रुतिसीमन्तसिन्दूरीकृतपादाब्जधूलिका।
सकलागमसंदोहशुक्तिसंपुटमौक्तिका ॥६८ ॥

हिन्दी -

स्त्रियों के केशविन्यास के मध्य स्थित सिन्दूर के समान श्रुति, उपनिषद् के भागों में तदन्तर्गत रहस्य अर्थों को जिनके चरण कमल की धूलि सिन्दूरवत् प्रतिपादित कर रही है, उस देवी को, तथा साङ्गोपाङ्ग वेद-समूह रूप शुक्तियों से सम्पुटित नासिका के आभरण (मौक्तिक) वाली देवी ललिता को नमस्कार है ॥६८ ॥

विमर्श -

श्रुति स्त्री रूपा है तथा सीमन्त उसका केशविन्यास है। इस कथन के द्वारा रूपक की प्रस्तुति की गई हैं। श्रुतिशब्द के स्त्रीलिङ्ग होने से अप्रस्तुत नायिका के अलङ्करण की प्रतीति होने से समासोक्ति भी है। श्रुति = वेद का ऊपरी भाग उपनिषद् हैं। उन उपनिषदों के रहस्यतर अर्थों को देवी के चरण कमल के रज ने सिन्दूरवत् बना दिया है। अर्थात् उनको अलङ्करण बना दिया है। सकल आगम, अर्थात् वेदों का समूह ही शुक्ति है, उस वेदरूपी शुक्ति में मोती के समान देवी स्थित हैं, यह अर्थ हुआ द्वितीय- पंक्ति का। अर्थात् वेदादि के मध्य देवी का ही महत्वपूर्ण वर्णन है। या वेद समूह-रूप

शुक्ति से देवी का नासिकाभरण सम्पुटित है। अर्थात् वेदादि उनके मुखादि स्वरूप का वर्णन करने में असमर्थ हैं। वे उनके अलङ्कारों के वर्णन तक ही सीमित हैं।

पुरुषार्थप्रदा पूर्णा भोगिनी भुवनेश्वरी।
अम्बिकाऽनादिनिधना हरिब्रह्मेन्द्रसेविता॥ ६९॥

हिन्दी -

धर्म अर्थ काम व मोक्ष इन चार पुरुषार्थों को प्रदान करने वाली, देश काल व वस्तु द्वारा निर्धारण नहीं किए जाने के कारण या उनकी सीमा में नहीं आने योग्य होने से पूर्णा, सुखादिसाक्षात्कार वाली, या नागकन्यारूपा, चौदह लोकों की स्वामिनी, अम्बिका = जगन्माता, जन्म-मृत्यु रहित, (अनादिनिधना) विष्णु ब्रह्मा तथा इन्द्र से सेवित देवी श्रीललिता जी को नमस्कार है ॥६९॥

विमर्श -

देश, कालादि से परिच्छिन्न नहीं होने के कारण देवी पूर्णा हैं। या पंचमी दशमी पंचदशी तिथि जो पूर्णा तिथि है, तत्स्वरूपा हैं। या— शुक्लपक्ष की चतुर्दशी-रात्रि-स्वरूपा हैं या— नदी-विशेष रूपा हैं। ये सभी अर्थ पूर्ण शब्द के हैं। अम्बिका = इच्छा, ज्ञान एवं क्रियाशक्ति की समष्टि, अम्बिका है, भारती, पृथ्वी व रुद्राणी जगन्माता हैं, इच्छाशक्ति-रूपा भारती, ज्ञानशक्ति-रूपा पृथ्वी व क्रिया-शक्ति-रूपा रुद्राणी, इन तीनों की समष्टि अम्बिका हैं। या— रात्रि-रूपा, निद्रारूपा देवी अम्बिका है। "अम्बिका कैतवे सिद्धे निद्रायां निशि कीर्त्यते"। (विश्वकोष)

नारायणी नादरूपा नामरूपविवर्जिता।
ह्रींकारी ह्रीमती हृद्या हेयोपादेयवर्जिता॥ ७०॥

हिन्दी -

नर के अपत्य नारायण = शिव, की पत्नी या विष्णु की भगिनी, नादस्वरूपा, अस्ति, भाति, प्रिय, नाम एवं रूप इन पाँच अंशों में नाम और रूप से रहित, लज्जाकरी "ह्रीं" इस माया बीज-स्वरूप वाली (भुवनेश्वरी बीज-स्वरूपा) लज्जायुक्ता, भक्तों, मुनियों के हृदय में निवास करने वाली या स्पृहणीया; त्याज्य एवं ग्राह्य-भाव से रहित देवी श्रीललिता जी को नमस्कार है ॥६०॥

विमर्श -

नारायणी- नरस्यापत्यम् नारायणः, शिव या विष्णु। उसकी यह, नारायणी हुई। अथवा 'नराणाम् अयनं यस्मात्' इस व्युत्पत्ति से नारायण बना। नयतीति नरः, नृ नये से बना। नर परमात्मा है। नर का यह जीव "नार" है। या नर से उत्पन्न तत्त्व नार है। नार ही अयन है जिसका वह नारायण हुआ। नारायण की पत्नी नारायणी, या पुंयोगात् सूत्र की प्रवृत्ति पितृ-पुत्री भावादि सम्बन्ध में भी होने से नारायण की भगिनी नारायणी हुई। या नर-नारियों को उत्पन्न करने वाली देवी नारायणी है। नादरूपा = ह्रींकार-आदि में बिन्दु के ऊपर अर्धचन्द्र रोधनी आदि शक्ति को व्याप्त करने वाली समनोन्मनी के नाम से सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, एवं सूक्ष्मतम आठ वर्णों में तीसरा वर्ण नाद है। यह करोड़ों सूर्य की प्रभावाला असंख्य पुरों से घिरा है। उसमें देवी का ध्यान किया जाता है। अतः देवी नादरूपा है। "अस्ति भाति प्रियं नाम रूपम्" इस पंचांश में आद्य तीन, ब्रह्म-स्वरूप हैं शेष दो जगद्रूप हैं। जगद्रूप = नाम, रूप, मिथ्या माने गये हैं। देवी उससे रहित हैं।

राजराजार्चिता राज्ञी रम्या राजीवलोचना।
रञ्जनी रमणी रस्या रणत्किङ्किणिमेखला॥७१॥

हिन्दी -

राजराज = मनु, कुबेर, और इन्द्रादि द्वारा पूजिता, या कुबेरादि-विद्या-स्वरूपा, (कामेश्वर की महिषी होने से) महारानी, सौन्दर्यमयी, कमल, हिरण, या मीन जैसी नेत्रों वाली, भक्तों को प्रसन्न करने वाली, या स्फटिक-समान परमशिव, को जपाकुसुमादि की तरह, सान्निध्यमात्र से आनन्दित करने वाली, भक्तों को रमण कराने वाली, योगियों के आस्वादन-योग्य रस के सदृश, तथा मधुर शब्द करती छोटी घंटियों से युक्त मेखला वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥७१॥

विमर्श -

राजराज नाम है मनु का, कुबेर का और इन्द्रादि का, उनसे पूजित हैं देवी। राजीव पद का अर्थ कमल, हिरण और मत्स्य है। "राजीवाख्या मृगे मत्स्ये पद्मे राजोपजीविनीति" विश्वः। रसस्वरूपा होने से भक्तों के लिए रस्या हैं। आनन्ददायिका हैं।

रमा राकेन्दुवदना रतिरूपा रतिप्रिया।
रक्षाकरी राक्षसघ्नी रामा रमणलम्पटा ॥७२ ॥

हिन्दी -

श्रीरूप होने से रमा = लक्ष्मी-स्वरूपा, पूर्णिमा के चन्द्र के समान मुखवाली, कामपत्नी रति के समान संसार को मोहित करने वाले रूप से युक्त, कामपत्नी रति को प्रिय मानने वाली, भक्तों की रक्षा करने वाली, राक्षसों को मारने वाली, स्त्रीमात्ररूपा (रामा) या योगियों को रमण कराने वाली तथा रमण पुरुष = कामेश्वर में लालसा युक्त देवी श्री ललिता को नमस्कार है ॥७२ ॥

विमर्श -

रमणलम्पटा = जितने स्त्री-रूप हैं वे गौरी की विभूतियाँ हैं, तथा जितने पुरुष रूप हैं, वे शंकर, रुद्र हैं। इस तरह रमण कराने वाला पुरुष शिव-कामेश्वर है। उस कामेश्वर में देवी की लालसा है, यह अर्थ निकला। लम्पटा का अर्थ सतृष्ण व लालसा है। देवी निखिल स्त्री रूप हैं, अतः यह भी अर्थ ध्वनित होता है कि अपने अपने रमणों = पतियों में, या संभोग में या क्रीडा में आसक्तिरूपा, लालसा रूपा देवी ही हैं।

काम्या कामकलारूपा कदम्बकुसुमप्रिया।
कल्याणी जगतीकन्दा करुणारससागरा ॥७३ ॥

हिन्दी -

ज्ञान से प्राप्त होने के कारण योगियों के लिए काम्य, या कृष्णपक्ष की द्वादशी-रात्रि-रूपा, कामदेव की जगन्मोहिनी कला के समान, या काम = कामेश्वर, की कला रूपा, कदम्बकुसुम को चाहने वाली, मंगल-स्वरूपा (कल्याणी) संसार की मूलरूपा (कन्द) व करुणा-रस का सागर (सागरों से भी अधिक करुणामयी) देवी श्री ललिता को नमस्कार है ॥७३ ॥

विमर्श -

ज्ञानी मुमुक्षुओं द्वारा देवी-दर्शन की कामना की जाती है। अतः वे काम्या हैं। कामकलारूपा- उपर्युक्त अर्थ के अतिरिक्त- बिन्दुत्रय में प्रथम बिन्दु काम है व अन्तिम बिन्दु कला है। मंसार का मूल होने से यह जगतीकन्दा है।

कलावती कलालापा कान्ता कादम्बरीप्रिया।
वरदा वामनयना वारुणीमदविह्वला ॥७४॥

हिन्दी -

चौंसठ कलावाली, मधुर वचन बोलने वाली, कमनीया, (कान्ता) या ब्रह्म-सिद्धान्त वाली, उत्तम मदिरा को चाहने वाली, ब्रह्मादि तथा भक्तों को वर देने वाली, सुन्दर नयनों वाली, (या वाम मार्ग पर ले जाने वाली) मदिरा के मद से विह्वला या मदिरा पीने वाले भी जिस देवी के कारण अविह्वल हैं, उस देवी को नमस्कार है ॥७४॥

विमर्श -

कलालापा-कलःआलापः यस्याः, मधुर बोलने वाली। कं लालापं यया सा, ब्रह्म, लार के समान सुलभ है जिससे वह, या, कं ब्रह्म, तस्य लालावत्, आपः-अतिसुलभा, प्राप्तिर्यस्याः। ब्रह्म की लार के समान अति-सुलभ प्राप्ति वाली। ये सभी अर्थ हो सकते हैं। कान्ता = कमनीया, या, कं = ब्रह्म, अन्तः सिद्धान्तः, यस्याः, ब्रह्म सिद्धान्त स्वरूपिणी या कृष्णपक्ष की एकादशी रात्रिरूपा, ये सभी अर्थ हो सकते हैं। वरदा का अर्थ "उत्तान हाथ" भी है। "उत्तानो वरदः पाणिरेष देव्याः सदैव तु"।। वामनयना = वाम, कर्मजन्य-फल को भी कहते हैं। कर्मजन्य फल को प्राप्त कराने वाली, या, वाम = मार्गविशेष, पर ले जाने वाली, ये दो अन्य अर्थ भी वामनयना पद के हो सकते हैं। वारुणीमदविह्वला = वारुण्याः मदः, वारुणीमदः, तेन विह्वला, इस विग्रह के अतिरिक्त - वारुणी अस्ति अस्य इति वारुणीमान् = शेषः, तद्वत् अविह्वला। शेष के समान अविचला। या, वारुणीमन्तः अविह्वला यया। या, वारुणीमान् - वायुदैवत नाडी को जीतने वाले, तद्वद् अविह्वला।

विश्वाधिका वेदवेद्या विन्ध्याचलनिवासिनी।
विधात्री वेदजननी विष्णुमाया विलासिनी ॥७५॥

हिन्दी -

क्षिति से लेकर शिव पर्यन्त विश्व है, उस विश्व से भी अधिक उत्कृष्ट, ऋग्यजुस्साम और अथर्ववेद द्वारा ज्ञेय स्वरूप वाली, विन्ध्याचल पर्वत पर निवास करने वाली, संसार को धारण या पोषण करने वाली, या विधाता की पत्नी (विधात्री) वेदों की जननी, देश काल से अपरिच्छिन्न व्यापनशील विष्णु की भी आवरणकर्त्री-माया, (सीमित करने वाली) विक्षेपशक्तियुक्ता (विलासिनी) देवी श्रीललिता जी को नमस्कार है ॥७६॥

विमर्श -

शैवागम के अनुसार क्षिति से लेकर शिव पर्यन्त छत्तीस तत्वों का विश्व है। यह देवी उससे अतिरिक्त तथा उत्कृष्ट है, क्योंकि यह उन तत्वों से संपृक्त होकर भी पृथक् अस्तित्व वाली है। विधात्री = धृञ् धारणपोषणयोः, धारण करने वाली या पोषण करने वाली शक्ति, या विधाता की पत्नी। विष्णुमाया = व्यापनशील, देशकाल से भी सीमित न करने योग्य, यह विष्णु का अर्थ है। उस असीमित को भी सीमित करने वाली यह माया है। माया का अर्थ है सीमित करना, आच्छादित करना। अत एव दुर्गा सप्तशती में "विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः" इस पद्यांश में भी इन्हें विष्णुमाया कहा गया है।

क्षेत्रस्वरूपा क्षेत्रेशी क्षेत्रक्षेत्रज्ञपालिनी।
क्षयवृद्धिविनिर्मुक्ता क्षेत्रपालसमर्चिता ॥७६ ॥

हिन्दी -

छत्तीस तत्त्वात्मक-शरीर (क्षेत्र) वाली, क्षेत्रेश = शिव की पत्नी, शरीर (क्षेत्र) एवं जीव (क्षेत्रज्ञ) को पालने वाली, क्षय और वृद्धि नामक भावविकारों से सर्वथा रहित, क्षेत्रपाल (शिवावतार-विशेष) द्वारा सम्यक् अर्चिता देवी श्री ललिता को नमस्कार है ॥७६ ॥

विमर्श -

क्षेत्र नाम है काम रूप आदि का, तथा पृथिव्यादि-शिवान्त छत्तीस तत्त्वात्मक शरीर का। वह ही स्वरूप है जिसका वह क्षेत्रस्वरूपा देवी है। क्षेत्र नाम है शरीर का तथा क्षेत्रज्ञ जीव है। कहा गया है "इदं शरीरं वसुधे क्षेत्रमित्यभिधीयते। एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः" ॥ (विष्णुस्मृति) क्षेत्रपाल नाम है शिवावतार-विशेष का। कथानक इस प्रकार है कि दारुकासुर के वध के लिए शिव ने काली को उत्पन्न किया। काली ने दारुक को मारा, फिर भी उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ। काली के क्रोध को शान्त करने के लिए शिव, बालक-रूप धारण कर रोने लगे। काली ने उस बच्चे को स्तनपान कराया। बच्चे ने दूध पीने के साथ ही देवी का क्रोध भी पी लिया। वही बालक "क्षेत्रपाल" है।

विजया विमला वन्द्या वन्दारुजनवत्सला।
वाग्वादिनी वामकेशी वह्निमण्डलवासिनी ॥७७ ॥

हिन्दी -

विशेष जय वाली, (संविद्रूपा) आणवादि मलों से रहित (शुद्ध) वन्दना के योग्य, वन्दना करने वाले (वन्दारु) लोगों पर वात्सल्य रखने वाली, वाणी बोलने वाली देवतारूपा, सुन्दर केशों वाली, या वामकेश तन्त्र में प्रतिपादित ईश्वरी, वह्निमण्डल में निवास करने वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है ॥७७ ॥

विमर्श -

वामकेशी = वामा: केशा: यस्या: सा वामकेशी, सुन्दर केशों वाली, या, वामका का ईश, शिव, उसकी स्त्री। या, वामकेश द्वारा प्रतिपादित तन्त्रशास्त्र से प्रतिपाद्य-भाव से सम्बन्ध रखने वाली देवी हुई वामकेशी। वह्निमण्डलवासिनी = वह्नि शब्द सोम, सूर्य और अग्निमण्डल का वाचक है। उन तीनों मण्डलों में रहने वाली या मूलाधार अथवा परमाकाश में विद्यमान वह्निमण्डल में निवास करने वाली।

भक्तिमत्कल्पलतिका पशुपाशविमोचनी।
संहृताशेषपाखण्डा सदाचारप्रवर्तिका ॥७८ ॥

हिन्दी -

भक्तिवाले लोगों के लिए (अभीष्ट-दायिनी) कल्पलता के समान, आणवादिमल युक्त विद्याविहीन (पशु) लोगों को पाश- (देहात्मा की अपनी ख्याति, तथा पाप-पुण्य आदि) से मुक्त करने वाली या विद्याविहीन लोगों को भूख और प्यास से मुक्त करने वाली, वेदार्थ को दूषित करने वाले समस्त लोगों का नाश कर चुकी, अत एव सदाचार (उत्तम आचरणो) की प्रवर्तिका देवी श्रीललिता को नमस्कार है ॥७८ ॥

विमर्श -

भक्ति है जिसमें वह भक्तिमान्, भक्तिमानों के लिए कल्पलता के समान अभीष्ट वस्तुओं को देने वाली होने से देवी भक्तिमत्कल्पलतिका हैं। या, भक्तिमत्कल्प = अपूर्ण भक्तों की, लतिका = विस्तार करने वाली हैं देवी। पशुपाशविमोचनी = अभेद-ज्ञानरूप विद्या से हीन को पशु कहते हैं, या, आणवादि-मलों से युक्त ब्रह्मादि स्थावरान्त जीव पशु के समान धर्मवाला होने से पशु है। उनको पाश से = बन्धन के साधन अविद्या से, मुक्त करने वाली, या, पा = पाने एवं अश् = भक्षणे से क्विप् कर पा अश् बना। हलन्त से टाप् कर समाहारद्वन्द्व करने से पाश बनेगा। विद्याविहीनों को (पशु को) प्यास एवं भूख से मुक्त करने वाली हैं देवी।

तापत्रयाग्निसंतप्तसमाह्लादनचन्द्रिका।
तरुणी तापसाराध्या तनुमध्या तमोपहा॥ ७९॥

हिन्दी -

आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक इन तीन तापों को उत्पन्न करने वाली संसाराग्नि से संतप्त लोगों को सम्यक् आह्लादित करने में (ताप निवारण में) चन्द्रिका के समान, जरा, मरण से रहित नित्य तरुणीरूपा, तपस्वियों द्वारा आराधना की जाने वाली, क्षीणकटि वाली, तथा भक्तों की अविद्या-वृत्तियों को (तम) नष्ट करने वाली देवी को नमस्कार है॥ ७९॥

विमर्श -

आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक ये तीन ताप हैं, और संसार ही इन तापों को उत्पन्न करने वाला अग्नि है। संसाराग्नि में संतप्त लोगों को शीतलता प्रदान करने वाली देवी हैं। जैसे सूर्यादि के ताप से तप्त लोगों को चान्दनी शीतलता प्रदान करती है, उसी तरह देवी भी ताप हरण कर आह्लादित करती हैं।

चितिस्तत्पदलक्ष्यार्थी चिदेकरसरूपिणी।
स्वात्मानन्दलवीभूत-ब्रह्मानन्दसन्ततिः॥ ८०॥

हिन्दी -

ज्ञानस्वरूपा, (चिति) 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्य में स्थित 'तत्' पद के लक्ष्यार्थ से सम्बन्धित, ज्ञान से अभिन्न-स्वरूप वाली (चिदेकरसरूपिणी) स्वीय आत्मभूत आनन्द के द्वारा सृष्टिकर्ता ब्रह्मादि के आनन्द समूहों को लव = अंशमात्र, प्रदान करने वाली देवी श्रीललिता जी को नमस्कार है॥ ८०॥

विमर्श -

देवी, चिति = अविद्याविरोधी ज्ञानस्वरूपा मानी गई है तथा तत्पदलक्ष्यार्था - 'तत्त्वम् असि' इस महावाक्य में 'तत्' पद का लक्ष्यार्थ ब्रह्म है। जीवात्मा = अल्पज्ञ को, तत् = सर्वात्मा, सर्वज्ञ, माना गया है। भिन्न वस्तुओं में ऐक्य सम्पादित करने हेतु लक्षणा मानी गई है। देवी को ब्रह्मस्वरूपा माना गया है। अत एव तत् इस पद से लक्षणीय अर्थवाली देवी है। स्वात्मानन्द = देवी का अपना स्वरूप 'आनन्द' है। सृष्टि के कर्तृत्व आदि धर्मों से युक्त ब्रह्मा आदि का आनन्द भी देवी के आनन्द से लव-मात्र है। देवी का आनन्द सागर है, अन्यों का आनन्द सागर की बूंद सदृश है। अत एव कहा गया है कि - "एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति।"

परा प्रत्यक्चितीरूपा पश्यन्ती परदेवता।
मध्यमा वैखरीरूपा भक्तमानसहंसिका॥ ८१॥

हिन्दी -

मूलाधार में उत्पन्न भावात्मक कारणबिन्दु, जिसे शब्दब्रह्म कहते हैं, वही परा है। देवी परा वाणी रूपा हैं, अव्यक्त संज्ञक ब्रह्मस्वरूपा हैं देवी, देवी स्फुटतर अवयवों वाली पश्यन्ती वाग्रूपा हैं, या अपनी आत्मा में सभी को देखने के कारण पश्यन्ती हैं, परदेवता = उत्कृष्ट, उपास्य ईश्वररूपा हैं, हृदयस्थ वाणी मध्यमारूपा हैं, कण्ठ तालु आदि स्थानों से स्पष्ट अवयवों की प्रतीति वाली वाणी वैखरी रूपा हैं, भक्तों के मानस = मनोरूप सरोवर, में हंस के समान विराजमान हैं। ऐसे स्वरूप वाली देवी ललिता को नमस्कार है॥ ८१॥

विमर्श -

परावाङ् मूलचक्रस्था पश्यन्ती नाभिसंस्थिता।
हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरीकण्ठदेशगा॥

तन्त्रशास्त्र और अन्य शास्त्रों में भी निर्गुण ब्रह्म को शब्दब्रह्म माना है, तथा उसी से संसार की उत्पत्ति मानी है। शब्दब्रह्म के चार विभाजन किए गये हैं - (१) परा (२) पश्यन्ती (३) मध्यमा (४) वैखरी।

मूलचक्र में स्थित सभी का कारणबिन्दु, परावाक् (शब्द) है। यह स्पन्दशून्या है। यही वाक् नाभि पर्यन्त आती हुई वायु के द्वारा अभिव्यक्त होकर तथा विमर्श मन से युक्त होकर पश्यन्ती कहलाती है। यहाँ सामान्य स्पन्द है, तथा यह प्रकाशरूप कार्यबिन्दु है। वही शब्दब्रह्म (वाक्) नाभि से ऊपर आती वायु के द्वारा हृदय देश में अभिव्यक्त होता हुआ तथा निश्चयात्मिका बुद्धि से युक्त होकर मध्यमा कहलाता है। यह विशेष- स्पन्दों वाला तथा नाद की स्पष्टता लिए है। जपादि के समय में इसकी अनुभूति हम कर सकते हैं। पुनः यह वाक् (शब्दब्रह्म), वायु द्वारा मुख तक लाई जाती हुई तथा कण्ठ, तालु आदि स्थानों से अभिव्यक्त होकर अकार आदि वर्ण रूप को ग्रहण करती हुई वैखरी कहलाती है। यह सुनाई पड़ती है। यह बीजात्मक प्रकाश है। यह सब स्वरूप देवी श्रीललिता का ही है।

कामेश्वरप्राणनाडी कृतज्ञा कामपूजिता।
शृङ्गाररससम्पूर्णा जया जालन्धरस्थिता॥ ८२॥

हिन्दी -

कामेश्वर = परमशिव, की जीवननाड़ी के समान, किये गये सुकृत एवं दुष्कृत (पुण्यकर्म, पापकर्म) को जानने वाली, या भक्तों द्वारा की गई उपासना के अनुरूप फलदान को जानने वाली, काम = मन्मथ, से पूजित, शृङ्गार-रस से परिपूर्ण, या आवरक-विद्या से युक्त होती हुई भी ब्रह्ममयी, जयस्वरूपा, तथा जालन्धर नामक पीठविशेष में स्थित, देवी श्रीललिता को नमस्कार है ॥ ८२ ॥

विमर्श -

शृङ्गाररससम्पूर्णा = शृंगार नामक रस से परिपूर्ण, या शृङ्ग = प्रधानभूत, अररम् = कपाट या आवरका-विद्या है, जिसके पास वह हुई शृंगाररा, ससम्पूर्णा - सम्पूर्ण = ब्रह्म, उसके साथ ससम्पूर्णा, प्रधानभूत आवरका-विद्या के साथ ब्रह्मयुता। सगुण-ब्रह्म व निर्गुण-ब्रह्म रूपा है देवी, यह अर्थ भी इस पद का हुआ। जालन्धर-पीठ में विष्णुमुखी देवी प्रतिष्ठित हैं, ऐसा वर्णन पाद्मशास्त्र में आया है।

ओड्याणपीठनिलया बिन्दुमण्डलवासिनी।
रहोयागक्रमाराध्या रहस्तर्पणतर्पिता ॥ ८३ ॥

हिन्दी -

ओड्याण पीठ पर निवास करने वाली, सम्पूर्ण आनन्दमय बिन्दुचक्र में वास करने वाली, अथवा ब्रह्मरन्ध्र में रहने वाली, एकान्त में आधार-आदि चक्र पर उपासकों द्वारा किये जा रहे भावनामय याग के क्रम से आराधना-योग्य, तथा मन्त्रार्थध्यान पूर्वक नानाविध द्रव्यों से तृप्त की गई देवी श्रीललिता जी को नमस्कार है ॥ ८३ ॥

विमर्श -

सर्वानन्दमय चक्र को बिन्दु मण्डल कहते हैं, या बिन्दु कहते हैं शुक्ल को, उसका मण्डल है, ब्रह्मरन्ध्र। उसमें निवास करने वाली देवी है। रहोयाग = एकान्त में किया गया भावनामय याग। यह याग आधारादिचक्र पर किया जाता है। या, एकान्त-संगति का नाम है रहोयाग। रहोयाग में क्रम से = पादविक्षेप, से प्राप्त करने योग्य, यह अर्थ भी निकलता है। रहस्तर्पण का अर्थ है - मन्त्रार्थविभावन, मन्त्रार्थध्यान पूर्वक नानाविध द्रव्यों से तर्पित हैं देवी।

सद्यः प्रसादिनी विश्वसाक्षिणी साक्षिवर्जिता।
षडङ्गदेवतायुक्ता षाड्गुण्यपरिपूरिता ॥ ८४ ॥

हिन्दी -

रहोयाग एवं रहस्तर्पण आराधनाओं से शीघ्र प्रसन्न होने वाली, (स्वरूप बोध के कारण) सम्पूर्ण संसार को देखने वाली, सभी की साक्षिणी होने से किसी साक्षी के बिना, हृदय, शिर, शिखा, नेत्र, कवच, एवं अस्त्र, इन अङ्गरूपी देवताओं की शक्ति से युक्त, अथवा छः अंगों के अधिष्ठाता देव महेश्वर से युक्त, एवं ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, तथा वैराग्य, इन (पुराणोक्त) छः गुणसमूह से पूरित, या (कामन्दकोक्त) संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव, तथा समाश्रय, इन छः गुणों से परिपूर्ण देवी श्रीललिता को नमस्कार है ॥ ८४ ॥

नित्यक्लिन्ना निरुपमा निर्वाणसुखदायिनी ।
नित्या षोडशिकारूपा श्रीकण्ठार्धशरीरिणी ॥ ८५ ॥

हिन्दी -

नित्य दया से आर्द्र, प्रतिमानरहित, अपरिमित सुख को देने वाली, या निर्बाण- (अशरीरी इयत्ता रहित) सुख को देने वाली, कामेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी आदि नित्या षोडशिकाओं के स्वरूप वाली, तथा श्रीकण्ठ = शिव के अर्ध-शरीर वाली (शिव के आधा शरीर से युक्त) देवी श्रीललिता को नमस्कार है ॥ ८५ ॥

विमर्श -

निर्वाण का अर्थ अपरिमित है। या निर्गतं बाणं = शरीरम्, यस्मिन् तत्। जिसमें शरीर न हो ऐसा अशरीरी सुख देने वाली, इयत्ता की सीमा से रहित, असीमित सुख देने वाली। श्रीकण्ठ का अर्थ है शिव। श्रीः = विष, है कण्ठ में जिसके वह। उसका आधा शरीर है शरीर जिस देवी का, वह श्रीकण्ठार्धशरीरिणी हुई।

प्रभावती प्रभारूपा प्रसिद्धा परमेश्वरी ।
मूलप्रकृतिरव्यक्ता व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ॥ ८६ ॥

हिन्दी -

अणिमादि आवरणदेवता (प्रभा) वाली, गुणस्वरूपा, अथवा सूर्यादि की अपेक्षया अधिक प्रभास्वरूपा, प्रकाशकान्तर की अपेक्षा नहीं होने से प्रसिद्ध, उत्कृष्ट स्वामिनी, (परमेश्वरी) संसार के कारणभूत ईश्वर की स्वभावभूता, (प्रकृति) या मूल = श्रीविद्यामन्त्र, की प्रकृति = कारणभूता (प्रकाश एवं

विमर्श नामक दो अक्षर रूपा) अव्यक्ता = मायारूपा, तथा व्यक्त = कार्य, एवं अव्यक्त = कारण, इन दोनों का स्वरूप, देवी श्री ललिता को नमस्कार है ॥ ८६ ॥

विमर्श -

अणिमादि आवरणदेवता को प्रभा कहते हैं, तथा किरणों को व गुणों को भी। अतः अणिमादि आवरणदेवता का स्वरूप देवी है, तथा प्रभास्वरूपा है। मूलप्रकृतिः = जगत् के कारण ईश्वर को मूल कहते हैं, श्रीविद्यामन्त्र को भी मूल कहते हैं। ईश्वर की स्वभावभूता (प्रकृति) है या— श्रीविद्यामन्त्र का प्रकाश व विमर्श नामक प्रकृति है। या— सांख्यमत प्रसिद्ध मूलप्रकृति = सत्त्व, रजस् एवं तमोगुण की साम्यावस्था है। कार्यरूप में व्यक्त-रूप वाली तथा कारण-रूप में अव्यक्त रूप वाली है। माया रूप में तो अव्यक्त ही है।

व्यापिनी विविधाकारा विद्याविद्यास्वरूपिणी।
महाकामेशनयनकुमुदाह्लादकौमुदी ॥ ८७ ॥

हिन्दी -

संसार को व्याप्त करने वाली, काली तारा इत्यादि भिन्न-भिन्न आकार वाली, विद्या और अविद्या इन दोनों की स्वरूप वाली, (मुक्तिदायक = विद्या, बन्धन वाला ज्ञान = अविद्या) या बन्ध-मुक्ति-स्वरूप वाली, परमशिव के नयनरूप रक्तकमल (कुमुद) के खिलने में चन्द्रिका के समान स्थित, देवी श्रीललिता जी को नमस्कार है ॥ ८७ ॥

भक्तहार्दतमोभेदभानुमद्भानुसन्ततिः।
शिवदूती शिवाराध्या शिवमूर्तिः शिवङ्करी ॥ ८८ ॥

हिन्दी -

भक्तों के हृदय में उत्पन्न हो रहे आवरण शक्तिमय अज्ञान (तम) को नष्ट करने में सूर्य की किरणों के समूह की भाँति स्थित, शिव-रूप दूत वाली, शिव से आराधित, शिवरूप देहवाली, (शिव और शक्ति में अभेद होने के कारण) या, मङ्गलमय-शरीर वाली, या, मोक्षरूपा, भक्तों का कल्याण करने वाली, या, भक्तों को मोक्ष देने वाली, देवी श्रीललिता को नमस्कार है ॥ ८८ ॥

विमर्श -

शिवमूर्तिः = शिव है मूर्ति (शरीर) जिसकी वह, शिव और शक्ति की अभिन्नता होने से देवी शिवमूर्ति हैं। अथवा शिवा = मङ्गलमयी, मूर्ति

= शरीरवाली, अथवा शिवः = मोक्षः, एव मूर्तिः = रूपम्, यस्याः, मङ्गलदायिनी, या मोक्षदायिनी हैं देवी, यह अर्थ भी निकलता है।

शिवप्रिया शिवपरा शिष्टेष्टा शिष्टपूजिता।
अप्रमेया स्वप्रकाशा मनोवाचामगोचरा॥ ८९॥

हिन्दी -

शिव की प्रिया, शिव से भी उत्कृष्ट, शास्त्र-विहित कर्म को चाहने वाली, शास्त्रविहित कर्मों से पूजित, या, शिष्ट-व्यक्तियों से पूजित, प्रमा के अयोग्य (अपरिच्छिन्न) या, ब्रह्म विष्णु आदि के द्वारा प्रमेया, स्वप्रकाशरूपा, मन और वाणी का अविषय, (वाणी और मन का विषय जो नहीं हो सकती है) देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ ८९॥

विमर्श -

अप्रमेया = प्रमा के योग्य जो नहीं है। या; अकारेण = ब्रह्म विष्णु आदि को "अ" मानते हैं, उससे, प्रमा के योग्य। स्वप्रकाशा = आत्मरूप प्रकाशवाली, परा से प्रकाशन योग्य। जो मन और वाणी का विषय न बन सके वह "मनोवाचामगोचरा" है।

चिच्छक्तिश्चेतनारूपा जडशक्तिर्जडात्मिका।
गायत्री व्याहृतिः सन्ध्या द्विजवृन्दनिषेविता॥ ९०॥

हिन्दी -

अविद्यानिवारक चित्-शक्ति, या औपम्यशक्ति, चैतन्यस्वरूपा, पृथिव्यादि जड-पदार्थों को धारण आदि करने वाली शक्ति, (माया का परिणाम विशेष जडशक्ति है) दृश्यमात्र स्वरूप वाली (जडात्मिका-जड = दृश्यमात्र, आत्मा = स्वरूप है जिसकी, वह माया) चौबीस अक्षरों वाली गायत्री-स्वरूपा (गायत्री = गायन्तं त्रायते, गानकर्ता की रक्षा करती है।) व्याहृति रूपा = उच्चारणरूपा, या; मन्त्रविशेषरूपा, सन्ध्यास्वरूपा, (सम्यक् ध्यायन्ति अस्याम् इति सन्ध्या, सम्यक् ध्येयत्वात् वा सन्ध्या) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य-समूहों से अतिशय सेवित देवी श्रीललिता जी को नमस्कार है॥ ९०॥

तत्त्वासना तत्त्वमयी पञ्चकोशान्तरस्थिता।
निःसीममहिमा नित्ययौवना मदशालिनी॥ ९१॥

हिन्दी -

छत्तीस तत्त्वात्मक-आसन वाली, या छत्तीस तत्त्वों को बाहर करने वाली, (तत्त्वानि अस्यति, क्षिपति इति तत्त्वासना) ईश्वर और जीव रूपा, (तत्त्वम् - तत् = ईश्वर, त्वम् = जीव) या निर्गुण ब्रह्मस्वरूपा, शुभदायक शिव की पत्नी, (अयी) अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, तथा आनन्दमय इन पाँच कोशों के मध्य में स्थित, या श्रीविद्या, परंज्योति, निष्कलशाम्भवी, अजपा, और मातृका इन पाँच मन्त्रदेवताओं के मध्य में स्थित, असीम-महिमा वाली (तीनों कालों में रज के अभाव से) नित्य-यौवन वाली, स्वात्मानन्द से शोभने वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ ९१ ॥

विमर्श -

छत्तीस तत्त्वों के ऊपर होने से, या छत्तीस तत्त्वों को बाहर फेंकने से देवी 'तत्त्वासना' है। तत् = ईश्वर, त्वम् = जीव, अयी - शिवपत्नी, ये तीन स्वरूप देवी के हैं। तत्त्वमयी = निर्गुण ब्रह्म-रूपा हैं। अन्नमयादि कोशों के मध्य अन्तःसाक्षी रूप में स्थित हैं, या उन कोशों के मध्य (आनन्दमय कोश के मध्य) स्थित हैं। या श्रीविद्या-रूपी बिन्दु में देवी श्रीललिता जी स्थित हैं।

मदघूर्णितरक्ताक्षी मदपाटलगण्डभूः।
चन्दनद्रवदिग्धाङ्गी चाम्पेयकुसुमप्रिया॥ ९२ ॥

हिन्दी -

स्वात्मानन्द के मद से चञ्चल, रक्त-नयनों वाली, या स्वात्मानन्द के मद के कारण बाह्य-विषयों से विमुख रक्तनेत्रों वाली, आनंद-मद के कारण ही रक्त-श्वेत कपोल वाली, चन्दन से लिप्त अंगों वाली, चम्पा के पुष्पों को चाहने वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ ९२ ॥

विमर्श -

मद का अर्थ आनन्द एवं मद्य दोनों है। घूर्णित का अर्थ चञ्चल तथा बाह्यविषयों की विमुखता है। अतः प्रथम पद का अर्थ - मद्य-पान के कारण चञ्चल रक्त नेत्रों वाली या आनन्द के मद से चञ्चल नेत्रों वाली या बाह्य विषयों से विमुख रक्तनयनों वाली, ये हो सकते हैं। मदपाटलगण्डभूः = मद्यपान से पाटलवर्ण की गालवाली, या आनन्दमद के कारण रक्तश्वेत कपोल प्रदेश (गाल) वाली, अथवा मद = कस्तूरी, पाटल = गुलाब पुष्प, इन दोनों से युक्त मकरिकाचित्रित कर्णालंकारों से युक्त कपोल वाली।

कुशला कोमलाकारा कुरुकुल्ला कुलेश्वरी।
कुलकुण्डालया कौलमार्गतत्परसेविता॥ ९३॥

हिन्दी -

सृष्टिकर्म में कुशल, कोमल अवयव-विन्यास (आकार) वाली, कुरुकुल्ला नाम वाली, कुल = माता, मान, और मेयसमूहों की स्वामिनी, मूलाधारकर्णिका के छिद्रों में निवास करने वाली या स्वाप (शयन) करने वाली, कुलाचार के पालन में तत्पर लोगों द्वारा सेवित, देवी श्रीललिता जी को नमस्कार है॥ ९३॥

विमर्श -

कुशला = सृष्टिकर्म में निपुण। या - कुः = कुत्सित है, शलः = चन्द्र, जिसके सामने वह देवी। कुरुकुल्ला = यह देवी का नाम है। श्रीपुर में अहंकार और चित्तमय प्राकार के मध्य में विमर्शमय वापी में अधिकृत देवी। कुलेश्वरी = सजातीय माता, मान, और मेय, का समूह 'कुल' कहलाता है। मूलाधार एवं कर्णिका के मध्य स्थित बिन्दु 'कुलकुण्ड' कहलाता है। वही आलय = निवासस्थान, है. जिसका, या कुलकुण्ड में, आ = पूर्णतः, लया = सुषुप्तिवाली।

कुमारगणनाथाम्बा तुष्टिः पुष्टिर्मतिर्धृतिः।
शान्तिः स्वस्तिमती कान्तिर्नन्दिनी विघ्ननाशिनी॥ ९४॥

हिन्दी -

कुमार = कार्तिकेय, और गणेश की माता, तुष्टिरूपा, पुष्टिरूपा, मति = ज्ञानरूपा, धृति = धैर्यरूपा, शान्तिरूपा, स्वस्तिमती = कल्याणकारिणी, कान्तिरूपा, भक्तों को आनन्दित करने वाली, तथा भक्तों के विघ्नों का नाश करने वाली देवी श्रीललिता जी को नमस्कार है॥ ९४॥

तेजोवती त्रिनयना लोलाक्षी कामरूपिणी।
मालिनी हंसिनी माता मलयाचलवासिनी॥ ९५॥

हिन्दी -

तेजो गुणवाली, (आदित्यादि के तेज का आधार होने से तेजोवती) (सोम सूर्य एवं अग्नि रूप) तीन नेत्रों वाली, सुन्दर स्त्रियों के लिए काम-स्वरूपा, या सुन्दर स्त्रियों के लिए भी दर्शनीय रूप वाली, माला धारण करने वाली, या सात वर्षीय कन्यारूपा, हंस-वाहन वाली, मातृकारूपा परमेश्वरी, तथा मलयाचल पर वास करने वाली भगवती श्रीललिता को नमस्कार है॥ ९५॥

विमर्श -

सोम, सूर्य एवं अग्नि, देवी के ये तीन नयन हैं। या, नयन का अर्थ लक्षणा से 'प्रमाण' मानने पर 'प्रत्यक्ष अनुमान व शब्द रूप प्रमाण वाली' यह त्रिनयना पद का अर्थ होगा।

सुमुखी नलिनी सुभ्रूः शोभना सुरनायिका।
कालकण्ठी कान्तिमती क्षोभिणी सूक्ष्मरूपिणी॥ ९६॥

हिन्दी -

सुन्दर मुखवाली, या षोडशी के अङ्ग-रूप में उपास्या सुमुखी नाम वाली, मुख, नेत्र-आदि के कमलतुल्य होने से नलिनी = कमलिनी-रूपा, सुन्दर भ्रू वाली, सौन्दर्यशील होने से शोभना, देवताओं की पूज्या (नायिका) कालकण्ठ = शिव की पत्नी, या, मधुर ध्वनि वाली, कान्तिमती, परमेश्वर को सृष्टि के लिए क्षुब्ध करने के कारण क्षोभिणी, तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म दुर्ज्ञेय रूपवाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ ९६॥

विमर्श -

सुमुखी = षोडशी के अङ्गभूत उपास्य देवता-विशेष भी सुमुखी है। देवी का मुख, नेत्र, कर, और चरण, कमल-सदृश हैं, अतः उनके स्वरूप को ही नलिनी = कमलिनी मान लिया है। कालकण्ठी - कालकण्ठ = शिव, उसकी पत्नी। या, कल ही काल है। कल का अर्थ मधुर है। काल = मधुर है, कण्ठ = कण्ठध्वनि, जिसकी वह। क्षोभिणी - सृष्टि के लिए परमेश्वर को क्षुब्ध करने वाली, या, मन के क्षोभ से किन्हीं गणों को उत्पन्न करने वाली।

वज्रेश्वरी वामदेवी वयोऽवस्थाविवर्जिता।
सिद्धेश्वरी सिद्धविद्या सिद्धमाता यशस्विनी॥ ९७॥

हिन्दी -

जालन्धर-पीठाधीश्वरी वज्रेश्वरी, वामदेव = अर्धनारीश्वरं की पत्नीरूपा, या, कर्मफल (वाम) की अधिष्ठात्री देवी, बाल्यादि अवस्था-विशेषों से रहित, सिद्धों की स्वामिनी, सिद्धविद्यारूपा, या, सिद्ध लोगों की जपयोग्य विद्या, सिद्धों की रक्षा करने वाली माता एवं यश वाली देवी श्रीललिता जी को प्रणाम है॥ ९७॥

विमर्श -

वज्रेश्वरी = जालन्धर-पीठ की देवी का नाम। अथवा श्रीपुर के वज्रमणि निर्मित बारह तोरणों में से ग्यारहवें के मध्य वज्रा नाम की नदी है। उसकी ईश्वरी है यह। वामदेवी = वामेन दीव्यति इति अर्धनारीश्वरः वामदेवः। उसकी यह सुन्दर पत्नी। या, वाम = कर्मफल, उनकी अधिष्ठात्री देवी। या, वामाचार में रत वाम लोगों की देवी = आराध्या।

विशुद्धिचक्रनिलया रक्तवर्णा त्रिलोचना।
खट्वाङ्गादिप्रहरणा वदनैकसमन्विता॥ ९८॥

हिन्दी -

कण्ठ में स्थित षोडशदल-कमल (विशुद्धिचक्र) पर रहने वाली, आरक्त = पाटल, वर्णवाली, तीन नेत्रा वाली, खट्वा = खाट, के अङ्ग पाए आदि शस्त्रवाली, (या, दण्ड पर आरोपित नरमुण्ड वाली) तथा एक मुख से युक्त (एकमुखी) श्रीललिता जी को नमस्कार है॥ ९८॥

पायसान्नप्रिया त्वक्स्था पशुलोकभयङ्करी।
अमृतादिमहाशक्तिसंवृता डाकिनीश्वरी॥ ९९॥

हिन्दी -

पयःपक्व अन्न = (पायसान्न) खीर को पसन्द करने वाली, त्वचा रूप धातु में रहने वाली, अद्वैतविद्याविहीन लोगों के लिए भय देने वाली, अमृता आदि सोलह महाशक्तियों से घिरी हुई, तथा डाकिनी-चक्र की अधिष्ठात्री, डाकिनी नामक स्वामिनी, श्रीललिता जी को नमस्कार है॥ ९९॥

विमर्श -

पशुलोकभयङ्करी = दुष्टहृदय को पशु कहते हैं, या अद्वैतविद्या-विहीन लोग पशु हैं, उन दुष्ट हृदयों के लिए या अद्वैतविद्याहीन लोगों के लिए देवी भय देने वाली हैं।

अनाहताब्जनिलया श्यामाभा वदनद्वया।
दंष्ट्रोज्ज्वलाऽक्षमालादिधरा रुधिरसंस्थिता॥ १००॥

हिन्दी -

हृदय में स्थित द्वादश-दल कमल (अनाहतचक्र) पर रहने वाली, (योगिनी रूपा) श्याम-कान्ति वाली, या षोडशवर्षीया के समान आभा वाली, दो

मुखों वाली, वराह के समान उज्ज्वल दाँतों से सुशोभित, अक्षमाला जपमाला आदि आयुधों को धारण करने वाली, तथा रक्त पर स्थित देवी श्रीललिता जी को नमस्कार है ॥ १०० ॥

कालरात्र्यादिशक्त्यौघवृता स्निग्धौदनप्रिया।
महावीरेन्द्रवरदा राकिण्यम्बास्वरूपिणी॥ १०१ ॥

हिन्दी -

कालरात्रि, महारात्रि, मोहरात्रि, इत्यादि शक्तिसमूहों से घिरी हुई, घृत से परिपूर्ण ओदन को चाहने वाली, महावीरेन्द्रों को वर देने वाली, या महावीर = प्रह्लाद तथा इन्द्र, को वर देने वाली, और राकिनी-अम्बा के स्वरूप को धारण करने वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है ॥ १०१ ॥

विमर्श -

कालरात्रि आदि नाम से देवी की बारह शक्तियाँ हैं। उस शक्ति-समूह से देवी घिरी हैं। महावीरेन्द्रवरदा - विविध, ईर = स्तुति करने वाले, चमत्कारयुक्त वाणी वाले हैं जिसके, वे हुए वीर, महान् वीर महावीर = चमत्कार युक्त वाणी वाले, अथवा बड़े—बड़े स्तुति करने वाले हैं जिसके वह देवी हुई महावीरा। या, महावीर का अर्थ है सौमिक पात्र, लक्षणा से पानपात्र अर्थ हुआ। पानपात्र वाली देवी है अर्थात् ब्रह्मरसामृत का पान करने वाली हैं। इन्द्रवरदा = इन्द्र को वर देने वाली देवी श्रीललिता हैं। ये सभी अर्थ महावीरेन्द्रवरदा के हैं।

मणिपूराब्जनिलया वदनत्रयसंयुता।
वज्रादिकायुधोपेता डामर्य्यादिभिरावृता॥ १०२ ॥

हिन्दी -

नाभि में स्थित दशदल कमल (मणिपूराब्ज) पर निवास करने वाली, (लाकिनी नाम की योगिनी) तीन मुखों से युक्त, वज्रादि-आयुधों वाली, तथा डामरी से लेकर फट्कारिणी तक दश शक्तियों से घिरी देवी श्रीललिता को नमस्कार है ॥ १०२ ॥

रक्तवर्णा मांसनिष्ठा गुडान्नप्रीतमानसा।
समस्तभक्तसुखदा लाकिन्यम्बास्वरूपिणी॥ १०३ ॥

हिन्दी -

लाल कान्ति वाली (रक्तवर्णा) मांस पर टिकने वाली, गुड़मिश्रित अन्न से प्रसन्न मन वाली, सभी भक्तों को सुख देने वाली, तथा लाकिनी-अम्बा के स्वरूप वाली देवी श्रीललिता जी को प्रणाम है ॥ १०३ ॥

विमर्श -

गुडान्नप्रीतमानसा = गुडेन मिश्रम् अन्नम् गुडान्नम्। गुडमिश्रित अन्न। तेन प्रीतं मानसं यस्याः सा गुडान्नप्रीतमानसा। गुडमिश्रित अन्न से प्रसन्न मानस वाली।

स्वाधिष्ठानाम्बुजगता चतुर्व्वक्त्रमनोहरा।
शूलाद्यायुधसम्पन्ना पीतवर्णाऽतिगर्विता ॥ १०४ ॥

हिन्दी -

स्वाधिष्ठान (लिङ्गदेश) में स्थित षट्दल-कमल पर रहने वाली (काकिनी नाम की योगिनी), चार मुखों से (मन को हरने वाली) सुन्दर, मनोहर, शूल आदि आयुधों से युक्त, पीत अङ्ग-कान्ति वाली, तथा सौन्दर्यादि के कारण अतिगर्वित देवी श्रीललिता को नमस्कार है ॥ १०४ ॥

मेदोनिष्ठा मधुप्रीता बन्धिन्यादिसमन्विता।
दध्यन्नासक्तहृदया काकिनीरूपधारिणी ॥ १०५ ॥

हिन्दी -

मेद नामक धातु-विशेष में रहने वाली, मधु से प्रसन्न, बन्धिनी आदि शक्तियों से समन्वित, दधि मिश्रित ओदन में आसक्त हृदय वाली, तथा काकिनी के रूप को धारण करने वाली देवी श्रीललिता को प्रणाम है ॥ १०५ ॥

मूलाधाराम्बुजारूढा पञ्चवक्त्राऽस्थिसंस्थिता।
अंकुशादिप्रहरणा वरदादिनिषेविता ॥ १०६ ॥

हिन्दी -

मूलाधार (अपने अधिष्ठान के नीचे विद्यमान) के चतुर्दल कमल पर आरूढ, पाँच मुखों वाली, अस्थि (हड्डी) पर सम्यक् स्थित, अंकुश आदि (चार) आयुधों वाली, तथा वरदा से सरस्वती तक चार शक्तियों से निरन्तर सेवित देवी श्रीललिता को नमस्कार है ॥ १०६ ॥

मुद्गौदनासक्तचित्ता साकिन्यम्बास्वरूपिणी।
आज्ञाचक्राब्जनिलया शुक्लवर्णा षडानना॥ १०७॥

हिन्दी -

मुद्ग (मूंग) मिश्रित ओदन पर आसक्त-चित्त वाली, साकिनी अम्बा के स्वरूप को धारण करने वाली, दोनों भौंहों के बीच स्थित द्विदल-कमल (आज्ञाचक्राब्ज) पर रहने वाली (हाकिनी नाम की योगिनी) शुक्ल वर्ण की कान्ति वाली तथा छः मुखों वाली देवी श्रीललिता जी को प्रणाम है॥ १०७॥

मज्जासंस्था हंसवतीमुख्यशक्तिसमन्विता।
हरिद्रान्नैकरसिका हाकिनीरूपधारिणी॥ १०८॥

हिन्दी -

मज्जा नामक धातु में पूर्णतः स्थित, हंसवती और मुख्या इन दो शक्तियों से सम्यक् अन्वित, या हंसवती ही जिन दो शक्तियों में मुख्य है, उन दो शक्तियों से समन्वित, हरिद्रामिश्रित अन्न की एकमात्र रस लेने वाली, (आनन्द लेने वाली) तथा हाकिनी देवी का रूप धारण करने वाली देवी श्रीललिता जी को नमस्कार है॥ १०८॥

सहस्रदलमध्यस्था सर्ववर्णोपशोभिता।
सर्वायुधधरा शुक्लसंस्थिता सर्वतोमुखी॥ १०९॥

हिन्दी -

ब्रह्मरन्ध्रस्थ सहस्रदल कमल पर स्थित, सभी वर्णों (लाल, श्याम, श्वेत, रक्त, पीत, आदि) से सुशोभित (चित्रवर्ण वाली) अथवा अकार से क्षकार पर्यन्त नाम वाली (अमृता से क्षमावती तक) पचास शक्तियों से समीप में घिरी हुई, खट्वांगादि सभी प्रकार के आयुधों को धारण करने वाली, शुक्लधातु (शुक्र) में सम्यक् रहने वाली, अथवा रमणकालीन ध्यान विशेष में सम्यक् स्थित, तथा सभी दिशाओं में मुख धारण करने वाली देवी श्रीललिता को प्रणाम है॥ १०९॥

विमर्श -

ब्रह्मरन्ध्र में सहस्रदल कमल पर याकिनी रहती है। श्रीललिता वहाँ स्थित होकर याकिनी-स्वरूपा हो जाती हैं। सर्ववर्णोपशोभिता = सभी वर्ण-अकार आदि, उन अकारादि-वर्णों से प्रारम्भ हुए नाम वाली पचास

शक्तियों से, उप = समीप में, शोभिता = घिरी हुई, या सर्ववर्ण = चित्रवर्ण, उससे उपशोभित सुशोभित हैं देवी श्री ललिता जी। शुक्ल का शुक्र अर्थ 'रलयोरभेदः' के नियम से लिया गया है। या भविष्यत् पुराण में रमणकालीन ध्यान विशेष को शुक्र कहा है। ध्यान विशेष में स्थित हैं देवी।

सर्वौदनप्रीतचित्ता याकिन्यम्बास्वरूपिणी।
स्वाहा स्वधाऽमतिर्मेधा श्रुतिस्मृतिरनुत्तमा॥ ११०॥

हिन्दी -

पायसादि तथा हरिद्रा-आदि मिश्रित सभी प्रकार के (ओदन) अन्नों से प्रसन्न चित्त वाली, याकिनी नामक अम्बा के स्वरूप को धारण करने वाली, स्वाहा रूप तथा स्वधा रूप, अमति = अविद्यारूपा, धारणायुक्त बुद्धिरूपा, (मेधा) श्रुतिरूपा, स्मृतिरूपा (श्रवण, स्मरण, ज्ञानरूपा) एवं सभी से उत्तम स्वरूप वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ ११०॥

विमर्श -

देवता को प्रसन्न करने के लिए दी गई हवि स्वाहा है, तथा पितर को प्रसन्न करने के लिए दी गई वस्तु स्वधा है। स्वाहा एवं स्वधा भी देवी हैं। दुर्गा सप्तशती में उल्लेख है कि स्वाहाऽसि वै पितृगणस्य च तृप्तिहे - तुरुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च। अथवा - स्वान् = स्वकीयान्, आजिहीते = गच्छति, इति स्वाहा। आत्मीयों को जानने वाली या प्राप्त होने वाली स्वाहा है।

पुण्यकीर्तिः पुण्यलभ्या पुण्यश्रवणकीर्तना।
पुलोमजार्चिता बन्धमोचिनी बन्धुरालका॥ १११॥

हिन्दी -

पुण्य देने वाली कीर्ति से युक्त, तथा पुण्यों से प्राप्ति के योग्य, जिनके श्रवण एवं कीर्तन से पुण्य मिलता है उसे, या पुण्यदायक नामादि के श्रवण एवं कीर्तन-स्वरूप वाली, इन्द्राणी से पूजित, अविद्या के बन्धन से या कारागार के बन्धन से मुक्त करने वाली, तथा ऊंचे नीचे (समासम) केशों वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १११॥

विमर्श -

पुलोमजा = पुलोम की पुत्री इन्द्राणी (शची)। इन्द्राणी ने नहुष के इन्द्र बनने पर पुनः इन्द्र को प्राप्त करने हेतु देवी की पूजा की थी।

देवी-भागवत में ऐसा उल्लेख मिलता है। अतः इन्द्राणी द्वारा अर्चित हुई देवी 'पुलोमजार्चिता' नाम से सम्बोधित की गई है।

विमर्शरूपिणी विद्या वियदादिजगत्प्रसूः।
सर्वव्याधिप्रशमनी सर्वमृत्युनिवारणी॥ ११२॥

हिन्दी -

प्रकाश-रूप ब्रह्म की स्वाभाविक अन्तःक्रियाशक्ति, मोक्षदायिका ज्ञानरूपा विद्या, आकाश - आदि समग्र संसार को उत्पन्न करने वाली, ज्वरादि समस्त रोगों को शान्त करने वाली, अपमृत्यु, कालमृत्यु, तथा मृत्यु के अन्य सभी कारणों को दूर करने वाली देवी श्रीललिता को प्रणाम है॥ ११२॥

विमर्श -

विमर्श कहते हैं प्रकाशरूप परब्रह्म के स्वाभाविक अन्तःस्फुरण या क्रियाशक्ति को। वह अन्तःस्फुरण, या क्रियाशक्ति देवी का निज स्वरूप है। विद्या = 'विद्याऽसि सा भगवती परमा हि देवि' इस वचन से देवी को चैतन्यस्वरूपा या मोक्षदायिका-विद्या माना गया है।

अग्रगण्याऽचिन्त्यरूपा कलिकल्मषनाशिनी।
कात्यायनी कालहन्त्री कमलाक्षनिषेविता॥ ११३॥

हिन्दी -

संसार का मूल-कारण होने से, या वस्तुओं की गणना के समय सर्वोत्कृष्ट होने से, सर्वप्रथम गिनने योग्य, गुणों (सत्त्व रजसादि) के सम्पर्क से रहित होने के कारण अचिन्तनीय रूप वाली, या मलिन चित्त वाले जिसके रूप का चिन्तन भी न कर सकें, उसे, कलियुग के अतिप्रबल पापों का नाश करने वाली, ओड्याण पीठाधिष्ठित कात्यायनीरूपा, काल = मृत्यु, का हनन करने वाली, तथा कमलाक्ष = विष्णु, द्वारा अतिशय सेवित देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ ११३॥

ताम्बूलपूरितमुखी दाडिमीकुसुमप्रभा।
मृगाक्षी मोहिनी मुख्या मृडानी मित्ररूपिणी॥ ११४॥

हिन्दी -

ताम्बूल = पान, से परिपूर्ण मुखवाली, दाडिमी के पुष्प सदृश अंगों की प्रभा = कान्ति, वाली, मृग के नेत्र-सदृश नेत्रों वाली, दुष्टों को भ्रमित

करने वाली, या सम्पूर्ण जगत् को मोहित करने वाली, सबसे पहले उत्पन्न होने के कारण मुख्या, मृड = सुखदायक परमशिव, की पत्नी, तथा मित्र = सूर्यो, के समान रूप वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ ११४॥

नित्यतृप्ता भक्तिनिधिर्नियन्त्री निखिलेश्वरी।
मैत्र्यादिवासनालभ्या महाप्रलयसाक्षिणी॥ ११५॥

हिन्दी -

नित्य = हर समय तृप्त, या नित्य = स्वरूपानन्द, से तृप्त, भक्तों के लिए कामना पूरक होने से निधि के समान, (संसार का) नियन्त्रण करने वाली, सम्पूर्ण संसार की स्वामिनी, मैत्री करुणा मुदिता एवं उपेक्षा इन चार वासनाओं (चित्त-वृत्तियों) द्वारा प्राप्त होने योग्य, तथा महाप्रलय की साक्षिणी देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ ११५॥

विमर्श -

मैत्र्यादिवासनालभ्या = मैत्री, करुणा, मुदिता, एवं उपेक्षा ये चार वासनाएँ चित्त को निर्मल बनाती हैं। सुखी व्यक्तियों से मैत्री, दुखियों पर करुणा दिखाना, पुण्यों में मुदित होना, तथा पापियों की उपेक्षा करना, इन सभी से चित्त निर्मल होता है। निर्मलचित्त-व्यक्तियों द्वारा देवी प्राप्ति-योग्य हैं। महाप्रलय में समग्र संसार का, तथा ब्रह्मा, विष्णु आदि का भी नाश हो जाने से यही शिव की शक्ति-भूता देवी उसकी साक्षी रह जाती है, अतः देवी को 'महाप्रलयसाक्षिणी' बताया गया है।

पराशक्तिः परानिष्ठा प्रज्ञानघनरूपिणी।
माध्वीपानालसा मत्ता मातृकावर्णरूपिणी॥ ११६॥

हिन्दी -

पराशक्ति = उत्कृष्टशक्तिरूपा, या देह में दशमी धातुरूपा, उत्कृष्ट स्वरूप में स्थित रहने वाली, या उत्कृष्ट ज्ञानविशेष-रूपा, प्रकृष्टज्ञान = शुद्धसंविद्-मात्र रूप वाली, मदिरा सदृश द्राक्षारस के पान से बाह्य व्यापार शून्य (अलसा) अत एव मदयुक्ता, तथा अकारादि मातृका-वर्णों का स्वरूप वाली, देवी श्रीललिता को नमस्कार है।

विमर्श -

पराशक्तिः = शरीर में दशम-धातु। 'कामिकागम' में कहा गया है - "नवधातुरयं देहो नवयोनिसमुद्भवः। दशमी धातुरेकैव पराशक्तिरितीरितः"।

प्रज्ञानघनरूपिणी - प्रज्ञान = नित्य ज्ञान से, घन = निरन्तर अस्पृष्ट, रूपिणी = रूपवाली। या प्रज्ञान = शुद्ध-संविद्, परब्रह्म का, घन = एकमात्र, स्वरूप वाली। यह आत्मा अनन्तर अबाह्य एवं सम्पूर्ण प्रज्ञानघन है, ऐसा 'काण्व' में प्रतिपादित है। मातृकावर्णरूपिणी - मातृका = अकारादि से क्षकारान्त, उनके, वर्ण = शुक्ल आदि ही रूप हैं जिसके वह देवी। या इक्यावन मातृकावर्ण हैं, स्वरूप जिसके। या मातृकावर्ण ही रूप = वाचक, निरूपक हैं जिसके वह देवी हुई "मातृकावर्णरूपिणी"।

महाकैलाशनिलया मृणालमृदुदोर्लता।
महनीया दयामूर्तिर्महासाम्राज्यशालिनी॥ ११७॥

हिन्दी -

परमशिव का निवास-स्थान महाकैलास पर निवास करने वाली, विसतन्तु (कमलनाल के अन्दर का धागा) के सदृश कोमल बाहुलता वाली, महनीया, (सभी से पूजित) दया की मूर्ति, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड (महासाम्राज्य) की ऐश्वर्य वाली भगवती श्रीललिता को नमस्कार है॥ ११७॥

विमर्श -

महाकैलाशनिलया - कैलाश से भी ऊपर का स्थान महाकैलाश है। जहाँ पर शिव के साथ निवास करने से वह देवी का घर माना गया है। या 'त्रिपुरासार' के अनुसार ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रार कमल ही कैलाश है। वहाँ बिन्दुरूपी 'देवदेव' रहते हैं। उसी का विस्तार महाकैलाश है, जहाँ देवी का निवास है।

महासाम्राज्यशालिनी - सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को महासाम्राज्य माना है। महा-साम्राज्य से शोभा पाने वाली, या उसके समस्त ऐश्वर्यों की स्वामिनी होने से सुशोभित होने वाली देवी के लिए, यह पद आया है। या महाकैलाश का आधिपत्य ही महासाम्राज्य है। उससे शोभा पाने वाली।

आत्मविद्या महाविद्या श्रीविद्या कामसेविता।
श्रीं षोडशाक्षरी विद्या त्रिकूटा कामकोटिका॥ ११८॥

हिन्दी -

आत्मज्ञान रूपा होने से महाविद्या स्वरूप वाली, (अष्टाक्षर-मन्त्र-रूपा, या नवदुर्गाविद्या-रूपा) पञ्चदशीस्वरूपा श्रीविद्या, (सौभाग्य विद्या-रूपा) मन्मथ द्वारा सेवित, श्रीरूपा षोडशाक्षरी विद्या वाली, विद्यास्वरूपा, वाग्भव आदि तीन कूटों से अभिन्न (या ब्रह्मा आदि के अवस्था, पीठ, लोक एवं गुणों का समूह

जिसमें है, उस देवी को) तथा सौन्दर्य की उपमामूला, या शिवरूप एक भाग वाली देवी श्रीललिता को प्रणाम है ॥ ११८ ॥

विमर्श -

महाविद्या - आत्मविज्ञानरूपा होने से देवी अष्टाक्षर-मन्त्ररूपा महाविद्या हैं। नवदुर्गा-विद्या को भी महाविद्या कहते हैं। विष्णु पुराण में आया है कि - "यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने। आत्मविद्या च देवि त्वं विमुक्तिफलदायिनी"। कामकोटिका – काम = सौन्दर्य की, कोटि = उपमाभूता। या, काम = परशिव ही, कोटि = एक भाग है जिस देवी का वह, शिवशक्ति सामरस्य वाली देवी कामकोटिका हुई।

कटाक्षकिंकरीभूतकमलाकोटिसेविता।
शिरःस्थिता चन्द्रनिभा भालस्थेन्द्रधनुःप्रभा॥ ११९ ॥

हिन्दी -

कटाक्ष मात्र से आज्ञा पालन करने वाली लक्ष्मी-समूहों से सेवित, ब्रह्मरन्ध्र में स्थित, पूर्णचन्द्र के समान कान्तिवाली, तथा आज्ञाचक्र (भाल में) में स्थित इन्द्रधनुष के समान प्रभा वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है ॥ ११९ ॥

विमर्श -

क़टाक्ष = नेत्र के एक भाग से थोड़ा देखने मात्र से ही, किङ्करीभूत = दासी सदृश आज्ञाकारिणी, कमलाकोटि = लक्ष्मी-समूहों से, सेवित हैं जिस देवी के भक्त वह देवी। अर्थात् जिस पर कटाक्षपात हो जाये वह अनन्त लक्ष्मी का पात्र हो जाता है। शिरः = ब्रह्मरन्ध्र, चन्द्रनिभा = ब्रह्मरन्ध्र के नीचे का स्थान चन्द्र-स्थान है। भालस्था - चन्द्रस्थान से ऊपर अर्द्धचन्द्र रूप में भाल पर देवी स्थित है।

हृदयस्था रविप्रख्या त्रिकोणान्तरदीपिका।
दाक्षायणी दैत्यहन्त्री दक्षयज्ञविनाशिनी॥ १२० ॥

हिन्दी -

अनाहतनाद या पराबीजरूपी हृदय में ध्येय भाव से स्थित रहने वाली, हृदयस्थ सूर्यमण्डल में सूर्य समान कान्ति वाली, मूलाधार एवं पद्मकर्णिका रूप त्रिकोण के मध्य में स्थित दीपक के समान प्रकाशवाली, दक्ष की कन्या, या दाक्षायण-यज्ञ-स्वरूप वाली, भण्डासुर आदि दैत्यों का वध करने वाली, तथा दक्ष के यज्ञ को विनष्ट करने वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है ॥ १२० ॥

विमर्श -

दाक्षायणी - दक्ष की कन्या। दर्श और पूर्णमास की आवृत्ति दाक्षायण यज्ञ कहलाता है। दाक्षायण यज्ञरूपिणी। दक्षयज्ञविनाशिनी - अपने पति शिव का अपमान होने से पिता दक्ष की यज्ञाग्नि में देवी ने स्वयं को आहुत कर दिया था जिससे क्रुद्ध होकर शिवगणों ने यज्ञ को नष्ट कर दिया। यज्ञ के नाश का कारण होने से देवी को 'दक्षयज्ञविनाशिनी' कहा गया है।

दरान्दोलितदीर्घाक्षी दरहासोज्ज्वलन्मुखी।
गुरुमूर्तिर्गुणनिधिर्गोमाता गुहजन्मभूः॥ १२१॥

हिन्दी -

थोड़ी चञ्चल, विशाल नयनों वाली, या भय को नष्ट करने वाले विशाल नयनों से युक्त, मन्द हास्य से शोभायमान मुखवाली, गुरुरूप शरीर वाली, या अन्धकार-नाशक शरीर वाली, सौन्दर्यादि गुणों की निधि, (या नव व्यूहात्मकत्वरूप गुण वाली) वाणी (वेदादि) की जननी, तथा गुह = कार्तिकेय, की उत्पत्ति की भूमि, या गुह = अविद्या से घिरे जीवों, की जन्मभूमि देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १२१॥

विमर्श -

दरान्दोलितदीर्घाक्षी-दर = थोड़ा, या भय, आन्दोलित = चञ्चल, या नाश, जिनके चञ्चल विशाल नयन हैं। या, जिनके नेत्र भय को नष्ट करने वाले हैं। गुरुमूर्तिः - गुरु = मन्त्र, देवता और गुरु, ये तीनों मूर्तिः = स्वरूप या शरीर, देवी के हैं। गुण = सौन्दर्यादि या सत्त्वादि। गो = गाएँ अथवा वाणी (वेदादिरूपा)। गुहजन्मभूः -- गुह = कार्तिकेय, अथवा अविद्या से संवृत जीव। जीवों की उत्पत्ति भूमि तथा कार्तिकेय की जननी।

देवेशी दण्डनीतिस्था दहराकाशरूपिणी।
प्रतिपन्मुख्यराकान्ततिथिमण्डलपूजिता॥ १२२॥

हिन्दी -

ब्रह्मा विष्णु आदि देवों की स्वामिनी, या, देवेश = शिव की पत्नी, दण्डनीति में आज्ञारूप से स्थित, हृदयकमल में स्थित आकाश के समान रूपवाली, तथा प्रतिपद् से लेकर पूर्णिमा तक के तिथिमण्डलों में पूजित, (तिथि के अनुसार भिन्न-भिन्न पूजा को प्राप्त करने वाली) देवी को नमस्कार है॥ १२२॥

विमर्श -

दण्डनीतिस्था - दण्डनीति में आज्ञारूप से स्थित, या, दण्डनीति = अर्थनीति, में स्थित, या, दण्डनीति = नीतिशास्त्र, में स्थित। दहराकाशरूपिणी - दहर = अल्प, आकाश = हृदय-कुहर, में रहने वाला, वही रूप है जिस देवी का वह देवी। या - दहर = हृदयकमल-रूप घर, या, दहराकाश = अन्तः आकाश, जो परब्रह्म का स्वरूप है। हृदय-कमल में स्थित आकाश के समान, या, अल्प आकाश में स्थित स्वरूप वाली, या, परब्रह्म-रूपा देवी, ये अर्थ हो सकते हैं।

कलात्मिका कलानाथा काव्यालापविनोदिनी।
सचामररमावाणीसव्यदक्षिणसेविता॥ १२३॥

हिन्दी -

चौंसठ कला-स्वरूपा, (अग्नि की दशकला, सूर्य की बारह कला तथा चन्द्र की सोलह कला सहित अन्य कला रूपा) कलाओं की स्वामिनी, या कलानाथा = चन्द्रस्वरूपा, काव्यालापों से विनोद वाली, चामर सहित लक्ष्मी तथा वाणी = सरस्वती, द्वारा बायें एवं दायें भाग से सेवित देवी श्रीललिता जी को प्रणाम है॥ १२३॥

विमर्श -

कलात्मिका - सभी कलाएँ देवी का स्वरूप हैं। सोलह कामकलाएँ, श्रीविद्या की सोलह कलाएँ, आदि—आदि कलाओं की स्वामिनी होने से कलानाथा भी हैं। या, कलानाथ चन्द्र को कहते हैं। चन्द्रमण्डल, श्रीचक्र-रूप होने से देवी चन्द्र-स्वरूपिणी है।

आदिशक्तिरमेयाऽऽत्मा परमा पावनाकृतिः।
अनेककोटिब्रह्माण्डजननी दिव्यविग्रहा॥ १२४॥

हिन्दी -

संसार को उत्पन्न करने वाली आदि शक्ति, (कारण-शक्ति), मापने के अयोग्य, या जिसको छोड़कर कोई अन्य मेय नहीं है, उसे, जीवरूपा, (आत्मा) उत्कृष्ट-स्वरूपा, या, पर = शिव की, मा = लक्ष्मीरूपा, पवित्र आकृति वाली या, पवित्र करने वाली मूर्ति, अनेक कोटि ब्रह्माण्डों की जननी, तथा रमणीय शरीर वाली, या, अन्तरिक्ष में युद्ध करने वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १२४॥

क्लींकारी केवला गुह्या कैवल्यपददायिनी।
त्रिपुरा त्रिजगद्वन्द्या त्रिमूर्तिस्त्रिदशेश्वरी॥ १२५॥

हिन्दी -

क्लींकारी = काम-बीजस्वरूपिणी, या, शिवरूप काम की पत्नी, सभी धर्मों से रहित केवल स्वरूप वाली, अतिरहस्य रूपा, (गुह्या) कैवल्य = (स्वर्ग या मोक्ष) को दिलाने वाली, ज्ञाता, ज्ञान, एवं ज्ञेय के रूप में नियत तीन वस्तुओं से प्राचीन रूप वाली, या—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन तीनों से प्राचीन स्वरूप वाली, या—इडा, पिङ्गला, एवं सुषुम्णा इन तीनों नाड़ियों में रहने वाली (त्रिपुरा), तीनों लोकों में वन्दनीय, ब्रह्मा, विष्णु व शिवमूर्ति वाली, या— कृष्णा, शुक्ला, एवं पीतवर्ण-शरीर वाली, तथा त्रिदश = देवों की स्वामिनी, अथवा तीनों दशाओं की स्वामिनी, देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १२४॥

त्र्यक्षरी दिव्यगन्धाढ्या सिन्दूरतिलकाञ्चिता।
उमा शैलेन्द्रतनया गौरी गन्धर्वसेविता॥ १२६॥

हिन्दी -

त्र्यक्षरी (तीन अक्षर) बीज रूपा, (वाक्, कामशक्ति एवं बीजरूपा) या—शुद्धविद्या कुमारी, या—मन्त्ररूपा, दिव्य-गन्धों से परिपूर्ण, (अथवा - दिव्य = देवादि के सम्बन्धों से परिपूर्ण) सिन्दूर के तिलक से युक्त, (या नागों से, अथवा स्त्रियों से पूजित, या गजगामिनी) उमा = परशिव को सीमित करने वाली, (या कीर्ति व कान्ति-स्वरूपा) हिमालय की पुत्री, गौरवर्णा गौरी, तथा गन्धर्वों द्वारा पूजित (सेवित) देवी श्रीललिता जी को नमस्कार है॥ १२६॥

विमर्श -

त्र्यक्षरी तु महात्रिपुरसुन्दरी। त्र्यक्षरी शुद्धविद्या कुमारी च। (गौड़ पादीये) वाक्, काम, एवं बीजरूप तीन अक्षरों का समूह देवी है। सिन्दूर-तिलकांचिता = "सिन्दूरतिलके नागे सिन्दूरतिलका स्त्रियाम्" (विश्वः) "सिन्दूर-तिलको हस्ती सिन्दूरतिलकाङ्गना", हेमचन्द्रः। सिन्दूर के तिलक से युक्त, या—नाग वा स्त्रियों से पूजित, अथवा हाथी के समान गति वाली। (अञ्चु गति-पूजनयोः)।

उमा - उं = परशिवं, माति = परिच्छिनत्ति इति उमा। शिव को सीमित करने वाली शक्ति।

विश्वगर्भा स्वर्णगर्भाऽवरदा वागधीश्वरी।
ध्यानगम्याऽपरिच्छेद्या ज्ञानदा ज्ञानविग्रहा॥ १२७॥

हिन्दी -

सम्पूर्ण जगत् को अपने में रखे हुई, स्वर्ण को अपने में रखे हुई, या सुन्दर मातृकावर्ण को अपने गर्भ में रखे हुई, या—सुन्दर मन्त्रों को अपने गर्भ में रखे हुई, विष्णु को वर देने वाली, या—दैत्यों को खण्डित करने वाली, वाणी की स्वामिनी, ध्यान से जानने योग्य, देश और काल से अपरिमित (निर्धारण योग्य नहीं) भक्तों को आत्म-विषयक ज्ञान देने वाली, तथा ज्ञान-रूप शरीर वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १२७॥

विमर्श -

स्वर्णगर्भा - सु = सुन्दर हैं, अर्ण = मातृकावर्ण, गर्भ में जिसके वह। या, सु = सुन्दर, अर्ण = मन्त्र हैं गर्भ में जिसके वह देवी। अवरदा - अः = विष्णु को, वरदा = वर देने वाली। या—अवरान् = दैत्यों, अनार्यों को, दा = द्यति = खण्डयति, खण्डित करती है, वह अवरदा हुई। अथवा अव = कान्तियुक्त, रदाः = दाँत हैं जिसके, वह।

सर्ववेदान्तसंवेद्या सत्यानन्दस्वरूपिणी।
लोपामुद्रार्चिता लीलाक्लृप्तब्रह्माण्डमण्डला॥ १२८॥

हिन्दी -

उपनिषद् समूहों से भलीभाँति जानने योग्य, सत्य और आनन्द-स्वरूप वाली, अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा द्वारा पूजित, या लोपामुद्रा नामक विद्या से पूजित, तथा खेल—खेल में ही ब्रह्माण्ड मण्डलों की रचना करने वाली देवी श्रीललिता जी को नमस्कार है॥ १२८॥

विमर्श -

लोपामुद्रा = अगस्त्य की पत्नी तथा त्रिपुरासिद्धान्त के अनुसार लोपामुद्रा से पूजित देवी भी लोपामुद्रा हैं। या यह विद्या-विशेष है।

अदृश्या दृश्यरहिता विज्ञात्री वेद्यवर्जिता।
योगिनी योगदा योग्या योगानन्दा युगन्धरा॥ १२९॥

हिन्दी -

अदृश्यस्वरूपवाली, दृश्य = व्यावहारिक भाव-तत्त्वों से रहित,

(पारमार्थिक-तत्त्वरूपा) विशेष ज्ञान वाली, वेद्य = जानने योग्य भाव से वर्जित, डाकिनी आदि सात योगिनियों के स्वरूप वाली, या—शिव के साथ सम्बन्ध वाली, भक्तों को चित्तवृत्तिनिरोध रूप योग को देने वाली (मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग व राजयोग को देने वाली) योग से साध्य, शिवशक्ति समरसतारूप (योग) आनन्द वाली, या—योगनिद्रास्वरूपा, या—नृसिंह रूपा, तथा सत्युगादि को धारण करने वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है ॥ १२९ ॥

विमर्श -

योगदा - योग = विषयसंग, या—भोग, उसको देने वाली, यह अर्थ भी सम्भव है। युगन्धरा = युग का अर्थ है - हाथ, रथ, सीर, जुआ, सत्, त्रेता-आदि युग, युगल, औषधि, उनको धारण करने वाली देवी जगत् की निवार्हिका होकर युगन्धरा है।

इच्छाशक्तिज्ञानशक्तिक्रियाशक्तिस्वरूपिणी।
सर्वाधारा सुप्रतिष्ठा सदसद्रूपधारिणी॥ १३० ॥

हिन्दी -

इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया-शक्ति रूप स्वरूप वाली, सम्पूर्ण जगत् की आधार रूपा, या—जगती की धारा = परम्परा रूपा, संसार की सुन्दर प्रतिष्ठा रूपा, (अधिष्ठान-रूपा) या बीस अक्षरों का छन्दविशेष रूप वाली, तथा ब्रह्म (सत्) और जगत् (असत्) के रूप को धारण करने वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है ॥ १३० ॥

विमर्श -

देवी की तीन शक्तियाँ उनका स्वरूप ही हैं। यथा - इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति। वामकेश्वर तन्त्र में आया है - "त्रिपुरा त्रिविधा देवी ब्रह्मविष्णवीशरूपिणी। ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिरिच्छाशक्त्यात्मिका प्रिये"। ज्ञान, इच्छा एवं यत्न में पूर्व—पूर्व उत्तर = आगे वाले का जगत् निर्माण में सहायक कारण बनता है। क्रिया का अर्थ यत्न है।

अष्टमूर्तिरजाजैत्री लोकयात्राविधायिनी।
एकाकिनी भूमरूपा निर्द्वैता द्वैतवर्जिता॥ १३१ ॥

हिन्दी -

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा तथा यज्वा इन आठों का स्वरूप वाली या लक्ष्मी मेधा आदि आठ शरीर वाली, अविद्या की

नाशिका, चौदह भुवनों का प्रलय और संरक्षण (यात्रा) करने वाली, एकाकिनी (सहाय रहित) आनन्दब्रह्म रूपा, द्वैतभाव से निकली हुई, तथा द्वैतभाव से सर्वथा वर्जित रूपवाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १३१॥

विमर्श -

अष्टमूर्तिः = उपर्युक्त के अतिरिक्त जीवात्मा, परमात्मा, अन्तरात्मा, निर्मल, शुद्धात्मा, ज्ञानरूपात्मा, महात्मा, एवं भूतात्मा ये आठ मूर्तियाँ मानी गई हैं। सूर्य, जल, पृथिवी, वह्नि, वायु, आकाश, दीक्षित-ब्राह्मण, तथा सोम ये आठ मूर्तियाँ विष्णु-पुराण में वर्णित हैं। इसके अतिरिक्त - लक्ष्मी, मेधा, धरा, पुष्टि, गौरी, तुष्टि, प्रभा एवं धृति ये आठ शरीर मत्स्य-पुराण में वर्णित हैं। इन सभी की मूर्ति (शरीर) देवी की मूर्ति है।

अन्नदा वसुधा वृद्धा ब्रह्मात्मैक्यस्वरूपिणी।
बृहती ब्राह्मणी ब्राह्मी ब्रह्मानन्दा बलिप्रिया॥ १३२॥

हिन्दी -

अन्न देने वाली, धन देने वाली, सबसे ज्येष्ठ, या—लोगों को बढ़ाने वाली, चैतन्य के साथ जीवों का एकीभाव-रूप स्वरूप वाली, या—शिव और जीवों की एकरूपता ही स्वरूप है जिसकी, उसे, बृहती (छत्तीस वर्णों वाला छन्द-विशेषरूपा, या—बड़ों से भी बड़ी) ब्राह्मणी (शिव की पत्नी, या—औषधि विशेष रूपा), ब्रह्मशक्ति-स्वरूपा या—ब्राह्मी वाक्-रूपा, ब्रह्मानन्द वाली, तथा बलि = पूजा, उपहार आदि, को चाहने वाली, (या—कामादि शत्रुओं को जीतने वाले जिसे प्रिय हैं, उसे) देवी को नमस्कार है॥ १३२॥

भाषारूपा बृहत्सेना भावाऽभावविवर्जिता।
सुखाराध्या शुभकरी शोभना सुलभागतिः॥ १३३॥

हिन्दी -

संस्कृतादि भाषाओं से निरूपण योग्य, चतुरङ्ग-सेना वाली, भाव और अभाव = सत् और असत् से सर्वथा रहित (भावाभाव से भिन्न) सुखपूर्वक आराधना के योग्य, भक्तों का शुभ करने वाली, शोभना = मोक्षादि पुरुषार्थरूपा, तथा प्राप्त करने में सुलभ (या—दुर्लभ मानुषादि जन्म को सुन्दर बनाने वाली) देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १३३॥

विमर्श -

भाषारूपा = संस्कृत, प्राकृतादि-भाषाएँ हैं रूप जिसके, या भाषाओं

द्वारा, रूपयितुम् योग्या = निरूपण योग्य। भावाभाव दोनों पदार्थों से विशिष्ट होने के कारण देवी "भावाऽभावविवर्जिता" हैं। शोभनासुलभागतिः = सुन्दर और सुलभ आगति (प्राप्ति) वाली, या शोभना चासौ असुलभा च = सुदुर्लभा। सुदुर्लभा आगतिः = पुनरावृत्तिः यया। जिससे आगति = पुनः आगमन, अत्यन्त कठिन हो, वह मोक्षरूपा देवी। या असुलभागतिः = दुर्लभजन्म, शोभना = सुन्दर है, जिससे, वह देवी।

राजराजेश्वरी राज्यदायिनी राज्यवल्लभा।
राजकृपा राजपीठनिवेशितनिजाश्रिता॥ १३४॥

हिन्दी -

इन्द्रादि के राजा ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आदि (राजराज) की भी स्वामिनी, (या—राजराज = शिव की पत्नी) भक्तों को राज्य देने वाली, या—वैकुण्ठ, कैलास, आदि का भी आधिपत्य देने वाली, जगत् के साम्राज्य को प्रिय मानने वाली (राज्य = जगत्साम्राज्य, प्रिय हैं जिसे, वह देवी) प्रकाशमय कृपा वाली, तथा राजाओं एवं इन्द्र-आदि के पीठ पर अपने आश्रितों को बैठाने वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १३४॥

विमर्श -

राजराज = राजाओं के राजा, उनकी ईश्वरी, राजराज हुए ब्रह्मा, विष्णु, महेश, और कुबेर। उनकी स्वामिनी। या—राजराजेश्वर = शिव की पत्नी हुई राजराजेश्वरी। राजकृपा = राजन्ती शोभमाना कृपा यस्याः, शोभामय, प्रकाशमय कृपा वाली। राजपीठनिवेशितनिजाश्रिता--राजपीठे = राजाओं के पीठ पर, निवेशिताः = बैठा दिए गए हैं, निजाश्रिताः = अपने आश्रित जन जिसके द्वारा, वह देवी।

राज्यलक्ष्मीः कोशनाथा चतुरङ्गबलेश्वरी।
साम्राज्यदायिनी सत्यसंधा सागरमेखला॥ १३५॥

हिन्दी -

राज्यसम्बन्धिनी लक्ष्मी, अन्न, रत्नादि की स्वामिनी, हाथी, घोड़े, रथ व पदसैनिक-रूप चतुरङ्गबल वाली सेना की नायिका, साम्राज्य को देने वाली, सत्यप्रतिज्ञा और मर्यादा वाली, तथा सागररूप मेखला वाली भूमि के स्वरूप को धारण करने वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १३५॥

विमर्श -

कोशनाथा = अन्न, रत्न आदि भण्डारों की स्वामिनी। साम्राज्यदायिनी - राजसूय यज्ञ कर चुका राजाओं का राजा चक्रवर्ती सम्राट् कहलाता है। सम्राट् का भाव साम्राज्य हुआ। उसको देने वाली देवी।

दीक्षिता दैत्यशमनी सर्वलोकवशङ्करी।
सवार्थदात्री सावित्री सच्चिदानन्दरूपिणी॥ १३६॥

हिन्दी -

दीक्षा प्राप्त, दैत्यों की नाशिका, सभी लोकों को वश में करने वाली, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष (सर्वार्थ = पुरुषार्थ) को देने वाली, जगत् को उत्पन्न करने वाले शिव (सविता) की शक्तिरूपा, (पुष्कर की अधिष्ठात्री देवता) तथा सत्, चित् व आनन्द स्वरूप वाली देवी को नमस्कार है॥ १३६॥

विमर्श -

दीक्षिता - मन्त्रादि-दान के द्वारा पापों को नष्ट करने वाली 'दीक्षा' कहलाती है। या— कृपा करके शिष्यों को जो मन्त्र दिया जाता है तथा जिससे पाप का नाश होता है, वह दीक्षा है। दीक्षा अस्या: अस्यां वा संजाता इति दीक्षिता। जिसमें दीक्षा हुई (उत्पन्न हुई वह)। सावित्री - सवितु: = जगत: उत्पादकस्य इयम् सावित्री। अर्थात् संसार को उत्पन्न करने वाले की शक्ति या पुष्कर तीर्थ की अधिष्ठात्री देवी। पद्म पुराण में आया है - "सावित्री पुष्करे नाम्ना तीर्थानां प्रवरे शुभे।"

देशकालापरिच्छिन्ना सर्वगा सर्वमोहिनी।
सरस्वती शास्त्रमयी गुहाम्बा गुह्यरूपिणी॥ १३७॥

हिन्दी -

देश और काल की सीमा से रहित, सर्वत्र प्रकाशरूप में जाने वाली, त्रैलोक्य को मोहित करने वाली, (या—मोहनचक्ररूपा वा मोहनी विद्यारूपा) ज्ञानाभिमानिनी देवता, ज्ञान-समुद्ररूपा सरस्वती, (या—प्राणियों की जिह्वा पर स्थित देवी) समग्रशास्त्र-रूपा, गुफा स्थित अम्बा, या—गुह = कार्तिकेय, की माता, तथा अतिगुप्त रूपवाली या परमरहस्यात्मक ज्ञान-स्वरूपा, देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १३७॥

विमर्श -

देवी को देश और काल की सीमा में बाँधा नहीं जा सकता। वह देश और काल की सीमा से परे हैं, अतः "देशकालापरिच्छिन्ना" है। सरस्वती - ज्ञानाभिमानी देवता। या—ज्ञान ही है सरस् = समुद्र, तद्रूपा, ज्ञानसमुद्ररूपा। प्राणियों की जिह्वा पर रहने वाली देवी। गुहाम्बा = गुहा में स्थिता अम्बा। या—गुह = कार्तिकेय की अम्बा। गुह्यरूपिणी -- गुह्यम् = अतिगुप्त, रूप वाली। गुहायां स्थितम्- गुह्यम् = परमरहस्यात्मक-ज्ञान, तद्रूपिणी। कहा भी गया है - "सर्वोपनिषदां देवि गुह्योपनिषदुच्यते"।

सर्वोपाधिविनिर्मुक्ता सदाशिवपतिव्रता।
सम्प्रदायेश्वरी साध्वी गुरुमण्डलरूपिणी॥ १३८॥

हिन्दी -

सभी उपाधियों (धर्मों) से मुक्त, शिव ही हैं पति जिसके, ऐसे सार्वकालिक-नियमों वाली (सदाशिव की पतिव्रता) शिष्यों को दी जाने वाली विद्या (सम्प्रदायसंज्ञक मन्त्र) की स्वामिनी, सद्गति को देने वाली (साध्वी) तथा परमशिव आदि गुरुपरम्परा-रूप स्वरूपवाली देवी श्रीललिता को प्रणाम है॥ १३८॥

विमर्श -

पूर्व श्लोक में देवी को कार्तिकेय की माता कहा है तथा रहस्यात्मक ज्ञान भी कहा है। इस तरह देवी को अद्वैत, सिद्ध नहीं किया जा सकता है। अतः इस श्लोक में उन्हें "सर्वोपाधिविनिर्मुक्ता" कहा है। अर्थात् स्कन्द की माता, सखण्ड, अखण्ड आदि धर्मों से वस्तुतः वह मुक्त हैं। शक्ति में रजत बोध के समान ही अन्य धर्मों का आभास मात्र होता है। सदाशिवपतिव्रता = शिव एव पतिः = शिवप्रतिः, शिवपतिः इति व्रतं = नियमः, सदा = सार्वकालिकः यस्याः, इस व्युत्पत्ति से शिव की पत्नी होना भी शिव के समान सनातन (कालत्रय में अबाधित) होना सिद्ध करता है। सम्प्रदायेश्वरी = सम्यक् प्रदीयते शिष्येभ्यः इति सम्प्रदायः, तस्य ईश्वरी। शिष्यों को दिये जाने वाले मन्त्र की स्वामिनी। साध्वी = साधु, उचित, सद्गति, सामान्ये नपुंसकम्। धर्म और धर्मी दोनों रूप में साधु का प्रयोग है। ई = शिवपत्नी, कामकला, साधु + ई = साध्वी, सद्गति या उचितगति देने वाली शिव की पत्नी।

गुरुमण्डलरूपिणी = शैवदर्शन के अनुसार गुरु कहते हैं सदाशिव पशुपति आदि को, उनके मण्डल = परम्परा ही रूप है जिस देवी का वह।

कुलोत्तीर्णा भगाराध्या माया मधुमती मही।
गणाम्बा गुह्यकाराध्या कोमलांगी गुरुप्रिया॥ १३९॥

हिन्दी -

(यहाँ रहस्यात्मक स्वरूप का वर्णन है)

कुल = जातिसमूह-संसार या इन्द्रियसमूहों का अतिक्रमण कर चुकी, सूर्यमण्डल में उपासना के योग्य, भगवान् शिव की माया शक्ति, (पूजन काल में) मधु = पुष्परस, इक्षुरस या मद्य वाली, पृथ्वी के समान सबका आधार होने से महीरूपा, प्रमथादि गणों की या गजानन की माता, यक्षों द्वारा आराधना के योग्य, कोमल अंगों वाली, तथा संसार के गुरु, शिव की प्रिया, देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १३९॥

विमर्श -

भगाराध्या = भग नाम है सूर्यमण्डल का। उसमें आराधनां योग्य। माया = प्रसिद्ध वस्तु को भी प्रकट नहीं होने देने की शक्ति।

स्वतन्त्रा सर्वतन्त्रेशी दक्षिणामूर्तिरूपिणी।
सनकादिसमाराध्या शिवज्ञानप्रदायिनी॥ १४०॥

हिन्दी -

सृष्टि आदि क्रियाओं में परमुखापेक्षी न होने के कारण स्वतन्त्र, (या स्व = आत्मीय शिव, के अधीन) चौंसठ तन्त्रों (वैष्णव शैव आदि) की प्रणेत्री, या समर्थन करने वाली, शिव की दक्षिणाभिमुखी-मूर्ति ब्रह्मनारायण आदि स्वरूप वाली, सनक, सनन्दन आदि ऋषियों के द्वारा सम्यक् आराधना की जाने वाली, तथा शिवविषयक ज्ञान देने वाली, या, अमल, शान्तज्ञान देने वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १४०॥

विमर्श -

सर्वाणि तन्त्राणि ईष्टे इति सर्वतन्त्रेशी - सभी तन्त्रों का समर्थन करने वाली। शिवज्ञानप्रदायिनी - शिवविषयकं ज्ञानम्, शिवज्ञानम्, तस्य प्रदात्री। या शिवम् = निर्मलम्, कल्याणकारकं, शान्तं वा ज्ञानम्, शिवज्ञानं, तस्य प्रदात्री। अथवा शिवः ज्ञानप्रदाता यस्याः सा शिवज्ञानप्रदात्री। (निर्मल, कल्याणकारक या शान्त ज्ञान देने वाली। या शिव से ज्ञान प्राप्त करने वाली।)

चित्कलानन्दकलिका प्रेमरूपा प्रियंकरी।
नामपारायणप्रीता नन्दिविद्या नटेश्वरी॥ १४१॥

हिन्दी -

सच्चिदानन्द ब्रह्म की कला (एकदेश रूपा) या—चित् = ज्ञानरूप शिव, की कलाशक्ति, जीव में रहने वाले आनन्द की कली, (एक भाग) भक्तविषयक प्रेम वाली, भक्तों का प्रिय करने वाली, नाम के पारायण से प्रसन्न (२७३६ नामों के पारायण से प्रसन्न) या नाम, स्मरण और सहस्रनाम के पारायण से प्रसन्न, नन्दिकेश्वर द्वारा उपासना की जाने वाली विद्यारूपा, तथा नटेश्वर = परमशिव, की पत्नी, या नटेश्वर का अनुकरण करने वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार. है॥ १४१॥

विमर्श -

चित्कला -- चित् = ब्रह्म, सच्चिदानन्द आत्मा, उसकी कला = एकदेश (एकांश) के समान कला वाली, या अन्तःकरण की उपाधि वाला चैतन्य निरुपाधिक-चैतन्य का एकदेश है। या—चित्त में रहने वाली 'चित्कला' नाम की शक्ति जो सभी शरीरधारियों में रहती हैं। देवी भी सभी के चित्तों में कलाशक्ति के रूप में विद्यमान हैं।

मिथ्याजगदधिष्ठाना मुक्तिदा मुक्तिरूपिणी।
लास्यप्रिया लयकरी लज्जा रम्भादिवन्दिता॥ १४२॥

हिन्दी -

मिथ्यारूप संसार का भान कराने वाली, (द्वैत भाव से) मोक्ष देने वाली, मुक्ति-स्वरूप वाली, नृत्यप्रिया, तान विशेष को करने वाली (या चित्त की अवस्था को विशेषरूप प्रदान करने वाली) प्राणियों में लज्जा रूप से स्थित (या हृदयलेखा की बीजभूता) तथा रम्भा आदि अप्सराओं द्वारा वन्दना की गई देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १४२॥

विमर्श -

मिथ्याजगदधिष्ठाना - जगत् मिथ्या है। देवी ही एकमात्र सत्य है। फिर भी मिथ्या का ज्ञान चैतन्यरूप से जो हो रहा है, उसका भान कराने वाली देवी ही हैं। अतः कहा गया कि - "मिथ्यारूपस्य जगतः अधिष्ठानं भानाधिकरणं चैतन्यं यस्याः सा।" या मिथ्याजगतः अधिष्ठानं = अधिष्ठितं यस्याः सा। तान्त्रिक सम्प्रदाय में जगत् को ब्रह्म का परिणाम माना गया है।

भवदावसुधावृष्टिः पापारण्यदवानला।
दौर्भाग्यतूलवातूला जराध्वान्तरविप्रभा॥ १४३॥

हिन्दी -

संसाररूपी दावाग्नि की शान्ति में सुधा की वर्षा के समान स्वरूप वाली, पापरूप जंगल को नष्ट करने हेतु दवानल (वनाग्नि) के समान रूपवाली, दौर्भाग्यरूपी कपास को दूर करने के लिए वायुसमूह के समान रूप वाली, तथा जरा = वृद्धावस्था-रूप, अन्धकार को नष्ट करने वाली सूर्य की प्रभा के समान रूप वाली देवी श्रीललिता जी को नमस्कार है॥ १४३॥

विमर्श -

भवदावसुधावृष्टिः - भवदा = परमशिव को देने वाली, वसुधा = धन, धान्यादि को धारण करने वाली (वसु+धा) तथा वृष्टि-रूपा, ये तीनों अर्थ भी संभव हैं। या– मोक्ष एवं भोग की वर्षा करने वाली देवी का नाम हुआ - 'भवदावसुधावृष्टिः'। या - भवः एव दावः = संसाराग्नि, तस्मै सुधावृष्टिः इव = संसाराग्नि के लिए अमृत वर्षा के समान।

भाग्याब्धिचन्द्रिका भक्तचित्तकेकिघनाघना।
रोगपर्वतदम्भोलिर्मृत्युदारुकुठारिका॥ १४४॥

हिन्दी -

समुद्र को तरंगित करने वाली चन्द्रिका के समान भाग्यसमुद्र को तरंगित करने वाली, भक्तों के मनरूपी मयूर को आह्लादित करने वाले मेघ के समान स्वरूपवाली, पर्वत-समान रोगों का नाश करने में वज्र के समान, तथा मृत्यु के नाश के लिए लकड़ी को काटने वाली कुल्हाड़ी के समान देवी श्रीललिता जी को नमस्कार है॥ १४४॥

महेश्वरी महाकाली महाग्रासा महाशना।
अपर्णा चण्डिका चण्डमुण्डासुरनिषूदिनी॥ १४५॥

हिन्दी -

महा ईश्वरी, महाकाली (महाकाल की स्त्री) अपरिमित-ग्रास वाली, संसाररूप-आहार वाली (महाशना) भक्तों के ऋण को समाप्त करने वाली (अपर्णा) या पतनरहिता, दुष्टों पर क्रोध करने वाली (चण्डिका) तथा चण्ड एवं मुण्ड नामक दैत्यों को मारने वाली देवी को नमस्कार है॥ १४५॥

विमर्श -

महाग्रासा - महान् = अपरिमितसंसार-रूप, ग्रास (कौर) है जिसके, वह। संसार को एक ही बार में ग्रास बनाने वाली (संहार की इच्छा होने पर)। **अपर्णा:** - अपगतं ऋणं यस्या: (भक्तानाम्) या — पर्णं पतनम्। अविद्यमानं पर्णं यस्या: सा अपर्णा। चण्डमुण्डासुनिषूदिनी - चण्डानि = प्रचण्डानि, मुण्डानि = मस्तकानि येषां ते चण्डमुण्डा:, चण्डमुण्डानाम् असव: = प्राणा: चण्डमुण्डासव:। चण्डमुण्डासून्, निषूदति = नाशयति इति। प्रचण्ड शिर वालों के प्राणों का नाश (हरण) करने वाली देवी, यह दूसरा अर्थ भी सम्भव है।

क्षराक्षरात्मिका सर्वलोकेशी विश्वधारिणी।
त्रिवर्गदात्री सुभगा त्र्यम्बका त्रिगुणात्मिका॥ १४६॥

हिन्दी -

अनित्य एवं नित्यवस्तु-स्वरूपा (या एकाक्षर अनेकाक्षर -- आकृति वाली) सभी लोकों की ईश्वरी, विश्व को धारण करने वाली, धर्म, अर्थ एवं काम (त्रिवर्ग) को देने वाली, पञ्चवर्षा, या ऐश्वर्यशालिनी, सोम, सूर्य व वह्नि-रूप तीन नेत्रों वाली, तथा सत्त्व, रजस् व तमस् इन तीनों गुणों के साम्य से बने शरीर वाली देवी श्रीललिता जी को नमस्कार है॥ १४६॥

विमर्श -

क्षराक्षरात्मिका = "क्षर: सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते" इस वचन के अनुसार सभी प्राणियों का स्वरूप देवी का स्वरूप है। प्राणी क्षर हैं, देवी का अंश होने से उसमें मिल जाते हैं। देवी नित्य स्वरूपा हैं। या — क्षर = अनियतसंख्या वाले वर्ण, तथा अक्षर = वर्ण, हैं आत्मा = स्वरूप जिसका, वह देवी।

स्वर्गापवर्गदा शुद्धा जपा-पुष्पनिभाकृति:।
ओजस्वती द्युतिधरा यज्ञरूपा प्रियव्रता॥ १४७॥

हिन्दी -

स्वर्ग और मोक्ष को देने वाली (कर्मफल = स्वर्ग, एवं ज्ञानफल = मोक्ष (अपवर्ग) को देने वाली) अविद्या की मलिनता से रहित शुद्ध-स्वरूपा, जपापुष्प के सदृश आकृति वाली, बल व प्रकाश वाली, द्युति = कान्ति, को धारण करने वाली, यज्ञ स्वरूप वाली, तथा (प्रियव्रता नामक राजस्वरूपा) व्रत को प्रिय मानने वाली देवी श्रीललिता को प्रणाम है॥ १४७॥

दुराराध्या दुराधर्षा पाटलीकुसुमप्रिया।
महती मेरुनिलया मन्दारकुसुमप्रिया॥ १४८॥

हिन्दी -

चञ्चल इन्द्रिय वालों से दुःखपूर्वक आराधना के योग्य, (या— आराधना के अयोग्य) वश में नहीं की जा सकने वाली, या— दुःखपूर्वक वश में की जाने वाली, रक्त-श्वेत वर्णों के पाटलीपुष्पों को चाहने वाली, महत् परिमाण वाली, या — नारद की वीणा-स्वरूपा, मेरु-पर्वत पर निवास करने वाली, तथा मन्दार वृक्ष के फूलों को प्रिय मानने वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १४८॥

विमर्श -

मेरुनिलया = मेरु है निवास स्थान (घर) जिसका। परमाकाश में मेरु की संस्थिति है। या — चक्रराज के भूमि, कैलास, एवं मेरु, इन तीन प्रस्तारों में मेरुप्रस्तार जिसका घर है, वह देवी। नवाक्षर मन्त्र भी मेरु कहलाता है। वह सभी मन्त्रों की उत्पत्ति का स्थान है क्योंकि देवी मेरु पर विराजमान हैं। कहा भी गया है - "महात्रिपुरसुन्दर्याः मन्त्रा मेरुसमुद्भवाः"॥ १४८॥

वीराराध्या विराड्रूपा विरजा विश्वतोमुखी।
प्रत्यग्रूपा पराकाशा प्राणदा प्राणरूपिणी॥ १४९॥

हिन्दी -

अन्तर्मुख वीरों के द्वारा आराधना के योग्य, विराट् (स्थूलसमष्टि) रूपधारिणी, पापरहित (या — उत्कल में स्थित विरजा-नामक पीठक की अधिष्ठात्री) सभी ओर मुख वाली, अन्तःज्ञान रूपा (चैतन्य-रूपा) पराकाशा = परब्रह्मस्वरूपा या, आत्मविषयक उत्कृष्ट विमर्श-शक्ति वाली, प्राण देने वाली, (प्राण-ब्रह्म को देने वाली) तथा प्राणब्रह्म के स्वरूप को धारण करने वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १४९॥

विमर्श -

विरजाः = विगतं रजः (मलं, पापं वा) यस्याः। मल या पाप से रहित। प्रत्यग्रूपा = प्रतिकूलम् अञ्चति इति प्रत्यक्, प्रत्यक् रूपं यस्याः सा। विषयोन्मुखता, बहिर्मुखता और पराङ्मुखता आदि के प्रतिकूल चलने वाली, आत्मा की ओर उन्मुख देवी। आत्मा = चैतन्य, तद्रूपा। पराकाशा = अनादिसिद्ध शक्ति का नाम है या — ब्रह्म की अभिव्यक्ति का स्थान। अथवा, पर = उत्कृष्ट, आकाशा = विमर्शशक्ति वाली। प्राणदा = "प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्म" इस श्रुति के अनुसार प्राण = ब्रह्म, का सायुज्य देने वाली।

मार्तण्डभैरवाराध्या मन्त्रिणीन्यस्तराज्यधूः।
त्रिपुरेशी जयत्सेना निस्त्रैगुण्या परापरा॥ १५०॥

हिन्दी -

सूर्यमण्डल के अधिष्ठाता देव द्वारा आराधना योग्य, या मार्तण्ड के समान भैरव द्वारा आराधना योग्य, श्यामलाम्बा पर राज्यभार को रखने वाली, स्थूल, सूक्ष्म, एवं कारणशरीर, इन तीनों शरीरों की अधिष्ठात्री, जीतने वाली सेना से युक्त, सत्त्वरजसादि तीन गुणों के सम्बन्ध से रहित, तथा परापर-स्वरूपिणी या दूरस्थ होती हुई भी समीपस्थ देवी को नमस्कार है॥ १५०॥

विमर्श -

मार्तण्डभैरवाराध्या = मणिमल्ल दैत्य को मारने हेतु अश्व पर आरूढ होकर शिव स्वयं पृथिवी पर आए थे, और उनका नाम मार्तण्ड-भैरव पड़ा था। या, देवी का उपासक भैरव, जो सूर्यमण्डल पर उपासना करता है। या, मार्तण्ड सदृश भैरव से आराधना योग्य। **परापरा** - पर = उत्कृष्ट ब्रह्मादि भी, अपर = निकृष्ट, हैं जिससे वह देवी। या, पर = दूरस्थ, तथा अपर = समीपस्थ। सामान्य लोगों से दूर रहकर भी भक्तों के हृदय में निवास करने वाली देवी।

सत्यज्ञानानन्दरूपा सामरस्यपरायणा।
कपर्दिनी कलामाला कामधुक् कामरूपिणी॥ १५१॥

हिन्दी -

सत्यस्वरूपा, ज्ञानस्वरूपा तथा आनन्दस्वरूपा, शिव-शक्ति के ऐक्य-रूप परमस्थान वाली, या देवों सहित लोकों का आश्रय, कपर्दी = शिव, की पत्नी, चौंसठ कलाओं की परम्परारूपा (माला) या लावण्य और शोभा को प्रदान करने वाली, भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करने वाली तथा कामधेनु के सदृश रूपवाली, या, काम = परशिव, स्वरूपवाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १५१॥

विमर्श -

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, नित्यं विज्ञानम् आनन्दं ब्रह्म', इस श्रुति के अनुसार सत्य, ज्ञान और आनन्द ये तीनों ब्रह्म के स्वरूप हैं। देवी भी इस कारण ब्रह्मस्वरूपा हैं। सामरस्य = शिवशक्ति का एकरस होना, एक हो जाना ही, पर = उत्कृष्ट, अयन = आश्रय है जिसका। या – 'अमरैः सहितः सामरः, सामरस्य परायणा।' देवादि सहित लोकों का उत्कृष्ट आधार।

कलानिधिः काव्यकला रसज्ञा रसशेवधिः।
पुष्टा पुरातना पूज्या पुष्करा पुष्करेक्षणा॥ १५२॥

हिन्दी -

पूर्ववर्णित अनेक कलाओं की निधि, या — चन्द्रमण्डलरूपा, काव्यकलारूपा, या शुक्राचार्य की (काव्य की) मृत संजीवनी नामक कलारूपा, शृङ्गरादि रसों को जानने वाली, ब्रह्मामृत की निधि, (रसशेवधिः) छत्तीस तत्त्वात्मक शरीर होने से पुष्टा, संसार का आदि होने से पुरातनी, सभी से पूज्या, पुष्कर तीर्थ-रूपा, या पुष्क = पोषण को (राति इति रा) रा = देने वाली, तथा (पुष्कर) कमल सदृश नेत्रों वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १५२॥

विमर्श -

"रस एव परं ब्रह्म, रस एव परा गतिः। रसो हि कान्तिदः पुंसां, रसो रेत इति स्मृतः"। "प्राणात्मको रसः प्रोक्तः" इत्यादि वचनों के अनुसार देवी रसज्ञा होने से सब कुछ जानने वाली हैं तथा इन सभी की निधि भी हैं।

परं ज्योतिः परंधाम परमाणुः परात्परा।
पाशहस्ता पाशहन्त्री परमन्त्रविभेदिनी॥ १५३॥

हिन्दी -

सभी को प्रकाशित करने के कारण उत्कृष्ट ज्योतिरूप, (या — अष्टाक्षर मन्त्ररूप परं ज्योति), उत्कृष्ट धाम (या — जाग्रद् आदि त्रिधाम की साक्षी) परमाणु रूपा, (अणु से भी छोटा = दुर्ज्ञेया) उत्कृष्ट ब्रह्मादि से भी श्रेष्ठा, वाम कर में पाश लिए हुई, पाशों = बन्धनों, को नष्ट करने वाली, तथा अपने भक्तों के शत्रुओं के अभिचारादि मन्त्रों का भेदन करने वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १५३॥

विमर्श -

देवी परं ज्योति हैं। इनसे बढ़कर कोई अन्य प्रकाश नहीं है। "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्", यह श्रुति भी प्रमाण है। **परात्परा** - परात् = ब्रह्मादि-श्रेष्ठों, से भी, परा = श्रेष्ठ, या परात् = ब्रह्मायु के परिमाण से भी, परा = संख्या परिच्छेद से रहित। **परमन्त्रविभेदिनी** - पर = शत्रुओं के, मन्त्र = अभिचारादि मन्त्रों को, विभेदिनी = तोड़ने वाली। या — पर = उत्कृष्ट, मन्त्र = पञ्चदशीमन्त्र को, विभेदिनी = खोलने वाली।

मूर्तामूर्ता नित्यतृप्ता मुनिमानसहंसिका।
सत्यव्रता सत्यरूपा सर्वान्तर्यामिणी सती॥ १५४॥

हिन्दी -

मूर्ता = बाह्येन्द्रियों से देखे जाने वाली, (पञ्चीकृत वायु, आकाश आदि महाभूत-रूपा) और बाह्येन्द्रियों से नहीं देखे जाने वाली, (सूक्ष्म अपञ्चीकृत महाभूत रूपवाली) भक्तों के उपचारों से नित्य तृप्त, मननशील मुनियों के मन रूपी मानसरोवर में हंस के समान नित्य सम्बद्ध, शीघ्रफल देने का नियम वाली, (या सत्य ही है व्रत जिसका) सत्यरूप (अबाधित-रूप) वाली, सभी के अन्तःकरणों को नियन्त्रित करने वाली, (या – सर्वा = सर्वरूपा, अन्तर्यामिणी = सभी के अन्तःकरण में प्रविष्ट) तथा सतीरूपा श्रीललिता को नमस्कार है॥ १५४॥

विमर्श -

मूर्तामूर्ता - मूर्ता + अमूर्ता। मूर्ता - पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश इनका पञ्चीकृतरूप (महाभूत) जिन्हें हम इन्द्रियों से देख सकते हैं। अमूर्ता - इन पांचों का अपञ्चीकृतरूप, (सूक्ष्म) जिन्हें देख नहीं सकते। ये दोनों ही स्वरूप देवी के हैं। मुनिमानसहंसिका = मुनियों के मन रूपी मानस में हंस के सदृश, या – मुनियों के मान = सम्मान में, सहंसिका = पायल रूपा। उनके मान के लिए नृत्य करती हुई देवी।

ब्रह्माणी ब्रह्मजननी बहुरूपा बुधार्चिता।
प्रसवित्री प्रचण्डाज्ञा प्रतिष्ठा प्रकटाकृतिः॥ १५५॥

हिन्दी -

ब्रह्माणीरूपा (या – ब्रह्मा को जीवन देने वाली) ब्रह्मस्वरूपा जननी = जगन्माता, (या – परम ज्ञान की जननी) संसार को उत्पन्न करने के कारण अनेक रूपों वाली, बुधों = विद्वानों, एवं देवों द्वारा पूजित, आकाशादि या संसार को जन्म देने वाली, दुष्टों पर अत्यन्त कोप करने वाली, (प्रचण्डा) या अत्यन्त क्रुद्ध दूतों वाली, भगवान् की आज्ञारूपा, संसार का अधिष्ठान होने के कारण प्रतिष्ठारूपा, (या – जिसमें संसार प्रतिष्ठित हो, वह) तथा प्रकट-आकृति वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १५५॥

विमर्श -

ब्रह्माणी - ब्रह्म = परमशिव, की स्त्री। या, ब्रह्माणम् आनयति इति

ब्रह्माणी = ब्रह्मा को जीवित करने वाली। संसार नाम और रूप भेद से अनन्त है। अतः देवी बहुरूपा है। प्रतिष्ठाप्रकटाकृतिः - प्रतिष्ठा + अप्रकटाकृतिः = सब में प्रतिष्ठित होते हुए भी अप्रकट स्वरूप वाली।

प्राणेश्वरी प्राणदात्री पञ्चाशत्पीठरूपिणी।
विशृङ्खला विविक्तस्था वीरमाता वियत्प्रसूः॥ १५६॥

हिन्दी -

प्राण = इन्द्रियों की, अधिष्ठात्री, (स्वामिनी) संसार को प्राण देने वाली (संसार को जीवित करने वाली, या एकादश इन्द्रियों को देने वाली) कामरूप आदि पचास पीठरूप स्वरूपवाली, विशृङ्खला = कर्म बन्ध से मुक्त, विविक्त = एकान्त, या पवित्रस्थान में रहने वाली, वीर-उपासक जनों की रक्षा करने वाली माता, तथा आकाश को उत्पन्न करने वाली देवी को नमस्कार है॥ १५६॥

विमर्श -

प्राण नाम है प्राणवायु का, तथा इन्द्रियों का। प्राण की स्वामिनी एवं प्राणदायिनी है देवी। या – इन्द्रियों की अधिष्ठात्री देवता होने से इन्द्रियों = ज्ञान एवं कर्म-साधनों को देने वाली है। विशृङ्खला = उपर्युक्त अर्थ के अतिरिक्त, विगता शृङ्खला = कटिवस्त्रबन्धः, यस्याः, नग्नस्वरूपा, अतएव विविक्तस्था = एकान्तवासिनी, यह अर्थ भी किया गया है।

मुकुन्दा मुक्तिनिलया मूलविग्रहरूपिणी।
भावज्ञा भवरोगघ्नी भवचक्रप्रवर्तिनी॥ १५७॥

हिन्दी -

मुकुन्द = विष्णुस्वरूपा (या मुक्तिदायिनी) मुक्ति का आवास (घर) बाला, बगला आदि–आदि शक्तियों का मूल शरीर वाली (राजराजेश्वरी की रूपवाली, या जगत् का कारण शरीर वाली) लोगों के भावों (आशयों) को जानने वाली, संसार - रूप रोग की नाशिका, तथा संसारचक्र को चक्र के समान चलाने वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १५७॥

विमर्श -

मुकुन्दा - मुक्ति ददाति इति मुकुन्दा, पृषोदरादित्वात् सिद्ध करें। मूलविग्रहरूपिणी = बगला, बाला-आदि शक्तियों का मूल शरीर राजराजेश्वरी

का शरीर है। वही देवी का भी रूप है। भावज्ञा = भाव शब्द के अनेक अर्थ हैं। आशय, सत्ता, स्वभाव, चेष्टा आदि। 'अस्ति जायते' इत्यादि छः विकार भी भाव कहलाते हैं तथा छः पदार्थों (द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष समवाय) को भी भाव कहते हैं। शिव भव हैं, उनके भक्त भाव हैं। या — भा = कान्ति, उनको, वान्ति = प्राप्त करते हैं, वे सूर्यादि भी भाव हैं। देवी - उन सभी भावों को जानने वाली हैं।

छन्दःसारा शास्त्रसारा मन्त्रसारा तलोदरी।
उदारकीर्तिरुद्दामवैभवा वर्णरूपिणी॥ १५८॥

हिन्दी -

वेदों में वर्णित सार-स्वरूप वाली, या पिङ्गल-शास्त्र में वर्णित निष्कर्षरूपा, स्मृत्यादि-शास्त्रों में वर्णित श्रेष्ठ-रूप वाली, या, शास्त्रों की सारभूता, चौंसठ तन्त्रों की, या, मन्त्रशास्त्रों की सारभूता, करतल के समान कृश उदरवाली, (या, तल नामक लोक ही उदर है जिसका, उसे) उदार कीर्ति वाली, (या जिसकी उपासना से शीघ्र कीर्ति मिले) अपरिमित (उद्दाम) वैभववाली, तथा चौंसठ वर्णरूप स्वरूप वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १५८॥

विमर्श -

छन्द कहते हैं - वेद, गायत्रीमन्त्र तथा पिङ्गल रचित शास्त्र को। उनमें जिसका निष्कर्ष दिया गया है, ऐसी देवी "छन्दःसारा" हुई। मन्त्र शब्द तन्त्रों का भी वाचक है। सार का अर्थ निष्कर्ष या उत्कृष्ट-रूप, ये दोनों हैं। **उदार-कीर्तिः** - उत् = आसमन्तात् व्याप्त, अरा = शीघ्र साध्य, कीर्ति = यश। **वर्णरूपिणी** = पाणिनीय-शिक्षा में तिरसठ या चौंसठ वर्ण शम्भु के मत में हैं, ऐसा कहा गया है। वर्णों का रूप देवी का ही रूप है।

जन्ममृत्युजरातप्तजनविश्रान्तिदायिनी।
सर्वोपनिषदुद्घुष्टा शान्त्यतीता कलात्मिका॥ १५९॥

हिन्दी -

जन्म, मृत्यु एवं बुढापा इन तीनों से सन्तप्त भक्तजनों को विश्रान्ति (आत्म लाभ) रूप सुख को देने वाली, सभी उपनिषदों में (रहस्य-शास्त्रों में) प्रतिपादित (वर्णित) और आकाश में रहने वाली कला (शान्त्यतीता) से अभिन्न कला-स्वरूप वाली देवी श्रीत्रिपुरसुन्दरी को नमस्कार है॥ १५९॥

विमर्श -

शान्त्यतीता - आकाशनिष्ठ कला या पञ्चमी-कला जिसे कलाध्वनि कहते हैं, और वह शिव में अभिन्न-भाव से स्थित है, वही देवी का स्वरूप है। अत एव देवी शान्त्यतीता कलात्मिका हैं।

गम्भीरा गगनान्तस्था गर्विता गानलोलुपा।
कल्पनारहिता काष्ठाऽकान्ता कान्तार्द्धविग्रहा॥ १६०॥

हिन्दी -

समुद्र के समान अतिविस्तृत होने से गम्भीरा, चिदाकाश, भूताकाश या पराकाश के मध्य में स्थित (या आकाश के नाश होने पर भी स्थित रहने वाली) विश्व की अस्मितारूप (विश्वनिर्माण विषयक) अभिमान वाली, गान = गान्धर्वगान या साम में तृष्णा वाली, कल्पना = भ्रान्तिमयी-वासना, से रहित या — प्रलय में भी जीव (नार) के लिए हितकारिणी, काष्ठा = कालमान-रूपा, या — योगियों की परागति-रूपा, पाप का अन्त करने वाली (अकान्ता-अकं = पाप का, अन्ता = अन्त करने वाली) तथा शिव-रूप (कान्त) अर्ध-शरीर वाली (या — आकाश का एक भागरूप शरीर वाली) देवी श्रीललिता को नमस्कार है।

विमर्श -

कान्तार्धविग्रहा = विग्रहस्य अर्धम् अर्धविग्रहः, कान्तः अर्ध-विग्रहः यस्याः। कान्त = शिव हैं शरीर का आधा हिस्सा जिसका, वह देवी। या कस्य अन्तः कान्तः = खः = आकाशम्। कान्तार्धः विग्रहः यस्याः। क का अन्त ख, ख का अर्थ है आकाश। आकाश का आधा = एकभाग, है विग्रह = शरीर, जिसका, वह देवी।

कार्यकारणनिर्मुक्ता कामकेलितरंगिता।
कनत्कनकताटङ्का लीलाविग्रहधारिणी॥ १६१॥

हिन्दी -

कार्य = महदादि-तत्त्व, एवं कारण = मूलप्रकृति, इन सभी से मुक्त (अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म, दोनों रूपों का चैतन्य में अभाव होने से देवी कार्य-कारण भावों से रहित हैं।) काम = परमेश्वर के क्रीड़ाविलासों की तरङ्ग से = (परम्परा से) युक्त, चमकते सोने के कर्णाभूषण वाली, तथा लीला के लिए शरीर को धारण करने वाली, अथवा बिना आयास के अवतारविशेषों के देह को धारण करने वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १६१॥

विमर्श -

लीलाविग्रहधारिणी = लीलार्थं विग्रहं धारयति, लीला के लिए शरीर धारण करने वाली। या, लीलया = अनायासेन विग्रहान् = अवतार-विशेषरूपाणि धारयति। अनायास ही अवतार-विशेषों के रूप को धारण करने वाली। या, पद्मराज की महारानी लीलादेवी के शरीर को धारण करने वाली।

अजाक्षयविनिर्मुक्ता मुग्धा क्षिप्रप्रसादिनी।
अन्तर्मुखसमाराध्या बहिर्मुखसुदुर्लभा॥ १६२॥

हिन्दी -

जन्म-रहिता, क्षय = मृत्यु से सर्वथा मुक्त, मुग्धा = सौन्दर्यवती, भक्तों द्वारा शीघ्र प्रसन्न की जाने वाली, अन्तर्मुख = विषय-वासनाओं से रहित अन्तःकरण वाले भक्तों द्वारा, भली—भाँति आराधना के योग्य, तथा बहिर्मुख = विषयवासनाओं में लिप्त-हृदय वालों के लिए अत्यन्त-दुर्लभ, देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १६२॥

त्रयी त्रिवर्गनिलया त्रिस्था त्रिपुरमालिनी।
निरामया निरालम्बा स्वात्मारामा सुधास्रुतिः॥ १६३॥

हिन्दी -

ऋग्, यजुष्, साम इन तीनों की स्वरूप वाली, त्रिवर्ग = धर्म, अर्थ, एवं काम का, निवासस्थान, भूत, वर्तमान, एवं भविष्यत् इन तीनों कालों में स्थित, या, अकार, उकार, मकार = ओम्, में रहने वाली, या – तीनों लोकों में रहने वाली, स्थूल, सूक्ष्म, एवं कारणदेहों की माला = परम्परा वाली, भक्तों के रोगों को निकालने वाली, किसी अन्य के आलम्बन से रहित, अपने में ही आराम = क्रीडा (विहरण) करने वाली तथा ज्ञानसुधा का निष्यन्दन करने वाली देवी श्रीत्रिपुरसुन्दरी को नमस्कार है॥ १६३॥

विमर्श -

त्रिस्था = मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है कि तीन लोक, तीन देव, तीन विद्याएँ, तीन अग्नि, तीन ज्योति, तीन वर्ग, तीन धर्म, तीन गुण, तीन शब्द, तीन दोष, तीन आश्रम, तीन काल, तीन अवस्थाएँ, तीन पितर, तीन दिन एवं रातें, तीन मात्राएँ, ये सभी तीन, देवी सरस्वती के रूप हैं, अतः वे त्रिस्था कहलाती हैं। स्वात्मारामा = अपने को देवी दो भागों में बाँटकर परस्पर

क्रीड़ा करती हैं। या, स्वात्मा एव आरामः-कृत्रिमं वनं, जगद्रूपं यस्याः, सा। अपना रूप ही कृत्रिम वन = जगद् रूप वन हो गया है जिसका, वह देवी। सुधास्रुतिः - ज्ञानामृत स्यन्दन रूपा। या, सहस्रारकर्णिका-चन्द्र में स्थित सुधा का स्यन्दन जिस कुण्डलिनी से होता है, तद्रूपा।

संसारपङ्कनिर्म्मग्न-समुद्धरणपण्डिता।
यज्ञप्रिया यज्ञकर्त्री यजमानस्वरूपिणी॥ १६४॥

हिन्दी -

संसाररूप कीचर (पङ्क) में डूबे हुए लोगों (भक्तजनों) के समुद्धार में अत्यन्त कुशल (पंडिता = सद् असद् विवेचन करने वाली बुद्धि से युक्त) यज्ञों को प्रिय मानने वाली, यज्ञों को करने वाली तथा यजमान के स्वरूप को धारण करने वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १६४॥

विमर्श -

यजमानस्वरूपिणी - यज्ञकर्ता यजमान परमशिव हैं। यजमान और स्व = देवी, ये दोनों ही रूप देवी के हैं। ऐसा अर्थ भी किया गया है।

धर्माधारा धनाध्यक्षा धनधान्यविवर्द्धिनी।
विप्रप्रिया विप्ररूपा विश्वभ्रमणकारिणी॥ १६५॥

हिन्दी -

शास्त्रीय आचारों (धर्मों) की आधारभूता, (प्रवर्तिका) धन की स्वामिनी (कुबेर रूपा) धन एवं धान्यों को बढ़ाने वाली, वेदादिविद्यानिष्णात (विप्र) ब्राह्मण को प्रिय मानने वाली, विप्रस्वरूप वाली तथा ब्रह्माण्डमण्डल (विश्व) का सृष्टि-स्थिति लयरूप भ्रमण कराने वाली, या, विश्व को भ्रमण = मिथ्याज्ञान, कराने वाली देवी श्रीललिता को प्रणाम है॥ १६५॥

विमर्श -

उन–उन देशों में शिष्ट-परम्परानुकूल वेद से अविरुद्ध क्रिया या शास्त्रीय-आचरण धर्म कहलाता है। धर्म की आधारभूता, या – धर्म है आधार (प्राप्त करने का साधन) जिस देवी का, वह। विप्रप्रिया विप्ररूपा = "अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनूः"। विद्याहीन या विद्यावान् ब्राह्मण मेरा शरीर है तथा "यावतीर्वै देवतास्ताः सर्वा वेदविदि ब्राह्मणे वसन्ति", इस वचन के अनुसार ब्राह्मण देवी को प्रिय हैं, अतः उन्होंने विप्ररूप को भी धारण किया।

विश्वग्रासा विद्रुमाभा वैष्णवी विष्णुरूपिणी।
अयोनिर्योनिनिलया कूटस्था कुलरूपिणी॥ १६६॥

हिन्दी -

विश्व = चराचर, को ग्रास बनाने वाली (संहार की दशा में) प्रवाल (विद्रुम) के समान रक्त- आभा वाली, विष्णु की शक्तिरूपा, विष्णु का रूप ग्रहण करने वाली, (विष्णु-रूपा) कारण रहित, (अयोनि) या, विष्णु की मातृ-रूपा, योनि में रहने वाली (प्रकृति-स्वरूपा) या, माया से सीमित की जाने वाली, कूट (गाड़े गए लोहे का गोला) के समान अचल-भाव से स्थित, या, छलरूप ज्ञान में रहने वाली, तथा कुल = आचार, रूपवाली या जगत्-स्वरूप वाली देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १६६॥

विमर्श -

अयोनिः - न विद्यते योनिः = कारणं, यस्याः सा। जिसका कारण कोई नहीं हो, वह। या, अस्य = विष्णु की, योनिः = जनिका (उत्पन्न करने वाली) योनिनिलया = निलीयते जगत् यस्याम् सा निलया, योनिश्चासौ निलया च। संसार को लीन करने वाली योनि, (प्रकृति) या, योनि = माया है, निलय = परिच्छेदिका, जिसका, वह देवी। या, योनीनाम् = संसार के कारण ब्रह्मा आदि का, निलय = जिसमें निश्चित लय हो जाये वह देवी। **कूटस्था** - कूट = लौहमुद्गर, या चोट मारे जाने का आधार (घन) तद्वत् स्थित। या, कूटयति = छलयति, आत्मानम् इति कूटः = छलात्मक-ज्ञान, उसमें स्था = स्थित, या, कूट = पर्वतशिखर, उस पर, स्था = रहने वाली।

वीरगोष्ठीप्रिया वीरा नैष्कर्म्या नादरूपिणी।
विज्ञानकलना कल्या विदग्धा वैन्दवासना॥ १६७॥

हिन्दी -

वीरों की गोष्ठी (सभा) को प्रिय मानने वाली, तथा स्वयं वीर्यवान् होने से वीररूपिणी (या, विशेष-स्तुति-वाचकों की सभा को प्रिय मानने वाली तथा स्तुतिवाचकों से घिरी हुई) कर्मलेप से रहित, नादशक्तिरूपा, ब्रह्म-साक्षात्कार या स्वात्मानुभव में स्फुरण वाली, कलाओं में निपुण (कल्या), या, उषः कालरूपा, चतुरस्वभाव वाली, तथा बिन्दु-चक्र में आसन को धारण करने वाली, या, बिन्दुसमूह-रूप आसन वाली, देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १६७॥

विमर्श -

वीरा - वि = विशेषेण, ईरा: स्तुतिवाचका: यस्या: सा, विशेष स्तुति वाचकों से घिरी। **नैष्कर्म्या** = निर्गतानि कर्माणि यस्मात् स निष्कर्मा, तस्य भाव: नैष्कर्म्यम् = कर्मरहित का भाव। नैष्कर्म्यम् अस्ति अस्याम् इति नैष्कर्म्या (अर्शाद्यच्) = कर्मरहित भाव वाली। **विज्ञानकलना**-विज्ञान = ब्रह्म-साक्षात्कार, या, स्वात्म-विषयकज्ञान, उसे धारण करने वाली (कलना) या, स्फुरण करने वाली।

तत्त्वाधिका तत्त्वमयी तत्त्वमर्थस्वरूपिणी।
सामगानप्रिया सौम्या सदाशिवकुटुम्बिनी॥ १६८॥

हिन्दी -

शिवादि-क्षिति पर्यन्त छत्तीस तत्त्वों से भी अधिक (प्रलयपर्यन्त ये तत्त्व रहते है) आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व, एवं शिवतत्त्व, इन तीनों तत्वों वाली, तत् और त्वं पद के अर्थ ब्रह्म एवं जीव या शिव और जीव रूप स्वरूप वाली, सामगान को चाहने वाली, शान्तरूपा (या, सोमयाग को चाहने वाली (सोम्या) तथा सदाशिव की भार्या देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १६८॥

विमर्श -

शैवदर्शन में शिव से लेकर क्षिति तक ३६ तत्त्व हैं जिनसे त्रैलोक्य निर्माण हुआ है। उन तत्त्वों से त्रैलोक्यनिर्माण करने के कारण देवी उनसे अतिरिक्त हैं, अतएव उनसे अधिक हैं। **तत्त्वमयी** - संसार के समस्त तत्त्व उनमें समाविष्ट हैं। **सौम्या** = सोम के समान आह्लादिका। या, सोमं = सोमयागम् अर्हति इस अर्थ में यत् करके सोम्या पाठ मानें। या, सौम्या मानने पर स्वार्थ में ष्यञ् करें।

सव्यापसव्यमार्गस्था सर्वापद्विनिवारिणी।
स्वस्था स्वभावमधुरा धीरा धीरसमर्चिता॥ १६९॥

हिन्दी -

दक्षिण एवं वाममार्ग में पूज्य भाव से स्थित, (या, सविता मण्डल के दक्षिण, उत्तर और मध्य (मार्ग) में स्थित, सेवकों की सभी विपत्तियों का विशेष रूप से निवारण करने वाली, दुःखादि से होने वाले चाञ्चल्य का अभाव वाली होने से स्वस्था, स्वभावत: मधुर, धीर स्वभाव वाली, तथा धैर्यवान् पण्डितों द्वारा सम्यक् पूजित देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १६९॥

विमर्श -

सव्यापसव्यमार्गस्था - उपासना के क्रम में दो मार्ग दिखलाई पड़ते हैं। वाममार्ग एवं दक्षिणमार्ग। अपने-अपने वर्णाश्रमों के विहित कार्य, श्रौत अग्निहोत्रादि, तथा स्मार्त-तान्त्रिक मन्त्रसिद्धियाँ ये सभी वाममार्ग की उपासना में आते हैं। दक्षिणमार्ग में श्रौतादि कर्म के अङ्गभूत देवता के स्थान में देवी को ही उपास्य देवता मानकर पूजा जाता है। देवी उन दोनों मार्गों में स्थित होने से सबके लिए पूज्या हैं। **स्वस्था-स्व** = अपने में, स्थित। देवी समाधिदशा में आत्ममात्र स्वरूप में स्थित होती है तथा सारी वृत्तियाँ लीन हो जाती हैं। या-सु = शोभना, अस्था = गतिरूपा (गतिनिवृत्ति की अभाव वाली) होने से 'स्वस्था' कहा है। **स्वभावमधुरा** - सभी की स्पृहणीया। या – स्वेषु = आत्मीयों में, भावेन = रहने से, मधुरा, हैं देवी। **धीरा** - धी = बुद्धिप्रदा, इरा = दशमीतिथि रूपा।

चैतन्यार्घ्यसमाराध्या चैतन्यकुसुमप्रिया।
सदोदिता सदातुष्टा तरुणादित्यपाटला॥ १७०॥

हिन्दी -

चैतन्य = चिद्रूप पूजोपकरणों (अर्घ्य) से सम्यक् आराधना की जाने वाली (या – चैतन्यमय योगियों की चित्तवृत्ति रूप पूजोपकरण से आराधना योग्य, या चैतन्यार्घ्य = भुवनेश्वरी-मन्त्र, से आराधना की जाने वाली) चैतन्य-कुसुम को चाहने वाली, या – चैतन्यकुसुम = पुष्पाष्टक को प्रिय मानने वाली, नित्य उदित (स्वप्रकाश होने से) या – सत्पुरुषों में पूर्णतः प्रकाशित, सदा प्रसन्न रहने वाली, या – सज्जनों पर पूर्णतः सन्तुष्ट रहने वाली, तथा मध्याह्न-कालीन सूर्य के समान श्वेत-रक्त वर्ण वाली (पाटला) देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १७०॥

विमर्श -

चैतन्यकुसुमप्रिया - चैतन्यकुसुम = ज्ञानपुष्प हैं प्रिय जिसे, वह। चैतन्यकुसुम, पुष्पाष्टक को भी कहते हैं। वे आठ पुष्प हैं - (१) अहिंसा, (२) इन्द्रियनिग्रह, (३) क्षान्ति, (४) दया, (५) ज्ञान, (६) तप, (७) सत्य, (८) भाव। **सदोदिता** - सताम् = सज्जनों में, आ + उदिता = पूर्णतः प्रकाशयुक्ता। या, स्वप्रकाशरूप होने से सर्वदा उदित।

दक्षिणा दक्षिणाराध्या दरस्मेरमुखाम्बुजा।
कौलिनी केवलाऽनर्घ्यकैवल्यफलदायिनी॥ १७१॥

हिन्दी -

पण्डित एवं मूर्ख दोनों से आराधना की जाने वाली, या, दक्षिणा द्वारा कुशल व्यक्तियों से पूजी जाने वाली, या, कर्मज्ञानी तथा ब्रह्मज्ञानियों द्वारा पूजी जाने वाली, तनिक मुस्कुराहट युक्त मुखकमल वाली (मन्द-स्मित मुख कमल वाली) कौलिंनी = क्लींकारी रूपा या, कुलाङ्गना, केवलस्वरूपा (सुखदुःखविमुक्ता) तथा अपरिमित कैवल्यपद (मोक्ष) को देने वाली, (अमूल्य कैवल्य फल को देने वाली) देवी श्रीललिता को नमस्कार है।

विमर्श -

दक्षिणादक्षिणाराध्या - दक्षिणया - दक्षिणैः = कुशलैः, आराध्या, या, दक्षिणेन = पण्डितेन, अदक्षिणेन = मूर्खेण, च आराध्या, या दक्षिणमार्गोपासकेन वाममार्गोपासकेन च आराध्या। **कौलिनीकेवला** - कौलिनी से लेकर वशिनी तक वाग्देवताओं द्वारा निर्णीत। केवल का अर्थ निर्णीत भी है।

स्तोत्रप्रिया स्तुतिमती श्रुतिसंस्तुतवैभवा।
मनस्विनी मानवती महेशी मङ्गलाकृतिः॥ १७२॥

हिन्दी -

लौकिक गुणानुवाद (नमस्कार, आशीर्वाद, सिद्धान्त-कथन, पराक्रम, विभूति और प्रार्थना, ये छः स्तोत्र, लौकिकगुणानुवाद कहलाते हैं) को प्रिय मानने वाली, स्तुति की जाने वाली (स्तुति-सम्बन्ध वाली) श्रुतियों में सम्यक् वर्णित वैभव वाली, स्वाधीन मन वाली (मनस्विनी) आदर वाली, महेश की वधू, तथा मङ्गलदायक-आकृति वाली देवी को नमस्कार है॥ १७२॥

विश्वमाता जगद्धात्री विशालाक्षी विरागिणी।
प्रगल्भा परमोदारा परामोदा मनोमयी॥ १७३॥

हिन्दी -

संसार की माता, पृथिवी रूप से संसार को धारण करने वाली, या संसार की पोषिका, विशाल नेत्रों वाली, या, विशालाक्षी = वाराणसी पीठ की अधिष्ठात्री, वैराग्यमयी, सृष्ट्यादि-कार्यों में प्रौढा, (समर्थ) उत्कृष्ट एवं दानशील, (या, उत्कृष्ट आनन्द को प्राप्त कराने वाली) उत्कृष्ट-कीर्ति वाली, या, परमसन्तोष वाली, तथा मनःप्रधाना देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १७३॥

विमर्श -

विशालाक्षी - "वाराणस्यां विशालाक्षी" (पाद्मशास्त्र)। 'विशाला' शब्द बदरिकाश्रम का वाचक भी है। हिमालय पर बदरिका आश्रम होने से कुछ लोग नेपाल-पीठ की देवी मानते हैं। **परमोदारा** – परम् = उत्कृष्ट, मोद = आनन्द को, आरा = सम्पूर्णतः प्राप्त कराने वाली। **परामोदा** - पर = उत्कृष्ट, आमोदा = कीर्तिवाली, या, सन्तोष वाली। आमोद का अर्थ सुगन्ध भी है। 'परमसुगन्धि वाली' यह अर्थ भी हो सकता है।

व्योमकेशी विमानस्था वज्रिणी वामकेश्वरी।
पञ्चयज्ञप्रिया पञ्चप्रेतमञ्चाधिशायनी॥ १७४॥

हिन्दी -

आकाश-रूप केश वाली, या, व्योमकेश = शिव की स्त्री, विमान पर स्थित (या, विशेष मान में रहने वाली, या, विशिष्ट कान्ति वाले किरिचक्र आदि रथ पर स्थित) इन्द्र की स्त्रीरूपा, या, वज्र धारण करने वाली, वामकेश्वर तन्त्ररूपा, या, वामकतन्त्र की (प्रतिपादनीया होने से) स्वामिनी, या, वामकेश्वर = शिव की पत्नी, देव, ब्रह्म, भूत, पितृ, और मनुष्ययज्ञ ये पाँच यज्ञ प्रिय हैं जिसे, उसे, तथा ब्रह्मादि से सदाशिव पर्यन्त पाँच प्रेत-रूप मञ्च पर सोने वाली देवी श्रीत्रिपुरसुन्दरी को प्रणाम है॥ १७४॥

विमर्श -

व्योमकेशी = व्योम ही है केश जिसके, वह विराट्-रूपा देवी। या व्योमक-रूप ईश की स्त्री, दिग्रूपा। **विमानस्था** - वि = विशेष, मान = सम्मान में, स्था = रहने वाली, या, वि = विशिष्ट, मा = कान्तिवाला हुआ 'विम', अन का अर्थ है किरिचक्रादि रथ, उस पर, स्था = रहने वाली। या, विगतं मानं परिमाणं यस्य, परिमाण रहित ब्रह्म, उसमें रहने वाली, ब्रह्मनिष्ठा देवी। या, विशिष्ट = वेद के अविरुद्ध, मान = प्रमाणों में, स्था = धर्म-रूप से रहने वाली। **पञ्चप्रेतमञ्चाधिशायनी** = ब्रह्मादि चार प्रेत मञ्च के पांव हैं तथा सदाशिव-प्रेत मञ्च का फलक है। उस मञ्च पर देवी विराजमान हैं। भैरवयामल में कहा गया है कि - "शिवात्मके महामञ्चे महेशानोपबर्हणे। भृतकाश्च चतुष्पादाः कशिपुश्च सदाशिवः। तत्र शेते महेशानी महात्रिपुरसुन्दरी।"

पञ्चमी पञ्चभूतेशी पञ्चसंख्योपचारिणी।
शाश्वती शाश्वतैश्वर्या शर्मदा शम्भुमोहिनी॥ १७५॥

हिन्दी -

तुरीयातीत रूप वाली, (पञ्चमी) या, पाँच मकारों = आनन्दों का समूह, पृथिवी, वायु, तेज, जल, आकाश, इन पाँच महाभूतों की स्वामिनी, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, एवं नैवेद्य, इन पाँच संख्याओं से पूजा की जाने वाली (उपचारिणी) नित्यरूपा, नित्य ऐश्वर्य वाली, सुख देने वाली (शर्मदा) तथा शम्भु को मोहित करने वाली देवी को नमस्कार है॥ १७५॥

विमर्श -

ब्रह्मादि पाँचों में सदाशिव पञ्चम हैं। उनकी स्त्री हुई पञ्चमी। पञ्चमी शब्द 'वाराही' के लिए भी रूढ है। मकारों में पञ्चम आनन्द-रूप है। अतः पञ्चानां मानां समाहारः 'पञ्चमी' यह व्युत्पत्ति होने पर 'आनन्द-स्वरूपा' यह अर्थ होगा। पञ्चभूतेशी = पाँच महाभूतों की स्वामिनी। या, पाँच प्रकार के रत्नों वाली वैजयन्ती माला।

धरा धरसुता धन्या धर्मिणी धर्मवर्धिनी।
लोकातीता गुणातीता सर्वातीता शमात्मिका॥ १७६॥

हिन्दी -

संसार को धारण करने वाली, या, पृथ्वी-रूपा (धरा) हिमालय (धर) की पुत्री, कृतार्था या धन्यधान्यपूर्णा, धर्मशीला (या आनन्दानुभूति आदि नित्यधर्मों की विशेष्यभूता) धर्म को बढ़ाने वाली, लोकों का अतिक्रमण कर चुकी (महाकैलाश नामक परशिव के पुर में रहने वाली, या जीवों का अतिक्रमण कर चुकी) गुणों से परे, सभी (तत्त्वों) से परे तथा सुखात्म-स्वरूपा, या, संसार की शान्तिरूपा देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १७६॥

बन्धूककुसुमप्रख्या बाला लीलाविनोदिनी।
सुमङ्गली सुखकरी सुवेषाढ्या सुवासिनी॥ १७७॥

हिन्दी -

बन्धूक पुष्प के समान अत्यन्त रक्त-कान्ति वाली, कुमारी, (बाला) सांसारिक क्रीडाओं में हर्ष अनुभव करने वाली, (या, पद्मराज की पत्नी लीला को वर देकर प्रसन्न करने वाली सरस्वती-रूप वाली), सुन्दर मङ्गल वाली, (या, सुमङ्गल = ब्रह्म, ब्रह्मस्वरूपा) सेवकों को सुख देने वाली, सुन्दर वेष से युक्त, तथा सौभाग्यवती देवी श्रीललिता को नमस्कार है॥ १७७॥

सुवासिन्यर्चनप्रीताऽऽशोभना शुद्धमानसा।
बिन्दुतर्पणसन्तुष्टा पूर्वजा त्रिपुराम्बिका॥ १७८॥

हिन्दी -

सौभाग्यवतियों की अर्चना से प्रसन्न, संपूर्णतः सुन्दर (आशोभना) रागादिरहित शुद्ध मन वाली, बिन्दुचक्र में पूजन करने से सन्तुष्ट होने वाली, सब से पहले उत्पन्न हुई, (अबुद्धिपूर्वक हुई पहली सृष्टि) तथा तीन अवस्थाओं की जननी, या, तीन (पुर) लोकों को जननी, (श्री त्रिपुराम्बिका) को नमस्कार है॥ १७८॥

विमर्श -

बिन्दुतर्पणसन्तुष्टा – बिन्दु = सर्वानन्दमयचक्र में, ब्राह्मणादि चार वर्णों को बनाने (तर्पण) से प्रसन्न, या, बिन्दुचक्र में पूजन से प्रसन्न। **पूर्वजा** - 'अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य' इस श्रुति के अनुसार अबुद्धिपूर्वक की गई पहली सृष्टिरूपा देवी ही है।

दशमुद्रासमाराध्या त्रिपुराश्रीवशङ्करी।
ज्ञानमुद्रा ज्ञानगम्या ज्ञानज्ञेयस्वरूपिणी॥ १७९॥

हिन्दी -

संक्षोभणी से लेकर त्रिखण्डा तक की दश मुद्राओं द्वारा भली-भाँति पूजा के योग्य, पञ्चमचक्र की अधिष्ठात्री देवी त्रिपुराश्री को वश में करने वाली, या, जागर, स्वप्न एवं सुषुप्ति, इन तीन अवस्थाओं से प्राचीन आत्मशक्ति और लक्ष्मी को वश में करने वाली, ज्ञानरूप मुद्रा वाली, या, ज्ञान से आनन्द को प्राप्त कराने वाली, ज्ञान से प्राप्त करने योग्य, तथा ज्ञान और ज्ञेयस्वरूप वाली (दृक् और दृश्य रूप वाली) देवी श्री त्रिपुरसुन्दरी को नमस्कार है॥ १७९॥

विमर्श -

त्रिपुराश्रीवशङ्करी – पञ्चमचक्र की अधिष्ठात्री देवी त्रिपुराश्री हैं। उनको वश में रखने वाली श्री ललिता जी हैं। या, तिसृभ्यः = जाग्रदादि - अवस्थाभ्यः पुरा = प्राचीना, त्रिपुरा = आत्मशक्तिः, तां, श्रियम् = लक्ष्मीञ्च वशङ्करोति इति त्रिपुराश्रीवशङ्करी। **ज्ञानमुद्रा** - ज्ञानेन मुदं राति, इति। ज्ञान से प्रसन्नता को देने वाली। या, ज्ञानम् - चिद् को, तथा मुदम् = आनन्द को, द्रावयति = द्रवित करती है जो, वह।

योनिमुद्रा त्रिखण्डेशी त्रिगुणाम्बा त्रिकोणगा।
अनघाद्भुतचारित्रा वाञ्छितार्थप्रदायिनी॥ १८०॥

हिन्दी -

नवममुद्रारूपा (योनि है मुद्रा = आच्छादिका, जिस बिन्दु की, तद्रूपा, मन्त्रदोष के निवारण के लिए एक मुद्रा विशेष, जिसे गुरुमुखमात्र से जाना जाये।) **त्रिखण्डा** = दशम मुद्रा की स्वामिनी (या, सोम, सूर्य, और वह्निनामक मन्त्रखण्डों की स्वामिनी) त्रिगुणा = सत्वरजस्तमस् गुण-स्वरूपा, तथा सभी की माता, त्रिकोणचक्र में जाने वाली, दुःख, व्यसनादि से रहित, (अनघा) अद्भुत चरित्र वाली, तथा भक्तों को वांछित अर्थ प्रदान करने वाली देवी को नमस्कार है॥ १८०॥

विमर्श -

त्रिगुणाम्बा - सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीन गुणों की माता। अद्भुत-चारित्रा - अद्भुतेषु-भूकम्पादिषु उत्पातेषु निमित्तेषु चरन्ति इति अद्भुतचारीणि, दुष्टफलानि, भूकम्पादि निमित्तों में घूमने वाले दुष्ट फल, उन दुष्टफलों से रक्षा करने वाली। तेभ्यः त्रायते, इति अद्भुतचारित्रा।

अभ्यासातिशयज्ञाता षडध्वातीतरूपिणी।
अव्याजकरुणामूर्तिरज्ञानध्वान्तदीपिका॥ १८१॥

हिन्दी -

ब्रह्मात्म के ऐक्य के लिए किये गये अभ्यास से विशेषतः जानी गई, वर्ण, पद, मन्त्र, कला, तत्त्व व भुवननामक छः मार्गों से अतिक्रान्त स्वरूप वाली, नैसर्गिक करुणा की मूर्ति, तथा अज्ञानान्धकार को दूर करने वाले (दीपक) प्रकाश सदृश देवी श्रीललिता जी को नमस्कार है॥ १८१॥

विमर्श -

वर्णाध्वा, पदाध्वा, मन्त्राध्वा, कलाध्वा, तत्त्वाध्वा, तथा भुवनाध्वा, इन छः अध्वा से परे देवी का स्वरूप है। इन अध्वाओं में तीन विमर्श अंश हैं तथा तीन प्रकाश अंश। या, शैव, वैष्णव आदि छः उपासना मार्गों को अतिक्रमित कर चुकी देवी "षडध्वातीतरूपिणी" कहलाती है।

आबालगोपविदिता सर्वानुल्लङ्घ्यशासना।
श्रीचक्रराजनिलया श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी॥ १८२॥
श्रीशिवा शिवशक्त्यैक्यरूपिणी ललिताम्बिका॥

इति श्री वाग्देवी विरचितं श्रीललितायाः
सहस्रनामस्तोत्रं समाप्तम्।

हिन्दी -

हरिहर आदि से लेकर बाल तक सभी से विदित, ब्रह्मा आदि द्वारा भी जिसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया जाये, उसे, श्री चक्रराज है घर जिसका, उस देवी को, तथा श्रीयुक्ता शिव की भार्या को नमस्कार है॥ १८२॥

श्रीशिव स्वरूपा, शिव और शक्ति के ऐक्य (अभिन्न) स्वरूप वाली, या, शिवचक्र तथा शक्तिचक्र के ऐक्य स्वरूप वाली, तथा सर्वत्र सदा शोभायमान हो रही अम्बा को (ललिताम्बा) नमस्कार है।

विमर्श -

आबालगोपविदिता - बाल-गोप पर्यन्त सभी द्वारा ज्ञात। या, बालान् = ब्रह्मादीन् गोपयति इति बालगोपः, ब्रह्मादिकों के रक्षक शिव, बालश्चासौ गोपश्च इति बालगोपः = कृष्ण, बालगोपश्च बालगोपश्च इति बालगोपौ। एकशेष करने पर शिव और कृष्ण अर्थ हुआ। तौ अभिव्याप्य आबालगोपम्, आबालगोपेन, विदितं = ज्ञानं यस्याः सा आबालगोपविदिता। **श्रीचक्रराज-निलया** - "श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः", श्रीचक्र में स्थित शिव और शिवारूपिणी। **श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी** - त्रिपुरस्य = परम शिव की, सुन्दरी = भार्या, श्रीमती = श्रीयुक्ता, त्रिपुरसुन्दरी। या, त्रीणि पुराणि (ब्रह्म, विष्णु और शिव के तीन शरीर) यस्मिन् = जिसमें है, वह त्रिपुर हुआ परशिव। उनकी पत्नी। **ललिताम्बिका** — ललते = सर्वत्र सदा शोभते असौ इति ललिता, जो सर्वत्र शोभा प्राप्त कर रही हो, वह है ललिता। ललिता चासौ अम्बिका च इति, ललिताम्बिका = ललिता माँ (पार्वती माता)।

॥ इति श्रीवाग्देवी विरचित श्रीललितासहस्रनामस्तोत्र ॥

शाण्डिल्यगोत्रोत्पन्न न्याय, व्याकरण, वेदान्तादि अनेकशास्त्र-निष्णात पं. उमेश चौधरी के आत्मज अर्कनाथ चौधरी कृत ललितासहस्रनाम का हिन्दी अनुवाद पूर्ण।

◆ ◆ ◆

SANSTHAN DEEMED UNIVERSITY (UNDER MINISTRY OF H.R.D. GOVT.
21638
ACCESSION NO
DATE 21/4/04.

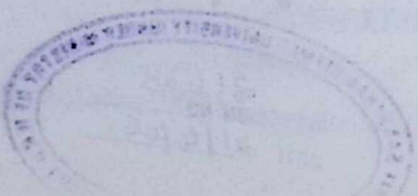

CENTRAL SANSKRIT UNIVERSITY

(Under Ministry at Education, Govt. of India)

GURUVAYOOR CAMPUS LIBRARY

Due Date Slip

Title : Sree lalitha Sahasranama Stot

Author : Goswami Sreelakshmi

Acc. No. 21638

This book should be returned to the library on or before the date last stamped. Otherwise over-due charges of ₹1/- per book per day will be collected.

Due date of Return	Due date of Return	Due date of Return

श्री रामकृपालुजी शर्मा

ापका जन्म सम्वत 1988 (1932 ई. सन्) को हुआ। बाल्यावस्था से ही साहित्य में रुचि थी। 18 वर्ष की आयु में ही 'प्राञ्जलि' नामक गद्य-पद्य मय पुस्तक की रचना करके प्रकाशित की। इस पुस्तक के श्री शर्माजी को अनेक विशिष्ट विद्वानों, रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख', महादेवी त्रानन्दन पंत, रामकुमार वर्मा, वैद्य हनुमान शास्त्री आदि की संस्तुति एवं शुभाशीर्वाद से शर्माजी का साहित्य सृजन और प्राचीन त ग्रन्थों के संग्रह के प्रति झुकाव हुआ। 5 से संग्रहीत हस्तलिखित ग्रन्थ एवं सामग्री को आपने सन् 1970 में "शर्मा " के रूप में समर्पित कर दिया जिसका तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षा राज्य-मंत्री र्शनजी के कर-कमलों से हुआ।

ौरान आपके कनिष्ठ पुत्र संजय शर्मा का 3 मार्च, 1982 को गंभीर बीमारी के ह्रावसान हो जाने से आपने "शर्मा " के संग्रहीत हस्तलिखित ग्रन्थ एवं सामग्री को "श्री संजय शर्मा संग्रहालय ंस्थान" के रूप में प्रस्थापित कर प्रन्यास ा की तथा वर्तमान में आप और आपकी मती पद्मावती शर्मा) दोनों ने व्यक्तिगत संग्रहालय भवन का निर्माण कराया, लाख से अधिक हस्तलिखित ग्रन्थ एवं संख्या में बहुमूल्य कलाकृतियाँ सुरक्षित ई हैं।

ााथ नागर रचित बालातप भाष्य के साथ ख्या सहित "श्रीललितासहस्रनामस्तोत्र" ान आपकी प्रेरणा का फल एवं इस एवं शोध संस्थान का प्रथम पुष्प है।

CSUGCKL
Q25:4173x1,1 1
21638
Acc.No: 21638